

सचित्र

उमेश योगदर्शन

(प्रथम खंड)

: लेखक :

योगासन—चित्रपट और उमेश योगदर्शन—द्वितीय खण्ड के निर्माता.

सूर्य नमस्कार, धर्मोपदेश (स्वामी रामतीर्थ के उपदेश) तथा
रामतीर्थ मासिक के सम्पादक

योगविद्या और प्राकृतिक चिकित्सा के प्रायोगिक प्रचारक—
बौद्धिक, शारीरिक और स्वर-विज्ञान के सक्रिय शिक्षक—

योगिराज श्री उमेशचन्द्रजी (धर्मभूषण)

संस्थापक और संचालक,

श्रीरामतीर्थ योगाश्रम

श्री राम तीर्थ योगाश्रम प्रकाशन,

दादर—बम्बई ४०००१४ (भारत)

सन् १९७८ ई.

शके १९००

संवत् २०३५

मूल्य

रुपये ३० मात्र

प्रकाशक :

उमेशचंद्र एम्. जोशी,

संचालक, श्रीरामतीर्थ योगाश्रम प्रकाशन,

उमेशघाम, विन्सेन्ट स्वघेअर स्ट्रीट नं. २,

दादर (मध्य रेलवे), बम्बई-४०००१४ (भारत)

द्वितीय आवृत्ति सन् १९७८

[जागतिक सभी प्रकार के अधिकार लेखक के स्वाधीन]

मूल्य—भारत में ३० रुपये मात्र

विदेश में

यू. के. और युरोपखंड में—२ पाँड (स्टर्लिंग) १० शिल्लिंग

यु. एस्. ए. (अमेरिका) में ५ डॉलर्स

रंगीन रॉपर और आसन ब्लॉक्स की छपाई

सरोज प्रिंटर्स

तारदेव, बम्बई-४०००३४

मुद्रक—

श्री देवेश्वर शर्मा

निराला मुद्रक,

१४०, साने गुरुजी मार्ग, बम्बई-४०००११

उमेश योगदर्शन

(प्रथम खंड)

अनुक्रमणिका

विषय	पृष्ठ
द्वितीय संस्करण की भूमिका	६अ
प्रथम संस्करण की भूमिका	६
मैंने अनुभव से क्या देखा क्या सुना	१०
शंका समाधान	१०
दीर्घकालीन अनुभव का फल	११
रोगियों के लिए	१२
योगाभ्यास का व्यापक प्रचार आवश्यक	१३
आसनों का क्रमबद्ध अभ्यास	१४
योगाभ्यास का वरदान	१५
धन का सदुपयोग	१६
योगाश्रमों का महत्त्व	१६
समय का सदुपयोग	१७
हठयोग क्या है ?	१८
योगाभ्यास का अधिकारी कौन है ?	२०
प्रयोजन	२१
संबंध	२१
भारत का अग्रस्थान	२२

विषय	पृष्ठ
क्या शरीर और मन की ओर ध्यान देना आवश्यक है ?	२३
क्या योगाभ्यास व्यसन है ?	२४
औषधियों से यथा संभव बचें	२५
दवाओं से रोग की जड़ नहीं जाती	२५
रोगी होने के दुष्परिणाम	२६
योगाभ्यास की व्याप्ति	२७
देशी-विदेशी खेल और योगाभ्यास	२७
आवश्यक निवेदन—शंका समाधान	२६
कुछ मिथ्या प्रदर्शन	२६
यम	३१
अहिंसा	३२
सत्य	३२
अस्तेय	३२
ब्रह्मचर्य	३३
ब्रह्मचर्य का पारमार्थिक अर्थ	३४
अपरिग्रह	३४
वचनामृत	३४
नियम	३५
शौच	३६
संतोष	३६
तप	३६
स्वाध्याय	३७
ईश्वर प्रणिधान	३७
वचनामृतम्	३७
मलशोधन कम	३८

विषय	पृष्ठ
आप रोगी हों तो घबराइये नहीं	४०
नेति कर्म	४०
जलनेति	४०
ऋतु अनुसार जल परिवर्तन	४५
पानी कैसा हो ?	४५
प्रकृति के अनुसार	४५
जलनेति का आयु से संबंध	४५
जलनेति का प्रभाव	४६
सूत्रनेति	४६
सूत्रनेति का ऋतु और आयु से संबंध	४७
घोति कर्म	४६
वमन घोति	४६
वस्त्र घोति	४६
दण्ड घोति	५१
नवलि कर्म	५२
मध्य नवलि	५४
वाम नवलि	५४
दक्षिण नवलि	५५
बस्तिकर्म	५५
गणेश क्रिया	५७
कपाल भाति	५७
त्राटक	६०
वचनामृत	६६
आसन विभाग	७०
व्यायाम के अन्य प्रकार और योगासनों की विशेषता	७२

विषय	पृष्ठ
योगाभ्यास के लिए आरंभिक नियम	७४
स्थान और साधन सामग्री	७४
अन्य आवश्यक निर्देश	७५
जल का उपयोग	७६
आसन करने वाले का आहार घटता क्यों है	७७
अवश्य विचार करें	७९
बहिर्न आसन कब न करें	८०
बहिर्न कौन सा आसन न करें	८०
बहिर्नों को आवश्यक सूचना	८१
आसन कितने हैं ?	८१
८४ आसनों का दिग्दर्शन	८२
अल्पश्रम साध्य आसन	८४
सिद्धासन	८४
स्वस्तिकासन (सुखासन)	८५
एकपाद उत्थान पादासन	८६
द्विपाद उत्थान पादासन	८२
वज्रासन	८३
एकपाद पवन मुक्तासन	८५
द्विपाद पवन मुक्तासन	८६
वीरासन	८७
त्रिकोणासन	८८
आकर्षण (आकर्ण) धनुरासन	१०३
शवासन	१०५
दिव्यामृत	१०७
श्रमसाध्य आसन	१०८

विषय	पृष्ठ
शीर्षासन	१०८
शीर्षासन संबंधी मेरे अनुभव	११५
शीर्षासन कौन नहीं कर सकते	११७
शीर्षासन में व्यतिक्रम	११७
शीर्षासनस्थ पद्मासन	११८
पद्मासन	११८
पूर्ण पद्मासन	१२१
लोलासन	१२६
सुप्त उर्ध्व हस्तासन	१३१
भुजंगासन	१३२
एकपाद शलभासन	१३४
द्विपाद शलभासन	१४०
नौकासन	१४१
जानुशिरासन	१४३
अर्द्ध मत्सेन्द्रासन	१४६
उत्कटासन	१५३
गोमुखासन	१५४
विपरीत करणी (उर्ध्वसर्वांगासन)	१५५
विपरीत करणी अवस्था में पद्मासन	१५८
मत्स्यासन	१६४
तोलांगुलासन (तुलासन)	१६५
कूर्मासन	१६६
बकासन	१६८
सिंहासन	१६९
उष्ट्रासन	१७५

विषय	पृष्ठ
वचनामृत	१७६
विशंष श्रमसाध्य आसन	१७७
वृक्षासन	१७७
सुप्त वज्रासन	१७८
सुप्त धनुरासन	१८०
पर्यंकासन	१८१
गरुडासन	१८२
वीर्यस्तम्भनासन	१८७
पार्श्वपादासन	१८६
भद्रासन	१९०
हलासन	१९१
विस्तृतपाद सर्वांगासन	१९३
कर्णपीडनासन	१९६
एकपाद भुजासन	२००
द्विपाद भुजासन	२०१
हंसासन	२०२
मयूरासन	२०४
मयूरी आसन	२०६
चक्रासन	२११
पादांगुष्ठासन	२१३
उर्ध्वपाद-हस्तासन	२१५
उर्ध्वपाद शिरासन	२१५
कुक्कुटासन	२१६
गर्भासन	२१८
पश्चिमोत्तानासन	२१९
विस्तृतपाद वक्ष (क्षाती) भूमि-स्पर्शासन	२२२

प्रथम खंड

अ

विषय	पृष्ठ
एकपाद शिरासन	२२४
द्विपाद शिरासन	२२५
सुप्तद्विपाद शिरासन	२२७
पूर्णभत्स्येन्द्रासन	२२६
वातायनासन	२३१
गोरक्षासन	२३२
वचनामृत	२३२
रोग निवारणार्थं योगिक, मनोबैज्ञानिक एवं प्राकृतिक चिकित्सा	२३६
रोग और उसके योगिक उपचार	२३९
निरोग होने पर भी शरीर और मन को यथावत् बनाये रखने के लिये मलशोधन-कर्म, आसन और प्राणायाम	२३६
(१) शिरोवेदना	२४१
(२) मलबद्धता (कब्ज)	२४२
(३) कामला	२४२
(४) मुख में दुर्गन्ध	२४३
• (५) अग्निमान्द्य	२४४
(६) क्षय (T. R.)	२४५
(७) वीर्य-विकार	२४७
(८) दृष्टिक्षीणता के कारण और उपचार	२६०
(९) स्मरण-शक्ति-संवर्धन	२६४
(१०) अनिद्रा रोग	२६५
(११) हृदय-विकार	२६७
(१२) दमा (श्वास-अस्थमा)	२६६
(१३) मूर्च्छा रोग	२७४
(१४) कैंसर (अबुर्द-नासूर)	२७८

विषय	पृष्ठ
(१५) मूलव्याधि (अर्श-बवासीर)	२८३
(१६) आन्त्रपुच्छ रोग (एपेन्डिसाईटिस)	२८६
(१७) आण्डवृद्धि रोग	२९१
(१८) हाथीपग (श्लीपद)	२९४
(१९) पाण्डुरोग- (एनीमिया)	२९९
(२०) शारीरिक क्षीणता	३०२
(२१) मेदवृद्धि रोग (मोटापा)	३०९
श्रीरामतीर्थ योगाश्रमकी सर्वतोभद्र उपयोगिता	३०९
आम जनता और योगसाधकों की सम्मतियाँ—आपबीती	३१३
(१) निस्वार्थ लोक सेवा का आदर्श	३१३
(२) शारीरिक एवं मानसिक शक्ति-प्रदानका परोपकारी आयोजन	३१४
(३) हार्दिक उद्गार	३१४
(४) नवचेतन और उल्लास के पुरस्कर्ता श्री. योगिराज जी	३१५
(५) आन्तरिक समस्याओं का सरल समाधान	३१६
(६) डाक्टरों के पास कभी न जायेंगे	३१६
(७) बिना दवा के दमा के रोग से मैं कैसे मुक्त हुआ ?	३१७
(८) मानव-देह में सच्चिदानन्द की झांकी	३१९
(९) जन-सेवा का पवित्र व्रत	३१९
(१०) हठीला दमा तथा शरदी मिट गई	३२०
(११) योगिक उपचारों की महत्ता	३२०
(१२) दमा समूल नष्ट हो गया	३२१
(१३) आंखों की ज्योति में असीम वृद्धि	३२२
(१४) योग और कायाकल्प	३२२
(१५) असाध्य व्याधियों से छुटकारा	३२३
(१६) लोक कल्याण की सच्ची प्रवृत्ति	३२४

विषय	पृष्ठ
(१७) बवासीर (मूलव्याधि) मिट गई	३२४
(१८) योगाभ्यास के अलभ्य एवं अद्भुत लाभ	३२६
(१९) शरदी और गले के रोग से छुटकारा	३२७
(२०) योगाभ्यास द्वारा अनेक रोगों से मुक्ति	३२८
(२१) मेरा अनन्य अनुभव	३२९
(२२) वजन में आशातीत वृद्धि	३२९
(२३) नेत्र-रोग से मुक्ति	३३०
(२४) यौगिक और प्राकृतिक चिकित्सा का अप्रतिहत प्रभाव	३३१
(२५) बिहार के सहकारिता, पशुपालन एवं कानून-मन्त्री श्री जगत्नारायण लाल के हृदयोद्गार	३३१
(२६) श्रीमती रामप्यारी देवी, एम. एल. सी. (पटना, बिहार)	३३३
(२७) प्रार्थना सुनी गई	३३३
(२८) उमेश योगदर्शन ने प्रेरणा दी	३३४

श्री उमेशचन्द्रजी (स्वामीजी)

संस्थापक और संचालक,

श्री रामतीर्थ योगाश्रम और प्रस्तुत ग्रंथ के लेखक का

संक्षिप्त जीवन-परिचय

श्री योगीराजजी का संयम	३३७
व्यक्तित्व का प्रभावशाली स्वरूप	३३७
श्रीरामतीर्थ योगाश्रम	३३९
प्राकृतिक चिकित्सा के प्रचारक	३४३
क्या प्राकृतिक चिकित्सा मंहगी है ?	३४५
प्राकृतिक चिकित्सा की सुरक्षता	३४७
योगिराजजी का संक्षिप्त जीवन-वृत्त	३४८

द

उमेश योगदर्शन

विषय	पृष्ठ
बिद्योपासना, साधना-व्रत और कला-प्रेम	३४९
श्रीरामतीर्थ योगाश्रम की स्थापना और कार्य का श्रीगणेश	३५१
एक दिन की बात	३५६
स्वामीजी का विवेचनात्मक और सारगर्भित उत्तर	३५७
पुष्प का आध्यात्मिक महत्व	३५८
प्राकृतिक जीवन में वन-पर्वतों का महत्व	३५९
वन-भ्रमण का विशेष प्रेम	३६२
सन्तों का परोपकारी जीवन	३६३
स्वयं सिद्ध साधक स्वामी जी	३६३
योगाश्रम के कार्य-विस्तार की महत्वाकांक्षा	३६५
स्वामीजी के उपास्य	३६५
प्रार्थनामय जीवन	३६६
दैनिक जीवन पर विचारों का प्रभाव	३६७
मंगलकारी और लोकप्रिय अनुष्ठान	३६८
मानव में दिव्य जीवन की प्रतिष्ठा	३६९
साधकों को लोकोत्तर स्थिति पर पहुँचाने का शुभ संकल्प	३७०
देश को शक्तिशाली और सुयोग्य नागरिकों की प्राप्ति	३७२
अन्तिम अभ्यर्थना	३७३
उमेश वाणी	३७५ से ३८२

चित्रावलि

चित्र	पृष्ठ
षट्कर्म (मलशोधन कर्म)	
नेति	४१
वस्त्र धौति	४२

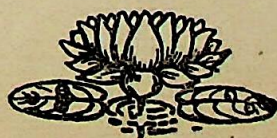
प्रथम खंड	य
चित्र	पृष्ठ
दंड धौति	४३
नवलि	४४
त्राटक	६१
योगासन चित्र	
सिद्धासन	८७
स्वस्तिकासन	८७
एकपाद उत्थान पादासन	८८
द्विपाद उत्थान पादासन	८८
वज्रासन	८९
एकपाद पवन मुक्तासन	९०
द्विपाद पवन मुक्तासन	९०
वीरासन	९६
त्रिकोणासन	१००
आकर्षण (आकर्ण) धनुरासन	१०१
शवासन	१०२
शीर्षासन	१११
पद्मासन शीर्षासन में	११२
पद्मासन	११३
पद्मासन में योग मुद्रा	११४
बद्ध पद्मासन में योग मुद्रा	११४
बद्ध पद्मासन	१२३
लोलासन	१२४
उर्ध्वहस्तासन	१२५
सुप्त उर्ध्वहस्तासन	१२५
भुजङ्गासन	१२६

र

उमेश योगदर्शन

विषय	पृष्ठ
एकपाद शलभासन	१३५
द्विपाद शलभासन	१३५
नौकासन	१३६
जानुशिरासन	१३७
अर्धमत्स्येन्द्रासन	१३८
उत्कटासन	१४७
गोमुखासन	१४८
विपरीतकरणी अवस्था में पद्मासन	१५०
मत्स्यासन	१५९
होलांगुलासन (तुलासन)	१६०
कूर्मासन	१६१
वकासन	१६२
सिंहासन	१७१
स्रष्ट्रासन	१७२
ताड़ासन (वृक्षासन)	१७३
सुप्त वज्रासन	१७४
सुप्त धनुरासन	१८३
पर्यंकासन	१८४
गरुडासन	१८५
वीर्यस्तम्भनासन	१८६
पाद पाश्चासन (प्रथम प्रकार)	१९० अ
पाद पाश्चासन (द्वितीय प्रकार)	१९० ब
भद्रासन	१९० स
हलासन	१९० द
विस्तृत पाद सर्वाङ्गासन	१९५

विषय	पृष्ठ
कर्ण पीडनासन	१६६
एकपाद भुजासन	१६७
द्विपाद भुजासन	१६७
हंसासन	१६८
मयूरासन	२०७
मयूरी आसन	२०७
चक्रासन	२०८
पादांगुष्ठासन	२०९
उर्ध्वपाद हस्तासन	२१०
उर्ध्वपाद शिरासन	२१०
कुक्कुटासन	२१८अ
गर्भासन	२१८अ
पश्चिमोत्तानासन	२१८ब
विस्तृतपाद वक्ष भूमि स्पर्शासन	२१८स
द्विपाद शिरासन	२१८द
पूर्ण मत्स्येन्द्रासन (अग्रभाग)	२२७
पूर्ण मत्स्येन्द्रासन (पृष्ठ भाग)	२२८
वातायनासन	२३३
गोमुखासन	२३४



द्वितीय संस्करण की

प्रस्तावना

हर्ष का विषय है कि उमेश योगदर्शन प्रथम खंड का परिवर्धित द्वितीय संस्करण प्रकाशित होकर आपके हाथों में है। इस संस्करण में षट्कर्म के अन्तर्गत वमन धौती विषयक जानकारी बढ़ाई गई है, विशेष श्रमसाध्य आसनों में प्रर्यकासन, पादपाश्वासन, भद्रासन, वातायनासन विषयक विधि लाभ सहित जानकारी सचित्र बढ़ाई गई है। प्राकृतिक चिकित्सा विभाग में मोटापा रोग की प्राकृतिक चिकित्सा का सविस्तार वर्णन और जोड़ा गया है। आश्रम से लाभ लेने वालों के अनुभव भी कुछ जोड़े गये हैं। इस प्रकार यह प्रयास किया गया है कि योग शास्त्र प्रेमियों को योगदर्शन अधिक लाभदायक सिद्ध हो।

—लेखक



प्रारंभिक भूमिका

(प्रथम संस्करण)

मुझे अतीव आनन्द हो रहा है कि अपना योगाभ्यास-सम्बन्धी ४५ वर्षों में यथाशक्ति और यथामति प्राप्त किया हुआ अनुभव अपने अभिन्न हृदय और आत्म-स्वरूप पाठकवृन्द के समक्ष उपस्थित करने का सुअवसर मुझे प्राप्त हुआ है। मानवों का स्वभाव साधारणतः दो रूपों में प्रकट होता है—एक तो अपने जीवन को अधोगति की ओर ले जाना; अर्थात् अनेक प्रकार के दुर्व्यसन, मारकाट छल-कपट, निन्दा, काम-क्रोध, लोभ-मद-मत्सर तथा चोरी-डाका आदि कुकर्मों की ओर प्रवृत्ति रहती है। दूसरा मार्ग वह है, जिस पर चलकर मनुष्य तन-मन-धन से सन्तुष्ट रहकर परम सुख की

और प्रवृत्त होते हैं। उस दशा में मनुष्य जल में कमल-पत्रवत् संसार में रहते हुए अथवा ऋषि-आश्रमों और योगाश्रमों में रहते हुए सत्-चित्-आनन्द की दिव्य अनुभूति करते हैं।

मैंने अनुभव से क्या देखा और सुना है ?

मैंने अनेक प्रान्तों का भ्रमण किया है। इस अवसर पर अनेक साधु-सन्त, ध्यानी-ज्ञानी, योगी-बेरागी, पंडित, गद्दीपति, मठाधीश और महन्तों के दर्शनार्थ मैं जाया करता था। उक्त महात्माओं के शरीर अपवाद रूप में नीरोग और सशक्त दिखाई दिये। मैंने उन महात्माओं से पूछा कि आप लोग जनकल्याण, परोपकार और सत्-चित्-आनन्द के लिये प्रयत्नशील हैं सही; परन्तु उसके प्रमुख साधन शरीर और मन जितने अनुकूल होने चाहियें उतने दिखाई दे नहीं रहे हैं। जुकाम, अशक्ति, मलबद्धता, शिरो-वेदना, मेदवृद्धि, कमजोरी, वीर्यक्षीणता, अपचन, ध्यानावस्था में तन्द्रावस्था अथवा निद्रावस्था का आक्रमण होता रहता है और इस प्रकार कोई न कोई व्याधिमूलक कारण आपके पीछे लगा हुआ है। यह स्थिति परमार्थ और जन-कल्याण के मार्ग में विघ्नरूप है। उक्त महात्माओं की ओर से तुरन्त उत्तर मिला कि शरीर और मन नश्वर, क्षणभंगुर और विकारवान् हैं, अतः इनके प्रति मोह, यमता, माया और अनुरक्ति बिल्कुल नहीं रखनी चाहिये। जब तक भगवान् की कृपा रहेगी, तबतक शरीर का अस्तित्व रहेगा। इसलिये शरीर के प्रति त्याग, विराग की भावना रखनी चाहिये। मात्र जनकल्याण, धर्म का प्रचार और आत्मोन्नति करना ही हमारे जीवन का परम लक्ष्य और कर्तव्य है।

शंका-समाधान

निस्सन्देह मैं महात्माओं की उपर्युक्त बातों को स्वीकार करता हूँ और उन्हें जीवन में उतारने के प्रयास भी करता रहता हूँ; किन्तु मुख्य ज्ञातव्य विषय यही है कि जनकल्याण और आत्मकल्याण के लिये हम जो

भी प्रयास करते हैं; वह शरीर और मन के द्वारा ही करते हैं। ऐसी दशा में मोह, ममता को त्यागकर अपने कर्तव्यकार्य की पूर्ति के लिये जबतक हमें इस जगत् में रहना है तब तक शरीर और मन को पूर्णतया स्वस्थ और निर्विकार रखना पड़ेगा। ऐसा न करने से न तो अपना कल्याण उचित रूप से हो सकेगा और न जन समाज का। हरिद्वार, ऋषिकेश, काशी आदि अनेक पुण्य-क्षेत्रों में बसने वाले अनेक महात्माओं को देखकर मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि उचित रूप में साधन-सम्पन्न होने पर भी शरीर और मन अस्वस्थ होने के कारण वे आगे बढ़ने में असमर्थ हैं। जब वे अपना ही भला करने में समर्थ नहीं; तब दूसरों का भला कैसे कर सकेंगे? शरीर भगवान् का मन्दिर है।

“देहो देवालयो प्रोक्तो देही देवो निरंजनः।

अर्चितं सर्वभावेन स्वानुभूत्या विराजते॥”

यह श्लोक भगवान् आदि शंकराचार्यविरचित “सदाचार स्तोत्र” के अन्तर्गत है। इसका अर्थ यह है कि उचित रूप में परमार्थ साधन किया जाये तो स्वशरीर में ही भगवान् निरंजन के दर्शन हो सकते हैं। जिस प्रकार स्वच्छ मलरहित दर्पण (आरसी) में शरीर का प्रतिबिम्ब स्पष्ट झलक उठता है उसी प्रकार शरीर और मन को शुद्ध निर्मल (मोह-ममता रहित) रखने से आत्म कल्याण का साधन करते हुए जगत् के अनेक व्यावहारिक और पारमार्थिक भावापन्न लोगों का उद्धार किया जा सकता है।

दीर्घकालीन अनुभव का फल

श्रीरामतीर्थ योगाश्रम गत ४५ वर्षों से जनता-जनार्दन की सेवा कर रहा है। किन्तु मेरे स्वानुभव उससे आगे हैं। इस ग्रन्थ में जो कुछ लिखा गया है, वह सब स्वानुभव और आश्रम की सेवाओं से लाभ उठाने वाले अनेक भाई-बहनों के आधार पर लिखा गया है।

अनेक व्यक्तियों में विशेषतः यह प्रवृत्ति पाई जाती है कि केवल ग्रन्थावलोकन के आधार पर वे पुस्तकें लिख डालते हैं; किन्तु इस लेखन में

अनुभव का अंश बहुत कम होता है या बिल्कुल नहीं होता। इसका फल यह होता है कि जनता को जितना लाभ मिलना चाहिये, उतना मिल नहीं पाता; फलतः लोग सन्देहवश होकर इस साधना से ही मुख मोड़ बैठते हैं। अतः मैं आत्मश्लाघा तो नहीं करता; हां, पाठकों और जिज्ञासुओं के समाधान के लिये मुझे कहना पड़ रहा है कि सप्ताह में कम से कम एक बार अष्टांग योग, वेदान्त, उपनिषद्, भक्ति, प्राकृतिक चिकित्सा आदि अनेक विषयों में से किसी एक विषय पर सब साधारण जनता के समक्ष श्रीराम-तीर्थ योगाश्रम में अथवा अन्य स्थानों पर मैं व्याख्यान देता हूँ; प्रतिदिन साधकों के साथ आसन-प्राणायामादि का अभ्यास करता हूँ तथा साधकों को तद्विषयक शिक्षा देता हूँ; आसनादि सिखाता हूँ। अब: इस ग्रन्थ के निर्माण में तथा आसन करने की विधियाँ और लाभ बताने में ग्रन्थावलोकन की अपेक्षा स्वानुभव का ही विशेष आधार मुझे लेना पड़ा है। फलतः इस ग्रन्थ में व्यक्तिगत रूप से किसी आसन का वर्णन नहीं किया गया है। जिस साधक के लिये जो आसन अनुकूल हो; वह उसका अभ्यास करे और यथोचित लाभ उठाये। 'उमेश योगदर्शन' ग्रन्थ में सब प्रकार के मल-शोधन-कार्य तथा आसनों के छाया-चित्र (फोटो) मेरे ही दिये गये हैं। यद्यपि आरम्भ से अब तक श्रीरामतीर्थ योगाश्रम में शिक्षा प्राप्त सहस्रों योग साधकों के अत्यन्त सुन्दर छायाचित्र लिये जा सकते थे, किन्तु ऐसा न करके मेरे ही चित्र दिये गये हैं। इसका विशेष कारण यह है कि पाठकों को प्रत्यक्ष प्रमाण रूप से पता चले कि इस ग्रन्थ का प्रणयन केवल पाण्डित्य के आधार पर नहीं किया गया है। अपितु स्वानुभव के आधार पर किया गया है। इस ग्रन्थ में अनेक महत्वपूर्ण आसनों का वर्णन किया गया है।

रोगियों के लिये

किस आसन से कौन-सा रोग मिटता है; इस ग्रन्थ में इसी बात का उल्लेख किया गया है; परन्तु पाठकों और साधक स्त्री-पुरुषों को इतना जान लेना आवश्यक है कि जैसे किसी वृक्ष का बीज कितना ही परिपक्व हो और कितने ही उत्कृष्ट वृक्ष को उत्पन्न करने में समर्थ हो; किन्तु यदि

उर्बर क्षेत्र, सूर्य-प्रकाश, शुद्ध वायु, जल और आकाश आदि की उचित व्यवस्था न होगी तो उत्कृष्ट बीज से भी कोई लाभ न होगा, उसी तरह यदि आप केवल आसनों का अभ्यास करके ही सब तरह से लाभ उठाना चाहते हैं तो ऐसा सम्भव न होगा; बल्कि (आसनों का यथोचित लाभ पाने के लिये) शुद्ध वायु, सात्विक भोजन और जिन जीवन-तत्त्वों के अभाव में शरीर में रोग की उत्पत्ति हुई है, उन जीवन तत्त्वों का यथोचित सेवन, शुद्ध जल, प्रकाशमय और स्वच्छ स्थान और आशामय विचारों से जीवन को ओतप्रोत रखना ही होगा। निर्व्यसन रहना भी आवश्यक है। सिनेमा, नाटक, शराब, गाँजा, तम्बाकू, चाय, भांग आदि दुर्व्यसनों को छोड़ना पड़ेगा। 'अश्लील साहित्य और अन्य अनीतिमूलक कुकर्म भी छोड़ने पड़ेंगे। हां, यदि ये दुर्व्यसन और कुकर्म दीर्घकाल से पीछे लगे हों और उन्हें एकाएक एक साथ ही तुरन्त छोड़ देना सम्भव न हो तो चिन्ता करने का कोई कारण नहीं। इन सब दुर्व्यसनों से पीछा छुड़ाने की बलवती भावना मन में पैदा करें और छः प्रकार के मलशोधन-कार्य और अल्प-श्रमसाध्य आसनों का अभ्यास प्रारम्भ कर दें। शरीर में आरोग्य और मन में पवित्रता का संचार करने वाले ग्रन्थों का अवलोकन करें; सत्संग करें तथा मन को उन्नत बनाने वाले व्याख्यान सुनें। ऐसा करने से कुछ ही दिनों अथवा कुछ ही महीनों में उपर्युक्त सभी व्यसनों के प्रति शनैः शनैः घृणा उत्पन्न होने लगेगी और एकदिन उनसे पूर्णतया छुटकारा मिल जायेगा। स्मरण रखें कि व्यसन ही रोग के मूल कारण हैं; सादा और सरल जीवन तथा उच्च विचार व्यावहारिक और पारमार्थिक लक्ष्य-सिद्धि पर पहुँचाने वाले राजपथ हैं।

योगाभ्यास का व्यापक प्रचार आवश्यक

श्री रामतीर्थ योगाश्रम गत ४५ वर्षों से जन साधारण की सेवा कर रहा है। रोगी-नीरोगी, मानसिक अशान्ति से ग्रस्त, आत्म कल्याणाकांक्षी, शारीरिक, मानसिक और आत्मिक सामर्थ्य का लाभ उठाने के लिये आश्रम में आते हैं तथा विविध साधनों, व्याख्यानों एवं तत्सम्बन्धी उच्च साहित्य

के द्वारा अब तक लाखों स्त्री-पुरुष लाभ उठाकर अभीष्ट सिद्ध कर चुके हैं। व्यक्तिगत रूप से योगाभ्यास का मेरा अनुभव अनुमानतः ५० वर्षों का है।

इस पुस्तक में जो कुछ मैंने लिखा है; वह सब अनुभवसिद्ध है। कुछ तो आश्रम में आकर साधना करने वाले स्त्री-पुरुषों को उपलब्ध लाभ के आधारपर और बहुत कुछ स्वानुभव के आधार पर निश्चित रूप से विचार चिन्तनकर लिखा गया है। पाठकगण अवश्य ही इस पुस्तक में निर्दिष्ट आसनों का स्वयं अभ्यास करें और तत्पश्चात् अपने अनुभव हमें बताने की कृपा करें तो हम उनके बहुत उपकृत होंगे। प्रत्येक घर में योगाभ्यास का प्रचार हो; भारत तथा विदेश का समग्र नरनारी समाज योगाभ्यास का पवित्र मार्ग अपनाये और उससे यथेष्ट लाभ उठाये; यही मेरी हार्दिक इच्छा है। योगाभ्यास विषयक अनेक ग्रन्थ मैंने पढ़े हैं। उनमें आसनों के यथावत् रूप को हृदयंगम कराने वाले चित्र नहीं होते और कदाचित् किसी ग्रन्थ में होते भी हैं तो अपवादरूप में अल्पश्रमसाध्य आसनों के चित्र होते हैं, विशेष श्रमसाध्य आसन बहुत न्यून संख्या में रहते हैं अथवा कहीं-कहीं तो रहते भी नहीं।

इसके अनेक कारण हो सकते हैं; परन्तु मेरे दृष्टिकोण में प्रमुख कारण यह जान पड़ता है कि ऐसे ग्रन्थकर्ताओं का अध्ययन और साधन बहुत सीमित होते हैं। वे या तो किसी योग-साधक से ग्रन्थ-निर्माण में सहयोग लेते हैं अथवा ग्रन्थावलोकन से प्राप्त अपने सीमित ज्ञान के आधार पर लिखते हैं। समझ में नहीं आता कि उनके इस प्रकार के साहस का उद्देश्य क्या है? वे संकुचित विचार अथवा अहंकार के वशीभूत होकर अथवा स्वयं साधन करने में असमर्थ होने के कारण ऐसा करते होंगे।

आसनों का क्रमबद्ध अभ्यास

उपर्युक्त स्थितियों पर विचार करने के पश्चात् मैंने निश्चित किया कि आम जनता को भलीभाँति विश्वास और उसके मन का समुचित

समाधान होना तभी सम्भव है, जब मैं स्वयं योगाभ्यास करके जनसाधारण का श्रद्धाभाजन बनूँ। वैसे तो पाठकगण अवश्य ही समझ जायेंगे कि जो आश्रम गत ४५ वर्षों से जनता के बीच कार्यरत है, उससे अब तक बहु-संख्यक लोगों ने लाभ उठाया होगा। जनता की उपर्युक्त धारणा उचित ही है। निस्सन्देह श्रीरामतीर्थ-योगाश्रम में सीखने वाले सहस्रों स्त्री-पुरुष हैं और वे उत्तम विधि से योगाभ्यास कर अपने जीवन को कृतार्थ बना रहे हैं।

योगाभ्यास का वरदान

अतः मेरे आत्मस्वरूप परमादरणीय भाइयो ! माताओ ! और ब्रह्मो ! मैं आपसे हार्दिक विनम्र अनुरोध करता हूँ कि अब आप इस सम्बन्ध में किसी प्रकार के बहाने और कारण को आगे न करें; प्रत्युत् ऐसे बाधक कारण यदि सचमुच हों, तो भी उनकी उपेक्षा कर-उन्हें अपने अनुकूल बना कर तुरन्त ही आज से-अभी से प्रेम पूर्वक योगाभ्यास का अवश्यमेव शुभ-समारम्भ कर दें; शुभस्य शीघ्रम्। कुछ ही समय के पश्चात् आपको इस साधन के अत्यन्त चमत्कारपूर्ण लाभों का स्वयमेव अनुभव होगा, खोई हुई शक्ति का आपके शरीर और मन में पुनः संचार होगा, आपका शुष्क मन एवं शरीर नवयौवन की सरस हरियाली से लहलहा उठेगा। जीवन में नई शक्ति, नया सामर्थ्य, नवीन स्फूर्ति और नवीन तेज-ओज का आविर्भाव होगा और आपका निराशामय विकल अस्त-व्यस्त जीवन नवीन आशाओं से पुलकित और प्रसन्न हो उठेगा; जीवन में एक सुव्यवस्था स्थापित होगी। मेरे अनुरोध को स्वीकार कर यदि आप अपने जीवन में इस प्रकार का शुभ परिवर्तन संघटित करेंगे, तो मुझे दृढ़ विश्वास है कि आप पतझड़ के बाद जीवन में समागत वसन्त की बहार को देखकर आनन्द-विमुग्ध हो उठेंगे। यदि आपको पुत्र-सन्तान नहीं है तो योग साधन के प्रसाद से आपका गृह-प्रांगण पुत्र-सन्तान के कलरव से मुखरित और उल्लसित हो उठेगा। यदि पुत्र-सन्तान की इच्छा नहीं है तो

योगबल से ब्रह्मचर्य का साधन तो होगा ही; सन्तति-निरोध भी अनायास हो जायेगा। आपकी वर्तमान स्थिति कैसी भी क्यों न हो, परन्तु योग-साधना का श्रीगणेश करने के पश्चात् आप उत्तरोत्तर उच्च स्थिति (शरीर में सामर्थ्य और आरोग्य का संचार, मन में शान्ति, ऐश्वर्य और दैवी गुणों का उत्कर्ष) में प्रवेश करेंगे। योगाभ्यास में गुप्त, अचिन्त्य एवं अगाध शक्ति भरी हुई है; इस बात को हमेशा स्मरण रखियेगा।

धन का सदुपयोग

आम जनता से एक विनम्र और अत्यन्त वाञ्छनीय निवेदन है कि वर्तमान काल में लोगों की यह बलवती प्रवृत्ति पाई जाती है कि सर्वत्र हमारी प्रतिष्ठा बढ़े; प्रशंसा प्राप्त हो, अर्जित धनका सदुपयोग हो, दीन-दुःखी लोगोंका कल्याण हो। इसी दृष्टिकोण को सामने रखकर दानवीर धनी-मानीवर्ग सिनेमा-नाटक के लिए, बृहत् सभा-भवन का निर्माण करने के लिये, अस्पताल, औषधालय और स्वास्थ्यगृह (सिनेटोरियम) के लिये, अन्नक्षेत्र, धर्मशाला, स्टेडियम, मठ-मन्दिर और तीर्थस्थानों के निर्माण और कार्य-संचालन के लिये धन-धान्य, जमीन-जायदाद, घर-वाड़ी, गाय-भैंस, वस्त्रादि एक अथवा अनेक साधनों से सहायता पहुँचाकर अपना कर्तव्य पूरा करता है। किन्तु सिनेमा घर, अस्पताल, स्टेडियम आदि की क्या आवश्यकता है? क्योंकि सिनेमा से हल्के प्रकार के संस्कार उत्पन्न होकर जीवन के विकृत हो जाने की सम्भावना अधिक रहती है। वर्तमान नागरिक जीवन में जो अनेक निन्दनीय और धन के अपव्यय के कारण हैं, उनमें सिनेमा भी एक कारण है।

योगाश्रमों का महत्व

इन सब बातों पर विचार करते हुए दानदाताओं का कर्तव्य है कि वह सुयोग्य संचालकों की देखरेख में चलने वाले और जनता को समुचित सेवायें प्रदान करने वाले योगाश्रमों को ही अपना सहयोग यथाशक्ति प्रदान करें। योगाश्रमों का महत्व अस्पतालों से भी अधिक है क्योंकि आरोग्य

प्रथम खंड

के वास्तविक नियमों से अपरिचित होने के कारण ही लोग रोग-विकारों में फँस जाते हैं। औषधालयों एवं अस्पतालों में जाकर इंजेक्शनों तथा औषधियों से रोग मुक्त बनने के प्रयास करते हैं, किन्तु इस प्रकार के प्रयास प्रायः निराशा मूलक ही होते हैं। अपवाद रूप से एक बार रोगमुक्त हो जाने पर भी इस बात की कोई गारण्टी नहीं—कोई प्रमाण नहीं कि रोग फिर से उभर न आयेगा। इसका फल यह होता है कि कुछ अपवादों को छोड़कर सर्व साधारण स्त्री-पुरुषों को जीवन भर औषधियों और इंजेक्शनों की परतन्त्रता में जकड़े रहना पड़ता है। श्रीरामतीर्थ योगाश्रम में रोग निवारण के लिये आने वाले मधुप्रमेह, दमा, क्षय आदि अनेक साध्य और असाध्य रोगी स्त्री-पुरुषों को मैंने प्रत्यक्ष रूप से देखा है कि वे अपनी जेब में प्रतिदिन अथवा तीसरे दिन लेने के लिये इंजेक्शन रखे हुए हैं। इन सब स्थितियों पर विचार करने के पश्चात् अन्तिम रूप से इसी निष्कर्ष पर पहुँचना पड़ता है और पहुँचना चाहिये भी, कि शरीर के रोगाक्रान्त होने से पहले ही किसी प्रतिष्ठित योगाश्रम अथवा अन्य प्राकृतिक चिकित्सालय में जनता को व्यावहारिक आरोग्य शिक्षा (अभ्यास, नियम, भोजन का विधि-विधान आदि) यथोचित रूप से ग्रहण करनी चाहिये। क्योंकि जबतक हम योगाभ्यास की ओर प्रवृत्त नहीं होंगे और प्राकृतिक जीवन द्वारा अपने तन-मन को स्वस्थ और आनन्दित नहीं बनायेंगे; तबतक विशाल धन-भण्डार, विपुल विद्या-वैभव, सुरम्य निवास स्थान, अपरिमित साधन, अनुभव, कला, समृद्ध साहित्य प्रचार, शिक्षा-प्रसार आदि जीवन को सुखी और यशस्वी बनाने वाली विभूतियों का आपके हाथ से किसी प्रकार का सदुपयोग हो न सकेगा; अतः मेरा अन्तिम विनम्र और हार्दिक अनुरोध यही है कि धन-सम्पत्ति से सम्पन्न लोग उदार हाथों से पवित्र प्रेमपूर्वक दान दें; सभी क्षेत्रों के विद्वान् महानुभाव अपनी विद्वत्ता के प्रभाव का आदान-प्रदान करें; अर्थात् संसार के कल्याण के लिए निःस्पृह भाव से अपने दिव्य ज्ञान की पवित्र धारा सर्वत्र प्रवाहित करें। जिन लोगों के पास न अधिक धन है और न अधिक बुद्धि-प्रतिभा है; वे लोग तन और मन से निर्विकार भाव से समाज-सेवा कर अपने को कृतकृत्य करें। ऐसा करने से

मैं समझता हूँ कि कुछ वर्षों में भारतवर्ष शारीरिक स्वास्थ्य और मानसिक शान्ति से उद्दीप्त हो उठेगा और धन-धान्य और विद्या ज्ञान से समृद्ध होकर स्वयं भी आत्मकल्याण के पथ पर अग्रसर होगा और अन्य को भी इस आदर्श पथ का पथिक बनाकर 'एक पंथ दो काज' की कहावत को चरितार्थ कर दिखायेगा। परम प्रभु हमारी इस महती उत्कंठा और सदाशा को सफल बनायें।

समय का सदुपयोग

मानव का स्वभाव और उसकी भावना कितनी विचित्र है ! जब तक कोई रोग विकार उसके शरीर में नहीं रहता; तबतक उसे यथा समय भोजनादि आवश्यक कार्यों का अवकाश नहीं रहता, सत्संग आदि के लिये वह समय निकाल नहीं पाता, आध्यात्मिक ग्रन्थों और योगाभ्यास-सम्बन्धी जीवनोद्धार करने वाले और आरोग्यप्रदायक समृद्ध साहित्य पढ़ने की ओर उसकी बिलकुल प्रवृत्ति नहीं होती, आठ घण्टे की शान्त निद्रा लेने के लिये समय नहीं है। कुछ भाई-बहनों को तो मल-सूत्र-न्यास के लिये भी समायाभाव रहता है। ऐसी दशा में योगाभ्यास की बातें करने का अवकाश ही कहां है ? वास्तविक स्थिति यह है कि आज का मानव भौतिक सुख-साधनों के अर्जन में अहर्निश व्यस्त है; ऐसी दशा में उसके समक्ष समय का प्रश्न उपस्थित होना स्वाभाविक है। किन्तु जब कोई रोग उत्पन्न होकर उग्र रूप धारण कर लेता है; तब डाक्टरी औषधालयों में बैठे रहने के लिये दो-दो घण्टे का समय मिल जाता है। इतना ही नहीं; घर में भी महीनों शय्याशायी रहने या अस्पतालों की खाटों में लेटे रहने का भी अवकाश निकालना पड़ता है। इस के प्रायः दुष्परिणाम भी प्रकट होते हैं कभी नौकरी से हाथ धो बैठना पड़ता है और कभी व्यापार-व्यवसाय में हानि होकर वह हाथ से निकल जाता है। इन सब अनिष्ट मूलक विघ्न-बाधाओं से सुदूर और सुरक्षित रह कर यदि आप सुखी शान्त जीवन प्राप्त करने की महत्वाकांक्षा रखते हैं तो 'शुभस्य शीघ्रम्'—प्रकृति के इस आदेश का

पालन करने के लिये आज से—अभी से योगाभ्यास का श्री गणेश कर दें और प्रतिदिन कम से कम आध घण्टे का समय (यथासम्भव प्रातःकाल; बाध्यतः सायंकाल) योगाभ्यास के लिये निकालें। यह साधना आप अपने घर में भी कर सकते हैं और किसी योगाश्रम के पवित्र वातावरण में भी कर सकते हैं। भोजन के तीन घण्टे के पश्चात् आसनों का अभ्यास किया जा सकता है और आसनाभ्यास के २० मिनट के पश्चात् भोजन करने में कोई हानि नहीं।

अन्त में आप सबसे मेरा यही विनम्र अनुरोध है कि आप लेखक हों; व्याख्याता हों; पंडित हों; वेदान्ती हों; भक्तियोग में प्रवीण हों; तन्त्र—मन्त्र के प्रयोक्ता हों; ज्योतिषी हों; कर्मयोगी हों; राजा—महाराजा या रानी—महारानी हों; मठ के महन्त हों; अथवा मन्दिर के यजमान और पुजारी हों; गायिका हों अथवा गायक; डाक्टर हों; वैद्य हों अथवा हकीम हों; ध्यानयोगी हों अथवा सांख्ययोगी; बौद्ध—धर्मावलम्बी हों अथवा जैन—धर्मावलम्बी; देवी के उपासक हों अथवा जगत् के किसी भी धर्म के पालक हों अथवा संचालक हों; किसी भी देश के वासी अथवा किसी भी भाषा के भाषी हों; व्यवहार में कुशल हों; परमार्थ में पारंगत हों; स्त्री हों, पुरुष हों—आप कोई भी हों; कोई चिन्ता नहीं; परन्तु यदि आप वर्तमान काल में योगाभ्यास कर रहे हों तो उसे निरन्तर जारी रखें और जिन सज्जनों ने अभी तक इस दिशा में उपेक्षा दिखाई है; वे अविलम्ब योगाभ्यास का श्री गणेश कर दें और इसकी अमृत-वर्षा का जीवन-रस-पान कर उल्लसित हों, धन्य हों।

हठयोग क्या है ?

हठयोग का अर्थ है 'ह' अर्थात् सूर्यनाड़ी और 'ठ' अर्थात् चन्द्रनाड़ी। सूर्यनाड़ी से उष्णता प्राप्त होती है और चन्द्रनाड़ी से शीतलता। प्राणायाम के द्वारा सूर्य और चंद्र नाड़ी के आधार पर आसन, प्राणायाम, मुद्रा आदि का अभ्यास किया जाता है। इसी का नाम हठयोग है। किन्तु हठपूर्वक दुराग्रह से शारीरिक अवयवों को कष्टसाध्य साधना द्वारा जो योगाभ्यास

किया जाता है, उसे हठयोग मानना गलत है। ब्रह्मचारी, गृहस्थाश्रमी (संसारी), वानप्रस्थी एवं सन्यास आश्रम वाले तथा हिन्दू, जैन, बौद्ध, सिख, मुसलमान, क्रिश्चियन आदि सभी धर्मावलम्बी स्त्री-पुरुष योगाभ्यास के सम्पूर्ण अधिकारी हैं। दुर्व्यसन, दुराचार और भोग विलास में फँसे हुए लोग भी यदि सुयोग्य विशेषज्ञ की देख-रेख में योगाभ्यास करें तो धीरे-धीरे उनके जीवन में नया परिवर्तन आयेगा और एक दिन वे दुर्व्यसनादि व्याधियों से पूरी तरह से छुटकारा पा जायेंगे। उनका जीवन स्वर्णमय बन जायेगा।

योगाभ्यास का अधिकारी कौन है ?

ब्राह्मण क्षत्रिय विशां स्त्री शूद्राणां च पावनम् ।

शांतये कर्मणामन्यद्योगान्नास्ति विमुक्तये ॥१॥

युवा वृद्धोऽतिवृद्धो वा व्याधिष्ठो दुर्बलोऽपि वा ।

अभ्यासात्सिद्धिमाप्नोति सर्व योगेष्वतंत्रितः ॥२॥

—हठयोग प्रदीपिका

अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और स्त्री-सबको योग का अधिकार है। जवान हो या वृद्ध हो अथवा अतिवृद्ध हो, व्याधि से पीड़ित हो या दुर्बलेंद्रिय हो, सबको योग का अधिकार है और उनको अध्ययन और साधना से योगसिद्धि हो सकती है। उनके मन को शांति या उनको मुक्ति देने वाला योग जैसा कोई अन्य बड़ा साधन उपलब्ध नहीं है। यही हठयोग प्रदीपिकाका संदेश है।

जो स्त्री-पुरुष सांसारिक व्यवहार-कार्य-सम्पादन में लगे हों अथवा अन्य किसी आश्रम का कर्तव्य-पालन कर रहे हों, वे षड्वैरियों से निस्सन्देह परे रहें, अर्थात् व्यावहारिक कामकाज करते समय किसी विशेष कारण-वशात् यदि काम-क्रोधादि विकार अनिवार्य रूप से आक्रमण करें तो अपने मनोबल से उनका प्रतिरोध कर आत्मा को द्रष्टा बनाये रखें। अर्थात् बाहर देखने वालों को आप व्यवहार कुशल प्रतीत हों। गांजा, भांग, खाने-

पीने और सूँघने की तम्बाकू, चाय, शराब आदि व्यसनों से पूर्णतया दूर रहें। सत्संग, सत्शास्त्रों (वेद, उपनिषद्, रामायण, योगवासिष्ठ श्रीमद्-भगवद्गीता, अष्टावक्र गीता, अवधूतगीता, महाभारत, श्रीमद्भागवत, पातंजल योगदर्शन, घेरण्डसंहिता, शिवसंहिता, महात्माओं के जीवनचरित्र आदि) का पठन-पाठन, शुद्ध, सात्विक भोजन, पवित्र स्थान में निवास, माता-पिता, गुरु आदि के वचनों का पालन आदि नैतिक कर्तव्यों का पालन प्रत्येक साधक के लिये आवश्यक है। जन समाज आज आधि-व्याधि और औषधियों से पीड़ित है। ऐसे लोगों को यथा सुलभ उपायों से वास्तविक सुख की ओर ले जाना अष्टांग योग का उद्देश्य है।

प्रयोजन

जिनकी बुद्धि अस्थिर है, मन चंचल है और जो किसी न किसी शरीरगत रोग से पीड़ित रहते हैं। डाक्टर, वैद्य, हकीम, ज्योतिषी और तन्त्र-मन्त्रादि विविध उपायों का आश्रय लेने पर भी जिन्हें व्याधियों से मुक्ति नहीं मिल पाती, उन्हें योगशास्त्र के लाभों और सामर्थ्य से परिचित कराना ही हमारा प्रमुख उद्देश्य है। व्याधीनाम् च परिमोक्षः। फिर भी छाती ठोक कर हम निश्चय पूर्वक यह दावा कर सकते हैं कि निरोग अवस्था में जो लोग श्रद्धा-विश्वास के साथ योगाभ्यास को अपनायेंगे, उनके भाग्य में रोगी होने का समय जीवन में कभी नहीं आ सकेगा। स्वस्थस्य स्वास्थ्य-रक्षणम्। अर्थात् निरन्तर योगाभ्यास करते रहने से शरीर निरोग तथा सुदृढ़ बनता है और मन पवित्र तथा शक्तिशाली बनकर आत्मज्ञान की ओर प्रवृत्त होता है।

संबन्ध

जैसे बाल्यावस्था, कुमारावस्था, युवावस्था, प्रौढ़ावस्था, वृद्धावस्था, जर्जरावस्था आदि में शरीर की स्थिति बदलती रहती है और जाग्रदवस्था, स्वप्नावस्था, तन्द्रावस्था, सुषुप्ति अवस्था और तुरीयावस्था क्रमानुसार

बदलती रहती है तथैव जीव अज्ञानावस्था में प्रत्येक स्थिति में अपने को परवश, अपूर्ण, चिन्ताग्रस्त और दुःखी समझता है। जिस दिन मनुष्य को स्पष्ट रूप से भान हो जायेगा कि कल्पलतिका के समान सर्वार्थसाधिका योगविद्या में अभिरुचि रखने और उसका व्यावहारिक साधन करने से निश्चय ही हमारा उद्धार होगा, उसी दिन से दुःख की सम्पूर्ण निवृत्ति होगी और सुख के साथ शाश्वत सम्बन्ध स्थापित होगा।

भारत का अग्रस्थान

योगविद्या—यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि—के उपासक समस्त जगत् में—विशेषकर भारत में—भूत काल में हो गये हैं, वर्तमान काल में भी उनका अस्तित्व विद्यमान है और भविष्य में भी उनका अवतरण निस्सन्देह होगा। परन्तु हमारे भूतकालीन योगवेत्ता ऋषि-महर्षियों और सर्वसाधारण ने यौगिक जीवन के आधार को केवल आत्मकल्याण तक ही स्वीकार किया है, शरीर को नीरोग, बलवान् तथा मन को विशुद्ध और पवित्र बनाने की दिशा में उनकी प्रवृत्ति बहुत कम जान पड़ती है। हाँ, यह हो सकता है कि उस समय ऋषि मुनियों के नियमानुसार प्राकृतिक जीवन ही दैनिक निजी जीवन का क्रम रहा हो, अर्थात् जंगलों में, खेतों में पुष्पवाटिकाओं में, मधु-कुंजों में और गोबर से लेपायमान घरों में बास करना, नदी-कूपादि के प्राणवायु युक्त शुद्ध जल का सेवन, शुद्ध खादी-वस्त्र के परिधान का धारण, दूध-फल-अन्नादि का समुचित उपयोग, सत्संग में विशेष अनुराग, सूर्य-नमस्कार के द्वारा सूर्यकिरणों और विशुद्ध प्राणप्रद वायु से विटामिन (जीवनसत्त्व) को ग्रहण कर शरीर में पहुँचाना आदि सब तरह से प्राकृतिक नैसर्गिक (कुदरती), जीवन होने से शारीरिक तथा मानसिक आरोग्य आसानी से प्राप्त होता रहता था। वर्तमान स्थिति सर्वथा विपरीत है। आज के स्त्री-पुरुषों की जीवन-चर्या उपर्युक्त नियमों के साथ मेल नहीं खाती। आजकल उद्योग-धन्वे से अवकाश मिलते ही लोग सिनेमा, नाटक, तमाशा, राग-रंग आदि

देखने के लिये सपरिवार जाते हैं। जाना ही चाहिये, न जायें तो इष्टमित्र सगे सम्बन्धी और पास-पड़ोस के लोग नित्य नई-नई बातें सुनाते हैं कि नागरिक जीवन में रहकर भी पशु-जीवन व्यतीत करते हैं। वे सलाह देते हैं कि जीवन के सुख, आनन्द और समाधान के लिये ही सिनेमा, तमाशा आदि मनोरंजन के साधन बनाये गये हैं; वहाँ जाना ही चाहिये। सिगरेट आदि भी पीना चाहिये। ऐसे लोग मानव को अनेक प्रकार के हानिकर व्यसनो से जकड़ देते हैं। फलस्वरूप शरीर में अनेक प्रकार के रोग लग जाते हैं और मन भी व्याधिग्रस्त हो जाता है। इस स्थिति में धन का अव्यय अनिवार्य है। अन्त में व्यापार-धन्धे में हानि उठानी पड़ती है अथवा उससे बिलकुल निवृत्ति लेनी पड़ती है; फलतः जीवन नरकमय बन जाता है। वर्तमान नागरिक जीवन में व्यस्त और रचे-पचे लोगों की यह स्थिति स्पष्ट देखी जा सकता है; शायद ही कोई अपवाद रूप में इस भयंकर अभिशाप से मुक्त हो। आत्मा के इस पवित्र मन्दिर को रोग-विकारों से मलिन और जर्जरित रखना अक्षम्य अपराध है।

क्या शरीर और मन की ओर ध्यान देना आवश्यक है ?

हां, यह अत्यावश्यक है। व्यवहार और परमार्थ के मार्ग में शरीर और मन मुख्य साधन हैं। इन्हीं के द्वारा अभीष्ट वस्तु की उपलब्धि सम्भव है। शुद्ध नाड़ियां, विशुद्ध रक्त, सुपुष्ट मांस, बलवान् मज्जातन्तु, सशक्त क्रियातन्तु तथा ज्ञानतन्तु विशुद्ध वीर्य-यह सब मानव-शरीर में यथोचित परिमाण में होंगे, तभी व्यवहार और परमार्थ-साधन में यथेच्छ सफलता मिल सकती है। हाँ, यह सत्य है कि वर्तमान युग में अधिकांश पढ़े-लिखे शिक्षित, सभ्य कहलाने वाले स्त्री-पुरुष रंग-बिरंगे वस्त्र-परिधान से सुसज्जित होकर और स्नो पाउडर, लिपस्टिक तथा आकर्षक आभूषणों से अपने बाह्य सौन्दर्य-संवर्धन का जो आयोजन करते रहते हैं, वह कदापि उचित नहीं। सौन्दर्य के ये बाह्य प्रसाधन नितान्त हानिप्रद और अवांछनीय हैं। हमारे लिये हितकर यही होगा कि जिस प्रकार भगवान् की मूर्ति और

मन्दिर को सुन्दर, सुरम्य, सुदृढ़ और स्वच्छ रखना आवश्यक है। वही स्थिति शरीर पर भी लागू होती है शरीर भी आत्मा-परमात्मा का मन्दिर है।

क्या योगाभ्यास व्यसन है ?

बहुतेरे भाई-बहन हमसे पूछते हैं कि योगाभ्यास सीख लेने के पश्चात् उसे छोड़ देने से शरीर के अशक्त और रोगी हो जाने की आशंका है, तो योगाभ्यास भी एक प्रकार का व्यसन ही जान पड़ता है। ऐसी दशा में योगाभ्यास क्यों किया जाये ? इसका समाधानात्मक उत्तर यही है कि पेशाब करना, मल विसर्जन करना, भोजन करना, निद्रा लेना, जल पीना आदि शरीर-निर्वाह के सभी कार्य एक प्रकार के व्यसन ही हैं। परन्तु हम उन्हें व्यसन नहीं कहते। यह सब कार्य यथासमय करने के लिये हम अनिवार्य रूप में बाध्य हैं। अस्तु, योगाभ्यास को व्यसन मानना अनुचित है, बल्कि शारीरिक और मानसिक शान्ति तथा आत्मकल्याण के लिये योगाभ्यास का जीवन का एक अनिवार्य अंग है—कर्तव्य है। २४ घण्टों में कम से कम आध घण्टा योगसाधना में व्यतीत करना बड़ी बात नहीं है। वैसे देखा जाये तो भोग-विलास मौज-शौक और अधोगति के गर्त में धकेल देने वाले अनेक व्यसन—जैसे तपकीर सूँघना, गांजा-भांग, मद्य, बीड़ी-सिगरेट-तम्बाकू आदि अल्प या अधिक परिमाण में अधिकांश लोगों के पीछे लगे हुए हैं। अपवाद रूप में शायद ही कोई स्त्री-पुरुष इन व्यसनों में न पड़ा होगा। परन्तु बम्बई आदि नगरों के ९५ प्रतिशत निवासी अवश्य ही ऐसे होंगे, जो चाय—काफी आदि दुर्व्यसनों के जटिल जाल में इच्छा या अनिच्छापूर्वक फँसे हुए हैं। यह सभी व्यसन तन-मन-धन को हानि पहुँचाते हैं, परन्तु योगाभ्यास का व्यसन—यदि वह सचमुच व्यसन है—परमोत्तम और लाभकर भी है। यदि कोई योगसाधना को व्यसन मानता हो तो भी इससे किसी प्रकार की हानि की आशंका नहीं, क्योंकि निन्द्य दुर्व्यसनों की तुलना में योगाभ्यास का सद्व्यसन सर्वश्रेष्ठ फलदायक है। लज्जा.शर्म के कारण,

समय और स्थान के अभाव के कारण, अधिक आयु और ऋतु के कारण अथवा इसी प्रकार के अन्य कारणों का बहाना लेकर यदि आप योगाभ्यास के परमोत्कर्षकारी आशीर्वादों से वंचित रहेंगे तो आपका बहुमूल्य शरीर विविध रोगों का अपना निजी घर बन जायेगा, मन चिन्ता, भय, क्रोध आदि व्याधियों से घिरा रहेगा और आप जगत् जीवन के वास्तविक सुख से सर्वथा वंचित रहेंगे। केवल यथाशक्ति धन-ऐश्वर्य अर्जित करते रहना जीवन का मुख्य उद्देश्य नहीं है। यदि शरीर रोगी और विकारमय है तो अत्यन्त कष्ट से कमाया हुआ यह धन वैद्य-डाक्टरों की दवा, ज्योतिषी, तंत्र-मंत्र तथा भूत-पिशाचों के निवारण-प्रयोगों में व्यय होगा। क्या धन का इस प्रकार का अपव्यय किसी को अभीष्ट होगा? सर्वसाधारण जनता को इस प्रश्नपर ठण्डे दिल से गम्भीरता पूर्वक विचार करना चाहिए।

औषधियों से यथासंभव बचें

सर्वसाधारण रूप से यह देखा जाता है कि शरीर में रोगों की अभिवृद्धि होने के पश्चात् रोग-मुक्त होने के लिये अनेक प्रकार के अप्राकृतिक उपायों (अवाञ्छनीय उपचारों) का आधार लेना पड़ता है। इससे रोग शरीर से बाहर नहीं जाते हैं, बल्कि कुछ दिनों महीनों अथवा वर्षों के लिए दब जाते हैं और वही दबे हुए रोग कोई अन्य उग्र स्वरूप धारण कर जब प्रकट होते हैं; तब उनका नाम बदल जाता है। अन्त में जीवन से हताश होने की स्थिति आ पहुँचती है। ऐसी दशा में उचित यह है कि शरीर में किसी प्रकार का रोग उत्पन्न होने पर योगाभ्यास या प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा उसे शरीर से बाहर निकालने का प्रयोग-परीक्षण किया जाये। इस प्रयोग की सफलता अनिवार्य है और कदाचित् असफल हो जाये या साधक की त्रुटि से उचित लाभ न मिले, तो भी इससे हानि की आशंका तो की ही नहीं जा सकती। योगाभ्यास हमारा नित्य-कर्तव्य होना चाहिये।

दवाओं से रोग की जड़ नहीं जाती

किसी के पास कितनी ही बड़ी सत्ता क्यों न हो, समाज में बड़े से

बड़ा सम्मान और प्रतिष्ठा हो, डिग्रियों (उपाधियों) से कोई कितना ही उच्च माना जाता हो, सौन्दर्य, सुख, गाड़ी, वाड़ी आदि अनेक प्रकार के ऐश्वर्य भले ही किसी के चरणों पर लोटते हों, किन्तु यदि प्राकृतिक जीवन-धारण की वास्तविक विद्या (कला) से आप अनभिज्ञ हैं तो उसके लाभ आपको कैसे मिल सकेंगे बल्कि उपरिनिर्दिष्ट दवाओं और मलिन विधाओं के प्रयोग से सामाजिक स्वास्थ्यदान का ठेका ले रखने वाले विभिन्न वर्गों के लोग आप की कमजोरियों से अनुचित लाभ उठाये बिना कैसे रह सकते हैं ! इस प्रकार विशाल मात्रा में तन-मन-धन-सर्वस्व अर्पण कर देने के पश्चात् आपका रोग कुछ दिनों के लिये दब भी सकता है और आप ऐसा अनुभव कर सकते हैं कि रोग की जड़ पूर्णतया कट गई । किन्तु वस्तुतः ऐसा होता नहीं । रोग के मूल कारण शरीर में विद्यमान रहते हैं और अवसर पाकर वे पूर्वरूप में अथवा अन्य किसी रूप में उभर कर आप को चिन्ता, भय और आपत्तियों में डाल देगे । आप पूर्ववत् रोगी बनकर डाक्टरों और वे मिस्टों की दूकानों पर भटकने लगेंगे ।

रोगी होने के दुष्परिणाम

आप अन्य लोगों से अपनी सेवा कराने की इच्छा कभी न रखें, बल्कि आपके हृदय में यह इच्छा निरन्तर रहनी चाहिये कि दूसरों की सेवा मैं किस प्रकार कर सकता हूं । इसका अर्थ यह है कि इच्छा न होने पर भी आप यदि एकाएक किसी रोग की चपेट में आ जायेंगे तो आपको स्वयं तो शारीरिक और मानसिक कष्ट उठाना ही पड़ेगा, विवश हाकर अपने उद्योग-धन्धे और नौकरों से भी अलग रहना पड़ेगा । माता-पिता, भाई-बहन, पुत्र-पुत्री, इष्टमित्र और अन्य सुहृद्-सम्बन्धी जनों को आपकी सेवा में दिन-रात लगे रहना पड़ेगा । फलतः आपका जीवन क्लेशमय और क्षतिग्रस्त तो होगा ही, साथ ही शुभचिन्तक सम्बन्धी जन भी हैरान-परेशान होंगे । ऐसे लोग कुछ दिन तक भले ही स्नेह के नाते सहानुभूति-पूर्वक सेवा सुश्रवा करते रहेंगे, किन्तु तदन्तर वे स्वभावतः उकता जायेंगे,

घबरा उठेंगे, वे मुंह में भले ही कुछ न कहेंगे, किन्तु मन में अवश्य ही विचार करेंगे कि अभी और कितने दिनों तक इस प्रकार की परेशानी उठानी पड़ेगी, अर्थात् शनैः शनैः उनका मन ग्लानि और अशान्ति से भरता जायेगा, जिसके फलस्वरूप अन्ततः अस्पताल की शरण लेनी पड़ेगी। इससे स्पष्ट है कि रोगी होना कितना बड़ा सामाजिक अपराध है ?

योगाभ्यास की व्याप्ति

योगाभ्यास का प्रचार और प्रसार योगाश्रमों तक ही सीमित न रहना चाहिये, बल्कि इसका व्यापक प्रचार-प्रसार होना चाहिये, अर्थात् मठ-मन्दिरों, धर्म स्थानों (हिन्दू, जैन, बौद्ध, सिख, मुसलमान, क्रिश्चियन, यहूदी आदि विभिन्न धर्मावलम्बियों के धर्म स्थानों) में, स्कूल, हाई स्कूल और कालेजों में, समाजसेवा-कार्यों के स्थानों में, कहां तक गिनार्ये-अनाथालयों से लेकर राजमहलों तक में योगाभ्यास का प्रचार होना चाहिये। इस सम्बन्ध में संकुचित दृष्टिकोण नहीं रखना चाहिये। विश्वशान्ति और मानवमात्र की शान्ति के लिये योगाभ्यास अन्य अनेक अंगों में एक अत्यावश्यक और अनिवार्य अंग है। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं।

देशी-विदेशी खेल और योगाभ्यास

इसके अतिरिक्त वर्तमान समय में देश में प्रचलित विदेशी खेलों—जैसे कि टेनिस, क्रिकेट, बेडमिन्टन, बिलीयार्ड, हाकी आदि—के साधनों के एकत्र करने में विशेष धन-व्यय, विशाल स्थान, बहुतेरे मनुष्यों के सहयोग और बृहत् प्रबन्ध की आवश्यकता है। वैसे तो अनेक देशी-खेल जैसे कि अश्वारोहण, तैरना, साइकल की सवारी, कुश्ती, सिंगलवार, डबलवार आदि भी उपयोगी हैं, किन्तु इनके उपयोग के लिये अन्य साधनों और विशेष व्ययसाध्य साधनों की आवश्यकता पड़ती है। देशी व विदेशी खेलों का मैं विरोध नहीं कर रहा हूँ। यदि अनुकूल हों तो इन्हें भी मोल लेना चाहिये। किन्तु यह खेल दूसरों के साथ लिये बिना नहीं खेले जा सकते

और लाभ, स्थान तथा समय भी सबके लिये अनुकूल नहीं होता, ऐसे ही अन्य अनेकों कारणों से इन खेलों को अन्ततः छोड़ ही देना पड़ता है। परन्तु योगासनों की साधना के लिये न तो किसी साधन-सामग्री की आवश्यकता है और न विशाल स्थान अथवा धनादि की ही सुविधा चाहिये। केवल कुछ दिनों तक योगाभ्यास के तज्ञ (जानकार) का कुछ सहयोग लेना पड़ता है। इसके अतिरिक्त उपर्युक्त सभी खेल रजोगुण और तमोगुण के जन्म-दाता हैं, किन्तु योगाभ्यास शुद्ध सात्विक गुणों का उत्पादन और संवर्धन करता है। इससे शरीर में रहा-सहा रोग भाग खड़ा होता है और शरीर में पुनः किसी रोग का आवेश हो नहीं पाता। योगाभ्यास आयु को बढ़ाता है और शरीर के छोटे-बड़े सम अवयवों को लचीला और कसीला बना देता है। शारीरिक इन्द्रियाँ सतेज और सशक्त बनती हैं किन्तु अन्य व्यायामों में यह गुण नहीं पाया जाता और पाया भी जाता है तो अल्प परिमाण में। ये भारी और अतिशय कष्टसाध्य व्यायाम शरीर के अवयवों को अधिक कठोर बना देते हैं और समय से पहले ही वृद्धावस्था आ धमकती है। कभी-कभी मल्लयुद्ध या कुश्ती के समय, अश्वारोहण (घुड़सवारी) के के समय, क्रिकेट आदि विविध खेलों के समय शरीर के किसी एक अवयव अथवा कई अवयवों को भारी चोट लग जाती है, फलतः पर्याप्त कष्ट उठाना पड़ता है और कभी-कभी तो ऐसी सांघातिक चोट लग जाती है कि उसके प्रभाव से समस्त जीवन ही पराधीन, दुःखी और दूभर हो जाता है।

‘शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्।’

अर्थात् स्थूल, सूक्ष्म, कारण और महाकारण शरीरके संयोग से ही पारस्परिक व्यवहार और परमार्थ का साधन सम्भव है। इस शरीर को सशक्त, नीरोग और सर्वांग सुन्दर बनाये रखने के लिये पातंजल-योगदर्शन ग्रन्थ में अत्युत्तम और उपयोगी साधन बताये गये हैं। पातंजल योगदर्शन के साधनपाद में अष्टांग योग का विधान किया गया है। इस योग के आठ अंग इस प्रकार हैं :—

‘यम-नियमासन-प्राणायाम-प्रत्याहार-धारणा-ध्यान-समाधिऽष्टावङ्गानि ।’

योगदर्शन, साधनपाद, सूत्र २६

अर्थात् यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि—ये योग के आठ अंग हैं। इस साधन को लोग हठयोग अथवा अष्टांग योग कहते हैं।

आवश्यक निवेदन — शंका-समाधान

हमारे देश—भारतवर्ष के अधिकांश लोग यह मान बैठे हैं कि हठयोग की साधना केवल उन्हीं लोगों के लिये है, जो त्यागी, वैरागी, बाबा, ब्रह्मचारी और सन्यासी हैं तथा जो संसार को त्याग कर गुफाओं, जंगलों और तीर्थस्थानों में निवास करते हैं और सांसारिक कर्तव्य पालन से विरत हैं; किन्तु यह धारणा नितान्त भ्रान्त है। कदाचित् कुछ साधु-सन्तों और पेट पूजक स्वार्थी मानवों ने सर्व साधारण जनता को योग के कल्याणकारी मार्ग से अलिप्त रखने के लिये विचित्र ढंगसे ही इसका प्रचार किया होगा—आज भी वे ऐसा कर रहे होंगे। शारीरिक और बौद्धिक—दोनों प्रकार से जनता को योग के लाभों से वंचित रखने के लिये ही सम्भवतः उन्होंने यह भय उत्पन्न किया है।

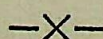
कुछ मिथ्या प्रदर्शन

आजकल योग के ढोंगी प्रचारक आम जनता को शंकाशील बनाये रखने के लिये और योगाभ्यास के लाभों से वंचित रखने के लिये योग के विचित्र प्रयोगों का प्रदर्शन करते रहते हैं। उदाहरणार्थ, गेरुआ रंग के जल में ‘वस्त्रधौति’ को भिगोकर खा जाते हैं और उसके अग्रभाग को मुंह के अन्दर दबाये रखते हैं। (‘वस्त्रधौति’ का विशेष विवरण मलशोधन—क्रिया के अन्तर्गत ‘धौतिकर्म’ में पढ़िये।) प्रयोग काल में आम जनता के सामने आकर वे उस ‘धौति’ को मुंह से बाहर निकाल कर और जल में धोकर पुनः निगल जाते हैं। तदुपरान्त वे जनता को समझाते हैं कि मैं अपनी इन

आंतीं को बाहर निकालकर धोने के पश्चात् पुनः पेट में यथास्थान लगा लेता हूँ—फिट कर लेता हूँ। हमारे देश के अधिकांश और अन्धविश्वासी भोले भाले लोग इस बात को सत्य मान बैठते हैं। किन्तु वस्तुतः ऐसा होता नहीं—हो ही नहीं सकता। शरीर-रचना की दृष्टि से यह कार्य प्राकृतिक नियमों के विरुद्ध है। यह तो केवल जनता को अन्धकार में रखकर उसे धोखे में डालना है। इसका फल यह होता है कि हमारे देश के जनसाधारण योग साधना के कार्य को असम्भव और विशेष कर दैवी शक्ति सम्पन्न मानवों का कार्य मान बैठते हैं और योग-साधना की ओर उनकी प्रवृत्ति नहीं होती। वे उससे दूर भागते हैं। हमारे देश में एक समय वह था, जब कि योगाभ्यास सरल रीति से होता था और घर-घर में सभी स्त्री-पुरुष आनन्द और रुचि के साथ यह दिव्य योग-साधना करते थे तथा आरोग्यमय शरीर, शान्तिपूर्ण मानस और आत्मकल्याण से पुरस्कृत होकर अपने जीवन को सुखमय बनाये रखते थे।

इस ग्रन्थ में आसनों को तीन भागों में विभाजित किया गया है :—

(१) अल्प श्रमसाध्य। यह ऐसे आसन हैं, जिनके साधन से शरीर के अंग-प्रत्यंगों को बहुत कम कष्ट और श्रम उठाना पड़ता है। यह आसन उन स्त्री-पुरुषों के लिये हैं; जिन्होंने कभी योगाभ्यास नहीं किया। ऐसे लोग अभ्यास के आरम्भ में सरलता से इन आसनों को कर सकेंगे। इसके अतिरिक्त जो लोग योगाभ्यास और उसके लाभों के सम्बन्ध में सशंकित हैं, वे भी सरलता और उत्साह के साथ अल्पश्रमसाध्य (सरल) आसनों का अभ्यास कर यथोचित लाभ उठा सकेंगे। अल्प श्रमसाध्य आसनों का समुचित अभ्यास हो जाने के पश्चात्—(२) श्रमसाध्य (कुछ कठिन) आसन भी साधकों को सरल हो जायेंगे और वे आनन्द के साथ उनका अभ्यास करने लगेंगे। तदुपरान्त प्रयत्नपूर्वक (३) विशेष श्रमसाध्य—अति कठिन आसनों का अभ्यास करें।



अष्टांग योग

यम

अहिंसा—सत्यास्तेय—ब्रह्मचर्यापरिग्रहा—यमाः ।

—योगदर्शन, साधनपाद, सूत्र ३०

अष्टांग योग का प्रथम अंग यम है । यम के ५ प्रकार हैं—अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह ।

अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यं क्षमा धृति ।

दयाजिवं मिताहारः शौचं चैव यमा दश ॥१॥

—याज्ञवल्क्य—संहिता

अथे :— १ अहिंसा, २ सत्य, ३ अस्तेय, ४ ब्रह्मचर्य, ५ क्षमा, ६ धृति
७ दया, ८ आर्जव, ९ मिताहार, १० शौच—यह यम के दस प्रकार हैं।
पाठकों की जिज्ञासा—तृप्ति के लिये ही यहां याज्ञवल्क्य—संहिता का उल्लेख
किया गया है, किन्तु मेरे मतानुसार 'पातंजल योगदर्शन' का वर्णन विश्व-
सनीय है।

अहिंसा

कर्मणा मनसा वाचा सर्वभूतेषु सर्वदा ।

अक्लेशजननं प्रोक्तमहिंसात्वेन योगिभिः ॥१॥

अहिंसा :—मन, वचन, कर्म से दैनिक जीवन में यथासाध्य हिंसा से
विरत रह कर अहिंसा का आचरण करना जीवन में अहिंसा को उतारना—
अहिंसा कहलाती है।

अहिंसा प्रतिष्ठायां तत्संनिधौ वैरत्यागः ।

—पातंजल योगदर्शन, साधनपाद, सूत्र—३५

सत्य

सत्यं भूतहितं प्रोक्तं नायथार्थाभिभाषणम् ॥

—या. सं.

सत्य—मन—वचन—कर्म से यथाशक्ति सत्य का पालन करना और
असत्य से मुक्त रहना—इसी का नाम सत्य है।

अस्तेय

कर्मणा मनसा वाचा परद्रव्येषु निःस्पृहः ।

अस्तेयमिति संप्रोक्तमृषिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥१॥

अर्थात् चोरी से मुक्त रहना। दूसरे के घर में जाकर चोरी करने या
ढाका डालने को ही चोरी नहीं कहा जाता, अपितु हमारे घर में जो वस्तुयें

हैं, जो साधन-सामग्री और सम्पत्ति है, वह भगवान की देन है, भगवान का प्रसाद है, ऐसा समझ कर जितना आवश्यक है, उतने का ही उपयोग अपने लिये करें और शेष सम्पत्ति को अधिकारी और सुपात्र को दान कर दें अर्थात् उसका दैवी सम्पत्ति के रूप में वित्तियोग करें। घर की वस्तु का उपयोग करते समय घर में जो यजमान विद्यमान हों, उनको देवतुल्य समझ कर उनकी सम्मति से सम्पत्ति का सदुपयोग करना चाहिये। इसी प्रकार समाज के साथ सम्बन्ध रखने योग्य समय में भी अनुमति लेने योग्य महानुभावों से अनुमति लेकर सम्पत्ति को यथोचित सर्वजनोपयोगी कार्य में लगाना चाहिये। इस प्रकार के शुभ कार्य को योग की भाषा में 'अस्तेय' कहा जाता है।

अस्तेय प्रतिष्ठायां सर्वरत्नोपस्थानम् ।

—पातंजल योगसूत्रम् साधनपाद, सूत्र ३७.

ब्रह्मचर्य

कर्मणा मनसा वाचा सर्वाविस्थासु सर्वदा ।

सर्वत्र मेथुनत्यागो ब्रह्मचर्यं प्रचक्षते ॥१॥

—या सं.

ब्रह्मचर्य :—मनसा-वाचा-कर्मणा यथाशक्ति चतुर्वर्णाश्रमानुसार ब्रह्मचर्य का समुचित रूप से पालन करना अनिवार्य है। ब्रह्मचर्य के दो अर्थ हैं। इसका व्यावहारिक अर्थ है वीर्यरक्षा करके और उसे ओजस् के रूप में परिवर्तित करके आरोग्य, सशक्त इन्द्रिय एवं ओजस्-तेजस् से भरपूर तथा मेघाशक्ति से सम्पन्न होकर १०० वर्ष तक जीवन धारण करना। वीर्य के दो मार्ग हैं—उर्ध्व और अधो। उर्ध्वगामी वीर्य होने से उपर्युक्त लाभ तो मिलते ही हैं, साथ ही उसका सद्ब्यय भी व्यवहार और परमार्थ में किया जा सकता है। गृहस्थाश्रमी जन शास्त्रीय नियमों के अन्तर्गत उसी वीर्य का यथोचित परिमाण में उपयोग कर सुदृढ़, सशक्त एवं देदीप्यमान सन्तान उत्पन्न कर सकते हैं। अधोगामी मार्ग में वीर्य का व्यय करने से विषय लो-

लुपता बढ़ जाती है, फलतः बुद्धिमन्दता, मानसिक दुर्बलता, इन्द्रियशिथिलता, अधैर्य, भय, चिन्ता, व्यग्रता, अशान्ति, क्रोध आदि मनोविकार और प्रतिकूल संयोग के उत्पन्न हो जाने की सम्भावना रहती है, इसलिये वीर्य का दुरुपयोग कभी न करें। इसी का नाम व्यावहारिक ब्रह्मचर्य है।

ब्रह्मचर्य प्रतिष्ठायां वीर्यलाभः ।

—पातंजल योगदर्शन, साधनपाद, सूत्र ३८

ब्रह्मचर्य का पारमार्थिक अर्थ

जो सर्वात्र व्यापक, समग्र संसार का विधाता, जगन्निधन्ता, खेचर, भूचर, जलचर और चराचर में व्याप्त है और जो साकार और निराकार रूप में अवस्थित परब्रह्म है, उसके समीप पहुँचने की तैयारी करने और तदनुसार आचरण करने का नाम पारमार्थिक ब्रह्मचर्य है।

अपरिग्रह

अपरिग्रह स्थैर्ये जन्मकथन्ता संबन्धः ॥

—पातंजल योगदर्शन, साधनपाद, सूत्र ३९

अपरिग्रह :—अपनी आवश्यकता से अधिक धन और भोग-सामग्री का संचय न करने को अपरिग्रह कहा जाता है।

वचनामृत

बाल्यावस्था अत्यन्त महत्वपूर्ण और ग्रहणशील अवस्था होती है। इस अवस्था में अच्छे-बुरे जो भी संस्कार मानव के साथ लग जाते हैं; वे जीवन के अन्तिम समय तक जमे रहते हैं, उनसे मुक्ति मिलना सहजसाध्य नहीं। अतः बाल्यावस्था में उत्तमोत्तम संस्कारों से जीवन को सुसंस्कृत बनाने के प्रयास करने चाहिये। समस्त जीवन का आधार बाल्यावस्था के शुभाशुभ संस्कारों पर निर्भर करता है।

नियम

शौच—सन्तोष—तपः—स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि—नियमाः ॥

—पातंजल योगदर्शन, साधनपाद, सूत्र ३२

अष्टांग योग के द्वितीय अंग को नियम कहते हैं। इस नियम के पांच प्रकार हैं—शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान।

तपः संतोषमास्तिक्यं दानमीश्वरपूजनम् ।

सिद्धांतश्रवणं चैव ह्रीर्मतिश्च जपो हुतम् ॥

—या. सं.

तप, संतोष, आस्तिक्य, दान, ईश्वर पूजन, सिद्धांत श्रवण, ह्री, मति, जप और हुत—यह 'नियम' के संहिता के अनुसार १० प्रकार हैं। पाठकों की जिज्ञासा—तृप्ति के लिये ही यहां याज्ञवल्क्य—संहिता का उल्लेख किया गया है, किन्तु मेरे मतानुसार 'पातंजल योगदर्शन' का वर्णन अधिकांश में विश्वसनीय है।

शौच

शौचं तु द्विविधं प्रोक्तं बाह्यमाभ्यन्तरं तथा ।

मृज्जलाभ्यां हि बाह्यां तु मनः शुद्धिस्तथांतरम् ॥१॥

—या सं.

शौच—शौच स्नान को कहते हैं। स्नान भी दो प्रकार के होते हैं—आन्तरिक और बाह्य। मिट्टी, जल, भस्म आदि से शरीर को स्वच्छ करना बाह्य स्नान कहलाता है। आन्तरिक स्नान दो प्रकार के हैं। इन दो प्रकार में एक प्रकार है नेति, धौति, बस्ति, नौलि, त्राटक, कपालभाति आदि छः प्रकार के मलशोधन कर्मों द्वारा शरीर का शुद्धीकरण करना। अंतःशौचका द्वितीय प्रकार है यथामति और यथाशक्ति षड्वैरियों—काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मत्सर आदि—से अन्तःकरण (मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार) को मुक्त रखना।

संतोष

यदृच्छा लाभतो नित्यं मनः पूतः सहेदिति

आधींस्तानृषयः प्राहुः संतोषं सुखलक्षणम् ॥१॥

—या- सं.

सन्तोष—जिस समय जो भी साधन—सामग्री उपलब्ध हो, उसीमें मन को मना लेना—मन का समाधान कर लेना—सन्तोष कहलाता है।

तप

विधीनोक्तेन मार्गेण कृच्छ्रं चांद्रायणादिभिः ।

शरीरशोषणं प्राहुस्तपसां तपउत्तमम् ॥ १ ॥

—या. सं.

तप—उष्ण-शीत, मानापमान, सुख-दुःख, हानि-लाभ, जय-पराजय आदि को सहिष्णुता पूर्वक समान समझना तप कहलाता है।

स्वाध्याय

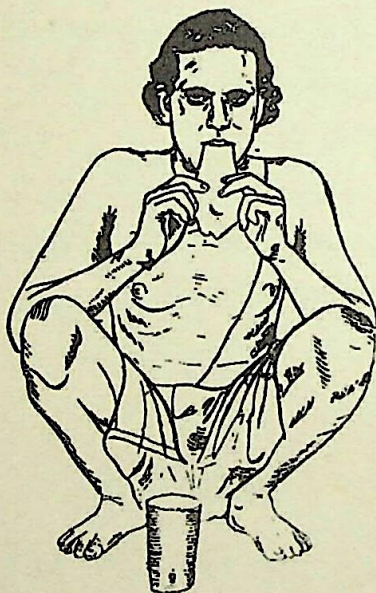
व्यवहार कुशल बनने, उदर का भरण-पोषण करने और परोपकार के लिये आवश्यक व्यवहार-शास्त्र का पठन-पाठन करना चाहिये। इसके अतिरिक्त वेद, उपनिषद्, योगवासिष्ठ, श्रीमद्भगवद्गीता, श्रीमद्भागवत, सत्पुरुषों के जीवन चरित्र और उपदेशादिका पठन-पाठन और मनन आदि करने को स्वाध्याय कहा जाता है।

ईश्वरप्रणिधान

जो कुछ स्थावर-जंगम साधन-सम्पत्ति है, उसे परमात्मा को समर्पित कर देने का नाम ईश्वरप्रणिधान है।

वचनानृतम

संसार में विविध प्रकार के दुःखों से पीड़ित स्त्री-पुरुषों के लिये योग विद्या परम शान्ति और सान्त्वनादायक है। योगविद्या की सुदृढ़ नौका में बैठकर इस विशाल संसार-सागर के उस पार सरलता से पहुंचा जा सकता है। योगविद्या हमें शारीरिक आरोग्य और मानसिक शान्ति प्रदान करती है। योगाभ्यासी मानव जीवन के दैनिक कर्तव्यों के प्रति सम्पूर्ण जिम्मेदार बनता है। वह जिस कार्य को शुरू करता है, उसको अन्ततक पूरा करके ही शान्ति लेता है। योगाभ्यास सचमुच मानव-जीवन के लिये दैवी वरदान है। यह मनुष्य को आत्मपरिष्कार और आत्मबहिष्कार (निःस्पृहता) की ओर प्रवृत्त करता है। योगाभ्यास स्वर्गीय सुख का विधायक है। योगाभ्यासी कभी अकर्मण्य और आलसी नहीं रह सकता। योगाभ्यास अवश्य करें और इसकी दैवी शक्तियों से लाभ उठायें।



मलशोधन कर्म

धौतिर्बस्तिस्तथा नेतिस्त्राटकं नोलिकं तथा ।

कपालभातिश्चैतानि षट्कर्माणि प्रचक्षते ॥१॥

—यो. प्र.

शरीर में भरे हुए (स्थूल रूप में अस्तित्व में रहने वाले) विजातीय द्रव्य अर्थात् मल को शरीर से दूर करने के लिये योगविद्या में छः प्रकार के मलशोधन कर्मों का विधान किया गया है, जिसे षट्कर्म कहा जाता है। 'एक पन्थ दो काज' की कहावत के अनुसार मलशोधन कर्म में कम से कम दो लाभ अवश्यमेव हैं। नेति-कर्म से नाक के रोग मिट जाते हैं और आँखों की ज्योति बढ़ती है। इसी प्रकार धौति-कर्म से गले के स्वर में सुधार होता है। अन्नाशय-कोश शुद्ध होता है और वात, पित्त तथा कफ का सम परिमाण में नियन्त्रण होता है। इसी प्रकार अन्य मलशोधन-कर्मों का भी लाभ समझना चाहिये।

अतः इन सुलभ, सशक्त और लाभप्रद क्रियाओं से वंचित न रहें। इनका अभ्यास कर समुचित लाभ उठायें।

एनिमा, स्टमक—वाश आदि पद्धतियों से डाक्टर सर्वसाधारण जनता को पेट साफ रखने की सलाह देते हैं और इसी प्रकार कई रोगों का निदान करते हैं, किन्तु उपर्युक्त दोनों पद्धतियां हमारे छः प्रकार के मलशोधन-कर्मों की ही सुधरी हुई नकल हैं। हमारे देश का आज का सुधरा हुआ (एजुकेटेड वर्ग-वर्तमान सभ्यता के रंग से ओतप्रोत) वर्ग लज्जा (शर्म), समयाभाव और कुछ वेदना का भय आदि कारणों से योग-साधनों से दूर रहना चाहता है। यह भावना नितान्त भ्रान्तिपूर्ण है। यही कारण है कि आज यही सुधार हुआ कथित सभ्य समुदाय शारीरिक रोग, मानसिक व्याधि और धन के अपव्यय से पीड़ित है। परन्तु योग-साधना एक ऐसा शक्तिशाली जीवन-विधान है, जो दुर्गति से और धन के अपव्यय से बचाकर निस्सन्देह सन्मार्ग पर पहुँचा देता है। भगवान् हम सब को सद्बुद्धि दें, जिससे हम अपने पूर्वजों की इस सफल आरोग्य-प्रणाली का समुचित सम्मान कर सकें।

छः प्रकार के मलशोधन-कर्मों की रीति, समय और लाभका भली-भाँति परिचय कराया गया है और छायाचित्रों के साथ ऐसी सरल पद्धति से समझाया गया है कि लोग अपने घर में ही आसानी के साथ इनका

अभ्यास कर सकेंगे। फिर भी अपवाद रूप से जिन भाई-बहनों को इस सम्बन्ध में कोई शंका हो, वे जवाब के लिये डाक-व्यय के टिकट भेजकर हमसे अपना समाधान करा सकते हैं।

आप वर्तमान काल में अवश्य नीरोग होंगे-होना ही चाहिये। परन्तु याद रखिये कि भविष्य में ऐसी परिस्थितियाँ भी उत्पन्न हो सकती हैं, जब कि आप शारीरिक और मानसिक रोगों और विकारों से संतुष्ट हो उठें और अन्य लोगों के लिये भी दुःखदायी बन जायें। किन्तु यदि आप इस नीरोगावस्था में, शक्ति सम्पन्न स्थिति में अभी से योगाभ्यास सीखकर-उसकी शास्त्रीय-वैज्ञानिक पद्धति से परिचित होकर-हमेशा इसका थोड़ा भी अभ्यास करते रहेंगे तो कभी कोई भी रोग आप के समीप आ न सकेगा। कदाचित् कोई रोग हुआ भी तो योगाभ्यास परिपुष्ट एवं रोग प्रतिरोधक शक्ति से सम्पन्न शरीर उस रोग को तत्काल दूर धकेल देगा।

आप रोगी हों तो घबराइये नहीं

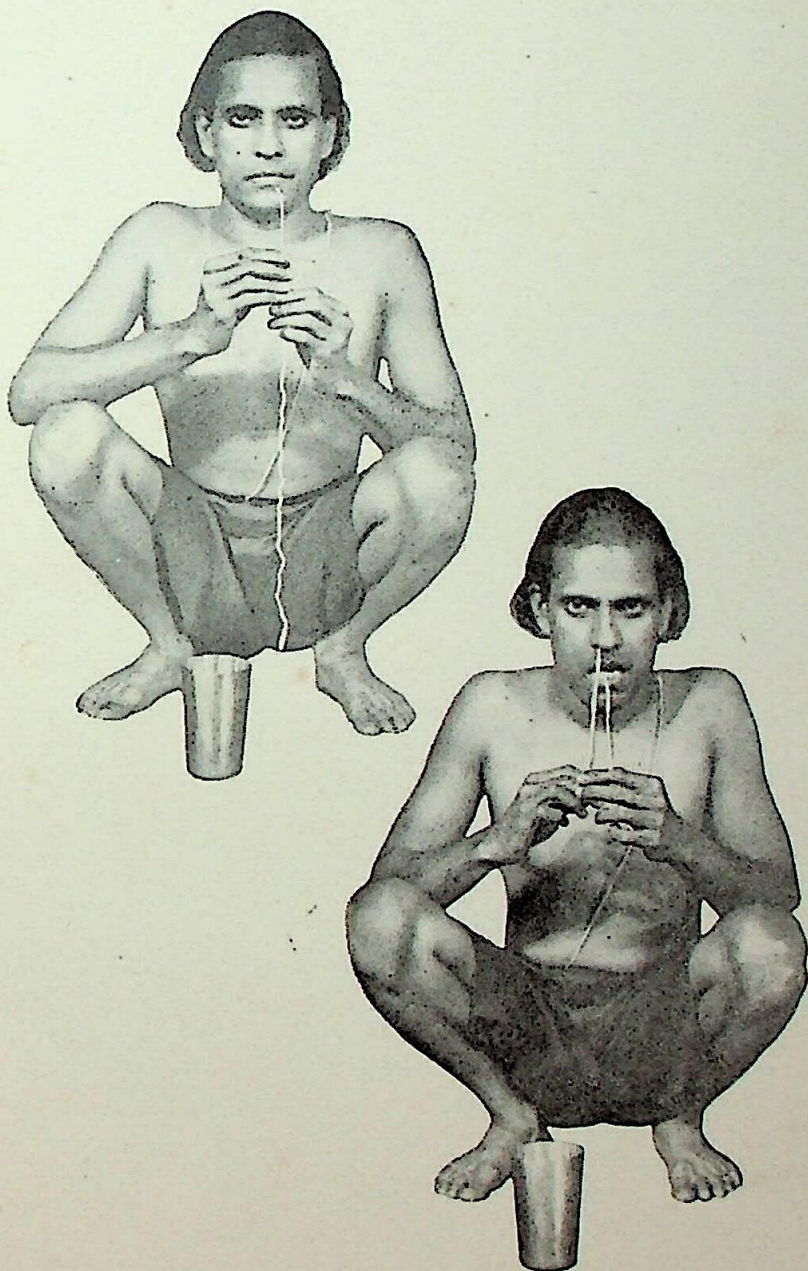
योग-साधना से आप रोग-मुक्त हो जायेंगे, किसी प्रकार का सन्देह न रखिये। योगारम्भ रूपी छः प्रकार के मल-शोधन-कर्म से ही आप क्रमशः रोग मुक्ति का अनुभव करने लगेंगे और इतने आत्मविश्वास से भर जायेंगे कि जीवनभर योग-साधना के अनुष्ठान में लगे रहेंगे।

नेतिकर्म

नेतिकर्म के मुख्यतः दो प्रकार हैं—जलनेति और सूत्रनेति। सूत्रनेति के तीन भेद हैं—सामान्य सूत्रनेति, युगल सूत्रनेति और घर्षण सूत्रनेति।

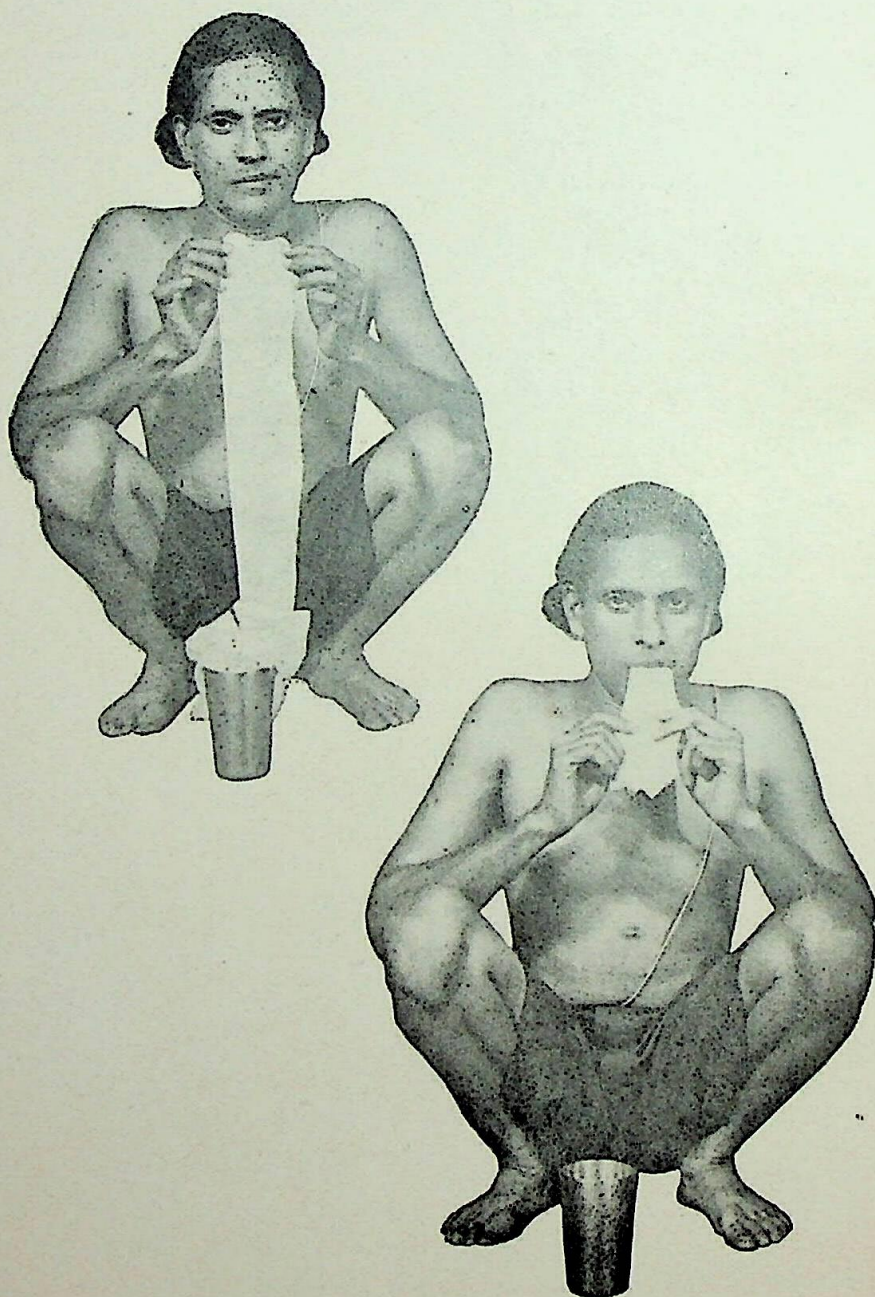
जलनेति

विधि—प्रातःकाल दन्तधावन के पश्चात् मिट्टी, तांबे अथवा चांदी के लोटे में १० से १२ औंस तक पानी लें। जिस नासाभुट से श्वास-प्रश्वास का



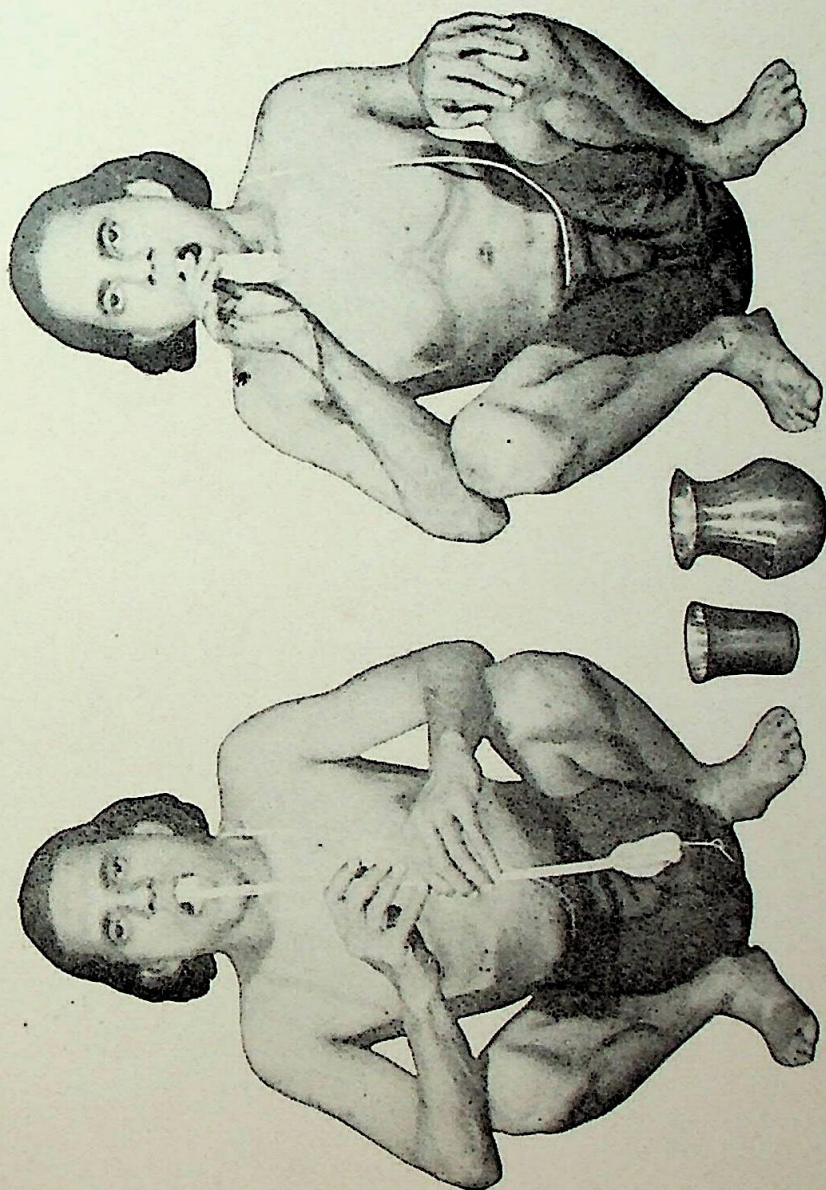
Neti (Nasal Doushe)

सूत्रनेति

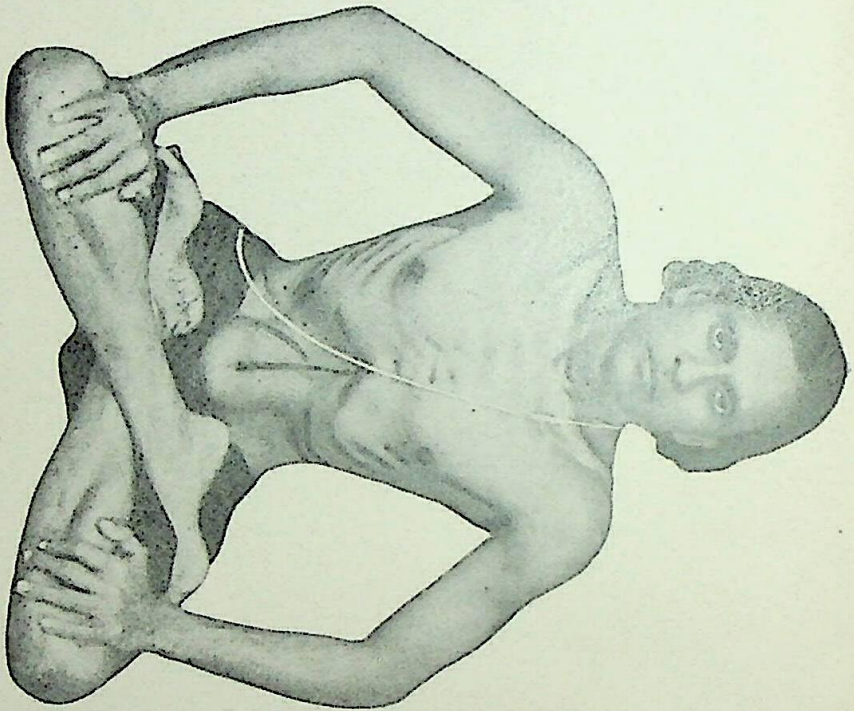


Vastra Dhauti

वस्त्र धौति

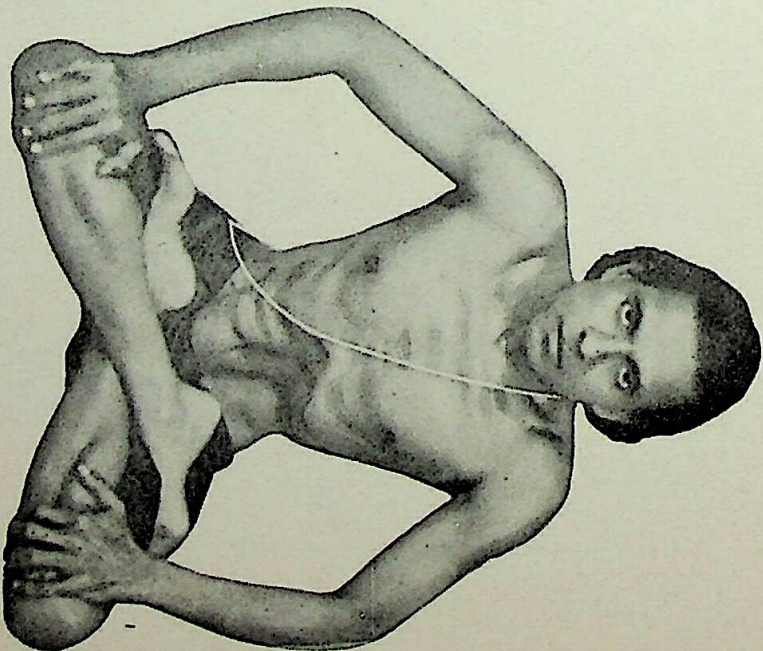


Danda Dhauti
दंड धौति



Middle Nauli

मध्य नवलि



Nauli Karma

नवलि कर्म

Right Nauli

दक्षिण नवलि

स्वाभाविक आवागमन हो रहा हो, उससे पानी को आसानी से खींचे। पानी में थोड़ा सा नमक भी छोड़ दें, जिससे नासिका में जलन अथवा किसी प्रकार की वेदना न हो। अभ्यास हो जाने के पश्चात् नमक डालने की आवश्यकता न रहेगी। गले में आते ही १-२ औंस पानी मुंह से निकाल दें, शेष पानी पी जाना चाहिये। १२ औंस पानी केवल एक ही नथुने से नहीं, बल्कि आधा एक से और आधार दूसरे से खींचना चाहिये। इतना अभ्यास हो जाने के पश्चात् दोनों नथुनों से एक साथ पानी खींचे। एकबार में अधिक से अधिक १० औंस से २० औंस तक पानी नाक से पीना चाहिये। पानी पीने की क्रिया थोड़ा-थोड़ा रुककर करनी चाहिये, जिससे आवश्यक विश्राम भी मिलता रहे।

ऋतु अनुसार जल-परिवर्तन

जाड़े की ऋतु में साधारण उष्ण जल, ग्रीष्म में शीतल और वर्षा में शीतल जल का व्यवहार करना चाहिए।

पानी कैसा हो ?

पानी कपड़े से छना हुआ और विशुद्ध होना चाहिये।

प्रकृति के अनुसार

कफप्रधान प्रकृतिवाले को साधारण उष्ण जल, पित्तप्रधान वाले को शीतल जल और वातप्रधान प्रकृति वाले को साधारण उष्ण जल का व्यवहार लाभप्रद होगा।

जलनेति का आयु से सम्बन्ध

छः वर्ष की आयु से १०० वर्ष की आयु तक के स्त्री-पुरुष जलनेति कर सकते हैं।

जलनेति का प्रभाव

प्रातःकाल जलनेति करने वालों की आंखों से पानी गिरना सम्भव है। लेकिन कोई भय की बात नहीं। आंखों के स्वास्थ्य के लिये यह लाभ-प्रद ही है।

लाभ

नाक के छिद्र साफ हो जाते हैं। मस्तिष्क ठण्डा रहता है। शिरो-वेदना मिट जाती है। आंखों में ठण्डक रहती है। मस्तिष्क शान्त रहता है। उषापानसे जैसे मल-विसर्जन व्यवस्थित रहता है; उसी प्रकार इससे भी मल-विसर्जन-क्रिया ठीक होती है। मस्तिष्क की निरर्थक उष्णता शान्त होती है। मस्तिष्क में स्फूर्ति आती है।

सूत्रनेति

सूत्रं वितस्ति सुस्नग्धं नासानाले प्रवेशयेत् ।

मुखान्निगमयेच्चैषा नेतिः सिद्धैर्निगद्यते ॥१॥

सूत्रनेति किसे कहते हैं ?—इस नेतिक्रिया में कच्चे सूत का व्यवहार होता है। यह सूत स्वच्छ और मुलायम रुई का होना चाहिये। नेति २४ इंच लम्बी होनी चाहिए। इसका आधा भाग बटा और आधा खुला होता है। पतली, मध्यम, मोटी और विशेष मोटी-यह चार प्रकार इसके होते हैं। आरम्भ करने वालों को पहले पतली सूत्रनेति से करना चाहिये। ज्यों-ज्यों अभ्यास बढ़ता जाये, त्यों-त्यों क्रमशः मोटी सूत्रनेति का व्यवहार करना चाहिये।

विधि—अपने निकट साफ बर्तन में स्वच्छ पानी रखें। पानी में नेति को भिगोयें। जिस नथुने से श्वास-क्रिया प्रवाहित हो; अपने दोनों हाथों की उँगलियों से नेति के कठोर भाग को पकड़कर उसमें प्रवेश कराये। नेति का अग्रभाग तालु भाग में पहुँचने पर उसे मुख से दाहिने

हाथ की तर्जनी और मध्यमा उंगलियों से आहिस्ते से बाहर निकाल लें। फिर उस नेति को भलीभाँति धो डालें और नासिका के दूसरे छेद से करें। जिसका अवयव कोमल हो, उसे नेति के कठोर भाग को घी या शीम से मुलायम करके करना चाहिये। नेति के अभ्यास-काल में छींके आने की सम्भावना है; किन्तु छींकों के कारण अभ्यास रोकने की आवश्यकता नहीं। नासिका का जो छेद संकुचित है, उससे आरम्भ में कुछ रक्त के आने की भी सम्भावना है। रक्त आने पर घी सूँघना चाहिये। नेतिकर्म के पूर्ण होने पर नेति को स्वच्छ जल से धोकर सुखा दें। एक नेति कम से कम ६ मास तक चलती है। नेतिकर्म के सम्पन्न हो जाने पर शीतल या गरम जल से मुँह धो डालना चाहिये।

सूत्रनेति :—नेति को नासिका के एक छिद्र में प्रवेश करके मुँह से निकाल लेने को क्रिया को सम्पूर्ण सूत्रनेति-कर्म कहते हैं।

युगल नेति—दाहिने नासिका-छिद्र से नेति को डालकर मुँह से निकालें और नेति के दूसरे अग्रभाग का बायें नासिका-छिद्र में से प्रवेश करें तथा नेतिके दोनों अग्र भागों को बांध दें। फिर दाहिनी आर पूरी नेति को तीन-चार बार आहिस्ते-आहिस्ते खींचे इसी प्रकार बाईं ओर भी खींचे। इस नेति-क्रिया को युगल नेति-क्रिया कहते हैं।

घर्षण नेति—सामान्य नेति की तरह नेति को ले जायें। मुँह से निकाल कर नेति के दोनों छोरों को दोनों हाथों की उंगलियों से पकड़कर उसके केवल कोमल भाग को खींचे पहले दिन दो बार। दूसरे दिन से ८ दिनतक तीन बार। ९ से १५ दिनतक ४ बार। १५ से २२ दिनतक ५ बार। २२ दिन से ३० दिन तक ६ बार अभ्यास चालू रखें। कोई कारण उपस्थित होने पर अधिक अथवा कम बार भी घर्षण कर सकते हैं।

सूत्रनेति का ऋतु और आयु से संबन्ध

सभी अवस्थाओं के ७ बरस से अधिक उमर वाले वृद्ध स्त्री-पुरुष

सभी ऋतुओं में सूत्र-नेतिका व्यवहार कर सकते हैं ।

लाभ

पीनस रोग में रामबाण-नासिका के भीतरी भाग में श्लेष्मा एकत्र होते-होते कठोर हो जाती है । कठिन होने के बाद वह सड़ती है । नाक से दुर्गन्ध आती है । इससे शिरदर्द भी होता है । नाक में सूजन आ जाती है । श्वास-प्रश्वास में कठिनाई होती है । इससे शरदी और गरमी के कई रोग हो जाते हैं । नेति-कर्म से जमा हुई श्लेष्मा निकल जाती है । नाक की हड्डी भी मजबूत होती है । उसमें भलीभांति काम करने की शक्ति आ जाती है । पीनस के रोगियों को सुगन्ध-दुर्गन्ध का भान नहीं होता क्योंकि नाक के ज्ञानतन्तु और क्रियातन्तु निश्शक्त हो जाते हैं । नेतिकर्म से ज्ञान तन्तु सशक्त होते हैं । सुगन्ध और दुर्गन्ध का भान होने लगता है । पीनस के रोगी को सम्पूर्ण नेतिकर्म और घर्षण नेतिका अभ्यास प्रतिदिन एकबार प्रातःकाल करते रहना चाहिए । दो-तीन दिनों में ही अन्तर मालूम पड़ेगा और निरन्तर बढ़ता जायेगा । नाक में श्लेष्मा जमा नहीं होगी । यदि श्लेष्मा आती ही है तो साफ होती रहेगी । ज्ञानतन्तु बलवान् बनेंगे । थोड़े दिनों में उपर्युक्त सभी विकार ठीक हो जायेंगे । शिर हल्का मालूम होगा । फेफड़ों को विश्राम मिलेगा । शरीर स्फूर्ति से भरपूर हो जायेगा ।

अन्य लाभ-- नेतिक्रिया से नेत्रों की ज्योति बढ़ती है । कानों के ज्ञानतन्तु और क्रियातन्तु सशक्त होते हैं । नेत्रों की ज्योति बढ़ाने की इच्छा रखने वालों को प्रतिदिन प्रातःकाल घर्षण नेति करना चाहिये । गुलाब-जल को आई-ग्लास में भरकर आंखों से स्पर्श करायें । त्राटकर्म भी करें, जिसे आगे बताया जायेगा । लाभ होने के बाद सप्ताह में एक या दो बार नेतिकर्म करते रहना काफी होगा । प्रतिदिन करने की आवश्यकता नहीं । सूत्रनेति के अभाव में रबर की नेति : से ४ नम्बर तक की व्यवहार कर सकते हैं; लेकिन सूत्रनेति के मुकाबले इससे लाभ नहीं मिलेगा । इस नेतिक्रिया से आंख, नाक, कान और जीभ के ज्ञानतन्तु न केवल स्वच्छ,

बल्कि स्वस्थ और सशक्त भी होते हैं ।

धौति कर्म

धौति कर्म पेट के आन्तरिक भाग की सफाई करने की क्रिया का नाम है जिसके प्रकारान्त से (१) वमन धौति (२) वस्त्र धौति तथा (३) दण्ड धौति नाम दिये गये हैं ।

वमन धौति

विधि—इस क्रिया में साधक को प्रातःकाल में बिना कुछ खाये पिये ४-५ गिलास या अधिक जल थोड़ा नमक मिलाकर पी लेना होता है इसके बाद थोड़ा आगे की ओर झुककर वमन की प्रक्रिया द्वारा पानी बाहर आने लगता है । अगर पानी अपने आप बाहर न आवे तो दाहिने हाथ की प्रथम तीन उंगलियों को मुंह के अन्दर आगे पीछे हिलाने से पानी बाहर आ जायेगा ।

लाभ—इस वमन क्रिया से पेट में स्थित अतिरिक्त मात्रा में जमा अम्ल, पित्त, कफ आदि निकल जाते हैं जिससे साधक ताजगी का अनुभव करता है ।

वस्त्र धौति

वस्त्र धौति मुलायम मलमल के कपड़े की बनी होती है । उसके दोनों सिरें सिले हुए होते हैं । १५ से २४ फीट तक उसकी लम्बाई रखी जाती है । आरम्भ करने वालों के लिये १५ फीट की पर्याप्त होगी । अभ्यस्त लोग २४ फीट तक की कर सकते हैं ।

विधि—धौति के एक छोर को फैलाकर पहले जल में भिगोयें; फिर दाहिने हाथ की उंगलियों के सहारे छोटी जीभ के पास रखें तत्पश्चात् उसे निगलना प्रारम्भ करें । पहले दिन तीन बार प्रयास करें । दूसरे दिन ८ दिन

तक चार बार प्रयास करें। पहले दिन से तीसरे दिन तक १ फीट निगल सकें तो अच्छी बात है। यदि न निगल सकें तो सन्देह की कोई बात नहीं। अभ्यास चालू रखें। वात-पित्त-कफ आदि जो अन्नाशय कोष में भरे हुए हैं, उनके विकार के कारण सम्भव है कि एक फुट भी धौति निगली न जा सके। गले के अवयव का अभ्यस्त न होना भी इसका एक कारण हो सकता है। बारंबार उल्टी भी हो सकती है। लेकिन बहराने की आवश्यकता नहीं। थोड़े दिनों के बाद अल्प प्रयास से ही कार्य सम्पन्न हो जाया करेगा। धौति अन्नाशय-कोष में पहुँच जायेगी। धौति के साथ १-२ औंस पानी पीने से धौति के निगलने में सहायता प्राप्त होगी। इस प्रकार भी यदि धौति का निगलना सम्भव न हो तो धौति को दूध में भिगोकर सरलता से निगल सकते हैं। एक फुट तक धौति को निगलने में विशेष प्रयास करना पड़ता है। शेष अल्प प्रयास से ही निगली जा सकती है। धौतिकर्म के समय श्वास-प्रश्वास की क्रिया को स्वाभाविक गति से चालू रखना चाहिये। धौतिकर्म के नये साधक को जबतक पूरा अभ्यास हो न जाये, तबतक पाँच मिनट से अधिक प्रयास नहीं करना चाहिये। पाँच मिनट में जितनी धौति निगली जा सके उतनी ही निगलनी चाहिये; आगे प्रयास नहीं करना चाहिये। किसी निष्णात योगाभ्यासी के आश्रम में जो लोग धौति कर्म करते हैं, उनके लिये यह समय-व्यवस्था नहीं दी जा रही है। यह नियम पुस्तक पढ़कर स्वयमेव अभ्यास करने वालों के लिये उपयोगी सिद्ध होगा। कभी-कभी अन्नाशय-कोष के ऊपर के मुँह के बन्द हो जाने पर धौति को निकालने में कठिनाई उत्पन्न हो जाती है। ऐसे समय बहराने की आवश्यकता नहीं। तुरन्त ही स्वच्छ जल पी लेना चाहिये। इसमें धौति सरलता से निकल आयेगी। सामान्यतः १५ दिनों में धौतिकर्म में साधक सुदक्ष हो जाता है। यदि १५ फीट की धौति हो तो १४॥ फीट भीतर और आधा फीट बाहर रखनी चाहिये। धौति के भीतर जाने पर १२ औंस से १४ औंस तक गरम या ठण्डा पानी पीना चाहिये। इसके बाद यदि सम्भव हो तो नवलिकर्म करें अथवा पेट को हिलाकर; अर्थात् उड्डियान बन्ध करके धौतिको बाहर निकाल

लें। यदि स्वयं न निकले तो दोनों हाथों की उँगलियों से शनैः शनैः मुँह से बाहर निकालें। तत्पश्चात् धौति को साबुन से अच्छी तरह साफ कर लें और स्वच्छ जल से कुल्ला कर लें।

चेतावनी—साधक वस्त्रधौति को निगल लेने के बाद उसे पेट में ५ मिनट से ज्यादा न रखें। उसे बाहर निकाल लें।

दण्ड धौति

दण्डधौति कच्चे सूत को बट कर बनाई जाती है। करीब दो फीट लम्बी होती है। दण्डधौतिका एक छोर एक इंच बिना बटे सूत का होता है और दूसरा छोर ३ इंच बिना बटे सूत का होता है। दण्डधौति वट-वृक्ष की बरोह या रबर की नली से भी बन सकती है। बरोह को केवल एक बार ही उपयोग में लाया जा सकता है। सूत की दण्डधौति और रबर की नली को पानी में धोकर ६ मास तक व्यवहृत कर सकते हैं। दण्डधौति की मोटाई कनिष्ठिका उँगली के बराबर होती है।

विधि—पेट भरकर ठण्डा या साधारण गरम पानी पी लें—१२ से १४ औंस तक। पानी में थोड़ा नमक भी डाल लें। दण्डधौति के अग्रभाग को गले में प्रविष्ट करायें। पहले दिन चार इंच तक ले जायें; दूसरे दिन ५ इंच। प्रतिदिन एक इंच बढ़ाते जायें। प्रवेश करते समय पानी उल्टी के द्वारा निकलता जायेगा, चार दिन में १ फुट से १। फुट तक का भाग गले के अन्दर ले जायें।

इन दोनों धौतिकर्मों में से किसी भी एक धौतिकर्म का अभ्यास करना चाहिये। दोनों विधियों को एक साथ कभी नहीं करना चाहिये। दोनों के लिये समय और व्यवस्था-सम्बन्धी एक ही नियम है। दोनों के लाभ समान हैं।

नवलि कर्म यदि आता हो तो थोड़ी देर करें; अन्यथा पेट को

हिलायें और फिर धीरे-धीरे धौति को बाहर निकाल लें। बान, पित्त और कफ के विकारों के कारण धौतिकर्म की सम्पूर्णता के लिये १५ दिन से अधिक समय भी लग सकता है। विकार न होने पर धौतिकर्म ८ दिनों में ही पूरा हो सकता है। (देखो दण्ड-धौति)।

दण्डधौति कब और कौन करे ?

सभी ऋतुओं में प्रातःकाल यह क्रिया की जा सकती। भोजन के ३।४ घण्टे के बाद धौतिकर्म कर सकते हैं। धौतिकर्म करने के २० मिनट के बाद कुछ खाया जा सकता है। १० वर्ष से १०० वर्ष तक की आयु के लोग धौतिकर्म कर सकते हैं।

धौतिकर्म कौन न करे ?

जिनके फेफड़े और हृदय अत्यन्त कमजोर हैं, शरीर के स्नायु पूर्णतया दुर्बल हो गये हैं; फिटके रोगियों, तीसरे दर्जे में पहुँचे हुए दमा के रोगियों, दूसरे अथवा तीसरे दर्जे में प्रविष्ट क्षय के रोगियों, अतिसार और हैजा के रोगियों को धौतिकर्म नहीं करना चाहिये।

लाभ

पाचन-शक्ति बढ़ती है। पेट हलका हो जाता है। वात-पित्त-कफ की अधिकता से अन्नाशय-कोष में जो विकार एकत्र होता है, वह नष्ट हो जाता है। आरम्भिक और दूसरे दर्जे तक पहुँचा हुआ दमा का रोग ठीक होता है। गले से लेकर अन्नाशय तक गये हुए अवयव की स्वच्छता हो जाती है। आवाज मधुर तथा सशक्त होती है। वातविकार जन्य शिरोवेदना दूर होती है। जँभाई का दोष निकल जाता है।

नवलि-कर्म

अमदावतं वेगेन तुदं सव्यापसव्यतः ।

नतांसो भ्रमयेदेषा नौलिः सिद्धैः प्रचक्ष्यते ॥

—या. सं.

नवलिकर्म तीन प्रकार से किया जाता है—बैठकर, खड़े होकर और किसी आधार को लेकर। नवलिकर्म शुरू करने के पहले उड्डीयान पर प्रभुत्व पाना उचित है।

बैठकर करने की विधि

पद्मासन, स्वस्तिकासन अथवा सिद्धासन लगाकर बैठें। दोनों घुटनों पर दोनों हाथ रखें। हथेलियों से घुटनों को दबायें। श्वास को नासिका के छिद्रों द्वारा बाहर निकालें। शरीर को आगे की ओर इतना झुकायें कि अपने पेट को देख सकें। पेट को पीठ की ओर दबायें और ढीला छोड़ दें। यह क्रिया ५ बार करें। श्वास तब तक न लें, जबतक इतनी क्रिया हो न जाये। एकबार में ५ उड्डीयान करें। श्वास को बाहर निकाल कर पेट को दबायें तो एक उड्डीयान होता है। एकबार श्वास के बाहर निकालने पर ५ उड्डीयान करें। ५ उड्डीयान तक श्वास न लें। पहले दिन से ४ दिन तक २० उड्डीयान करे, ५ से १२ दिन तक २५ और १३ से २० दिन तक ३० उड्डीयान करें। प्रति पांच उड्डीयान के बाद पेट को कुछ देर तक दबाकर रखें। श्वास न लें। इस तरह कम से कम १५ दिन से एक मास तक अभ्यास चालू रखने से नवलिकर्म में प्रारम्भिक तैयारी हो जाती है। जिनके शरीर में चरबी का भाग अधिक है, जिनका पेट बड़ा और शरीर स्थूल है, उनके लिये उड्डीयान का अभ्यास ३ मासतक करना आवश्यक होगा। इसके बाद ही वे नवलिकर्म कर सकते हैं। अपवाद रूप में कभी तीन मास से अधिक समय भी लग सकता है। ऐसा नहीं मान लेना चाहिये कि हमसे नवलिकर्म नहीं होगा।

खड़े होकर करने की विधि

खड़े होकर दोनों पैरों को एक फुट के अन्तर पर रखें। कुहनियों को चौड़ा रखें; सीधा नहीं। श्वास को पहले की तरह ही बाहर निकालना चाहिये और पेट को पीठ की ओर दबाना चाहिये। शेष विधि बैठ कर

नवलिकर्म करने के समान ही है ।

आधार लेकर करने की विधि

किसी मेज, कुरसी या अन्य वस्तु का आधार लेकर उस पर दोनों हाथ रखें । कुहनियों को फैलाकर रखें । पैरों को एक फुट के अन्तर पर रखें । शेष विधि बैठकर नवलिकर्म करने के समान ही है ।

नवलिकर्म का ऋतु और अवस्था से सम्बन्ध

नवलिकर्म सभी ऋतुओं में प्रातःकाल अथवा सायंकाल प्रतिदिन एकबार कर सकते हैं । भोजन के ४ घण्टे के बाद नवलिकर्म किया जा सकता है । ८ से १०० वर्ष तक की आयु तक के स्त्री-पुरुष इसे कर सकते हैं । गर्भवती और मासिक धर्म वाली स्त्रियों को इसे करना न चाहिये । प्रसूति के तीन मास के पश्चात् इसे किया जा सकता है । हैजा और अतिसार के रोगी भी इसे न करें ।

नवलिकर्म का प्रारम्भ

मध्य-नवलि

उड्डीयान की अवस्था में उदर के मध्य-भाग को उठाकर ऊपर लाने का प्रयास करना चाहिये । इससे नाभि की दाहिनी ओर बाईं ओर गड्ढे षड़े दिखाई देंगे । इसे मध्य नवलि कहते हैं ।

वाम नवलि

बायें घुटने पर हाथ को दबाकर रखें । दाहिने घुटने पर हाथ को ढीला रखें । पेट को बाईं ओर ऊपर लायें । दाहिनी ओर इससे गड्ढा षड़ा दिखाई देगा । इसे वामनवलि कहते हैं ।

दक्षिण नवलि

इसी प्रकार दाहिने घुटने पर हाथ को दबाकर रखें और बायें घुटने पर हाथ को ढीला रखें। पेट को दाहिनी ओर उठाकर रखें। बाईं तरफ गड़ढा पड़ा दिखाई देगा। इसे दक्षिण-नवलि कहते हैं।

सम्पूर्ण नवलि

बाईं से दाहिनी और दाहिनी से बाईं ओर पेट का नसों को घुमायें। चार दिन तक क्रम से दाहिनी और बाईं ओर दो-दो बार घुमायें। ५ से ८ दिन तक ३/३ बार; ९ से १६ दिन तक ४/४ बार और १६ दिन के पश्चात् यथाशक्ति और अनुकूल दिखाई देने पर ४ से १० बार तक घुमायें।

लाभ

रोग की जड़ पेट से प्रारम्भ होता है। नवलिकर्म करने से पेट के अवयव सशक्त बनते हैं। पाचन शक्ति अच्छी रहती है। मल विसर्जन उचित रूप से होता है। छोटी आंत, बड़ी आंत, मूत्र-सम्बन्धी अवयव, नाभिचक्र आदि नीरोग होते हैं। भूख खुलकर लगती है। शरीर में यदि आवश्यकता से अधिक चरबी है तो कम हो जाती है। यदि कम है तो बढ़ती है; अर्थात् शरीर में चरबी का सुयोग्य संतुलन रहता है। पेट के वायुविकार, कफविकार और पित्तविकार प्रशमित होते हैं। मन्दाग्नि नष्ट होती है और वैश्वानर अग्नि उद्दीप्त होता है। आन्त्रपुच्छ रोग अच्छा होता है। किडनी और मूत्राशय के रोग दूर होते हैं। पेट के अनेक रोग नवलिकर्म से निर्मूल हो जाते हैं।

वस्ति-कर्म

वस्ति क्या है ?

शीशम अथवा किसी उत्तम लकड़ी की नली—जिसके बीच में छेद

हो, मोटाई अँगूठे के बराबर हो, लम्बाई ६ से ८ इंच तक हो और जिसके बाहर का भाग चिकना हो—को बस्ति कहते हैं ।

विधि—जिस प्रकार नवलिकर्म में खड़े होते हैं, उसी तरह खड़े हों । बस्ति के एक सिरे के मलद्वार में एक इंच तक प्रवेश करें । फिर नवलिकर्म करें । इस समय छिद्र द्वारा मल द्वार में वायु ऊपर आयेगी । नवलिकर्म (मध्यम नवलि) छूटते ही वायु नीचे जायेगी । पहले दिन ६ सेकण्ड करें । दूसरे और तीसरे दिन ७ सेकण्ड करें । इस प्रकार ८ दिन तक १० सेकण्ड बढ़ायें । इसे वायु-बस्ति कहते हैं । खड़े होकर बस्तिका एक भाग पानी में और दूसरा मलद्वार में लगायें । मध्यम नवलि करके पानी ऊपर खींच लें । खींचने पर तुरन्त ही बस्ति को निकाल लें । दो-तीन बार उड़ीयान या नवलि कर्म करके मल-विसर्जन के लिये चले जायें । पहले दिन ६ औंस पानी लेना चाहिये । दूसरे दिन ८ औंस पानी का उपयोग करें । बढ़ाते-बढ़ाते १६ से २० औंस तक पानी का उपयोग करना चाहिये । अर्थात् उपयुक्त मात्रा में पानी खींचना चाहिये ।

बस्तिक्रिया का समय और अवस्था से सम्बन्ध

बस्तिक्रिया के लिये सर्वोत्तम समय प्रातःकाल है या जब पेट खाली हो, तब करना चाहिये । ८ से १०० वर्ष की आयु तक के स्त्री-पुरुष इसे सभी ऋतुओं में कर सकते हैं । दिन में केवल एक बार बस्तिकर्म करना चाहिये ।

लाभ

मलबद्धता दूर होती है । अपान वायु का दोष नष्ट होता है । बड़ी आंत सशक्त बनती है । वीर्याशय कोश और मूत्राशय कोश के विकार नष्ट होते हैं । वे मजबूत बनते हैं । मूलव्याधि (बवासीर) अच्छी होती है । बड़ी आंत और मलद्वार की निरर्थक गरमी का शमन होता है । उपयुक्त गरमी पैदा होती है ।

एनिमा की तुलना में बस्ति

एनिमा की नली से मलद्वार द्वारा पानी आसानी से पेट में चला जाता है और इन अंगों को कोई काम नहीं करना पड़ता। बस्तिकर्म करने के मलद्वारसे पेटतकके अवयवोंका आवश्यक व्यायाम हो जाता है। एकबारगी पानीपेट में पहुंच नहीं जाता। इससे न केवल अंग सशक्त होते हैं, बल्कि बार २ बस्ति लेने की आवश्यकता भी नहीं रह जाती। इसलिये बस्ति एनिमा से अधिक महत्वपूर्ण और लाभदायक है। एनिमा की तरह इसे प्रतिदिन लेने की आदत नहीं पड़ती। उल्टे इसके करने से मलविसर्जन से सम्बन्धित सभी अंग सशक्त और कार्यक्षम बनते हैं। इससे मल-विसर्जन स्वाभाविक रूप में होता रहता है।

गणेश क्रिया (कर्म)

अनेक स्त्री-पुरुषों का मल विसर्जन-काल में मल का प्रथम भाग कठिन होता है; इससे मल-विसर्जन ठीक से नहीं होता। मल विसर्जन के पश्चात् भी मलद्वार के ऊपरी भाग में मल के रहने की सम्भावना रहती है। ऐसे लोगों को यह गणेश-क्रिया अवश्य करनी चाहिये।

विधि—बायें हाथ की अनामिका अथवा मध्यमा उँगली में कोई भी तेल लगाकर अथवा पानी लगाकर मलद्वार में प्रवेश करें। मल के कठोर भाग को पहले निकाल दें। अन्तमें रहे हुए मल को भी साफ कर दें। यह कार्य सदा करने की जरूरत नहीं। आवश्यकता होने पर ही इसे करना चाहिये। इस विधि से भी आरोग्य-रक्षा में सहायता मिलेगी।

कपालभाति

भस्त्रावल्लोहकारस्य रेचपूरी ससंभ्रमो ।
कपालभातिर्विख्याता कफदोषविशोषिणी ॥

—या. सं.

विधि—पद्मासन, स्वस्तिकासन अथवा सिद्धासनमें बैठना चाहिये। (आसन की विधि आसन-प्रकरण में पढ़िये)। उपर्युक्त किसी आसन में बैठकर दाहिने हाथ की हथेली को दाहिने घुटने पर और बायें हाथ की हथेली को बायें घुटने पर रखना चाहिये। बिलकुल सीधे बैठना चाहिये। दोनों नासिका रन्ध्रों से १० बार गहरे श्वास-प्रश्वास खींचना और छोड़ना चाहिये। किसी अवयव को धक्का न पहुंचने पाये। छाती फुलाकर रखना चाहिये। एकबार श्वास लेना और छोड़ना इसे एक घर्षण कहते हैं। इस प्रकार दस घर्षण करें। आंखें बन्द रखें। दस घर्षण के बाद ग्यारहवें श्वास को रोक रखे, अर्थात् पूरक करके फिर कुम्भक करे। भरी श्वास में अनामिका और कनिष्ठिका उँगली से बायें और अंगुष्ठ से दाहिने नासा-छिद्र को दबायें। ठुड्डी (हनु) को कण्ठकूप में लगा रखें। कुम्भक के बाद पुनः रेचक करें। रेचक के समय शनैः शनैः श्वास निकालें। जिस नासिका रन्ध्र से श्वास अधिक प्रवाहित होता हो, उसे कुछ दबाकर रखना चाहिये। इससे दोनों नासिका-छिद्रों में समान श्वास-प्रश्वास का आवागमन होगा।

कपालभाति के लिये तीन प्रकार के बन्ध भी समझना आवश्यक है:— उड्डीयान बन्ध, मूलबन्ध और जालन्धर बन्ध। मलद्वार को संकुचित करना मूलबन्ध है। पेट को पीठ की तरफ संकुचित करना उड्डीयान बन्ध है और ठुड्डी (हनु) को कण्ठकूप में लगाने का नाम जालन्धर बन्ध है। कपाल भाति में आरम्भ से अन्ततक मूलबन्ध कायम रखें। रेचक अर्थात् श्वास को निकालते समय उड्डीयान बन्ध करें। कुम्भक अर्थात् श्वासावरोध की अवस्था में जालन्धर बन्ध करें।

मात्राओं की विधि

कपालभाति के अभ्यास कर्ताओं को प्रारम्भमें चार मात्रा तक पूरक, १६ मात्रा तक कुम्भक और आठ मात्रा तक रेचक करना चाहिये। एक सेकण्ड की कालावधि को मात्रा कहते हैं। जिन स्त्री-पुरुषों के फेफड़े मजबूत और विकसित न हों, उन्हें आरम्भ में उपर्युक्त मात्राओं में ही

अभ्यास करना चाहिये। फेफड़ों के सशक्त और विकसित होने के पश्चात् धीरे-धीरे मात्रायें बढ़ाते जाना चाहिये। अर्थात् १ : ४ : २ के अनुपात से मात्रायें क्रमशः बढ़ाते जायें। आसानी से अर्थात् फेफड़ों को जितना सहन हो, उतनी ही मात्राओं का व्यवहार में लाना चाहिये। उदाहरणार्थ, यदि ६ : २४ : १२ मात्राओं का व्यवहार करने से रेचक के समय कठिनाई मालूम पड़े तो कुम्भक का समय न बढ़ायें। कुम्भक और रेचक आसानी से बढ़ें, तभी यह समझना चाहिये कि फेफड़े सशक्त और विकसित हो रहे हैं।

समय

प्रातःकाल स्नान-कार्य से निवृत्त होकर कपालभाति करना चाहिये। आठ दिन तक दो बार। ८ से १५ दिन तक चार बार। १५ दिन से २२ दिन तक ५ बार। २२ से ३० दिन तक ६ बार। एक मास के पश्चात् ६ से १२ बार तक कपालभाति करना चाहिये। कपालभाति की उपयुक्त क्रिया आयु, शक्ति और ऋतु के अनुसार ध्यान में रखकर निश्चित करनी चाहिये और तदनुसार अभ्यास जारी रखना चाहिये।

आयु

८ से १०० वर्ष की आयु तक के स्त्री-पुरुष सभी ऋतुओं में कपालभाति कर सकते हैं।

लाभ

नाड़ियां शुद्ध होती हैं। फेफड़ों का विकास होता है। मन की अस्थिरता कम होती है। क्रिया तन्तुओं में स्फूर्ति आती है। मस्तिष्क शान्त होता है। कण्ठनली शुद्ध और सशक्त बनती है। कफ विकार कम होता है। सूर्यनाड़ी और कफनाड़ी शुद्ध बनती हैं। नासिका-छिद्रों के क्रियातन्तु और ज्ञानतन्तु बलवान् बनते हैं। दुर्गन्ध और सुगन्ध का अनुभव भलीभांति होता है।

त्राटक

निरीक्षंन्निश्चलदृशा सूक्ष्मलक्ष्यं समाहितः ।

अश्रुसंपातपर्यंतमाचार्यैश्चाटकं स्मृतम् ॥

—या. सं

त्राटक-कर्म के लिये उपयुक्त साधन

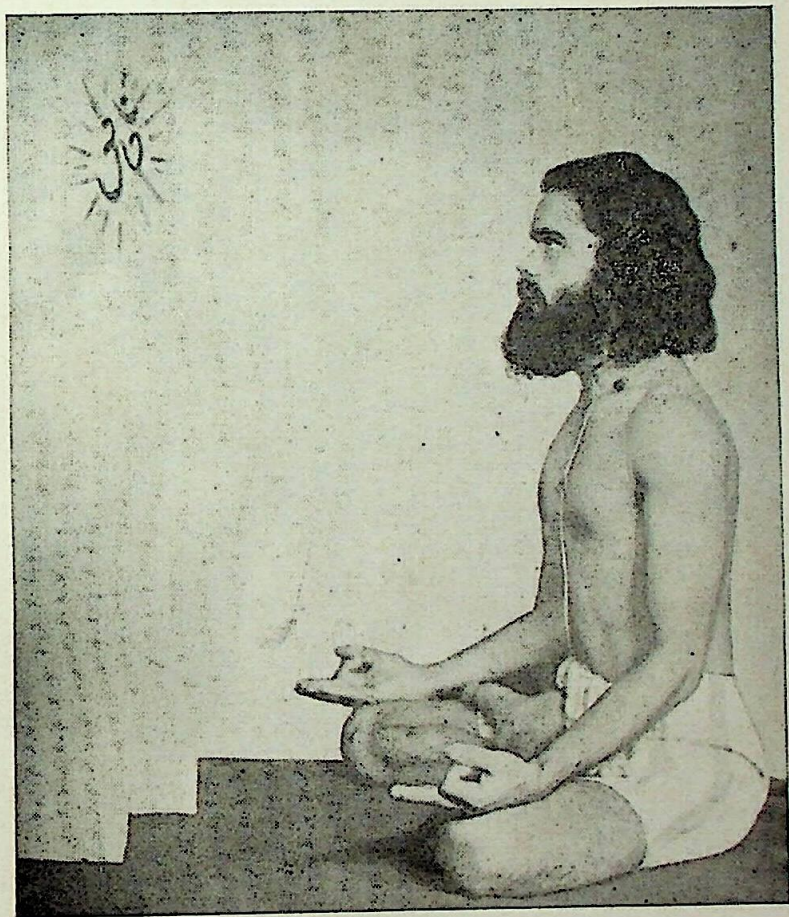
त्राटक कर्म के लिये अनेक साधनों का उपयोग किया जा सकता है । सूर्य, चन्द्र, दीपक, वृक्षों के पत्ते, पानी, ॐकार का चित्र, शीशा, भगवान् का चित्र, अपने गुरु का चित्र, महात्माओं के चित्र, सफेद कागज पर तैयार किया हुआ और दफ्ती पर चिपकाया हुआ सूर्य का सादृश्य चित्र आदि का उपयोग त्राटक-कर्म के लिये कर सकते हैं । सुलभ उपाय और सरल सम्भव प्रयास से ही त्राटक करना ठीक होता है ।

सूर्य के सामने त्राटक-विधि

प्रातःकाल अरुणोदय के समय सूर्य के सामने मुंह करके खड़े हों या बैठें । आंखें बन्द रखें । सूर्य की किरणें मुखमण्डल और शरीर पर पड़ें । आंख की ऊपरी त्वचा पर सूर्य की किरणें पड़ती रहें, इस प्रकार सूर्य के सामने खड़े हों या बैठें ।

समय

तीन दिन तक ५ से ३० सेकण्ड तक किरणें लें । किरणें लेने के पश्चात् आंखों की काली पुतली को दोनों ओर फिरायें । दाहिनी और बाईं ओर ५/५ बार ले जायें । फिर आंखें मूंद कर ५ से २० सेकण्ड तक कानों से किरण लें और फिर ५ बार आंखों के ऊपर से नीचे ले आयें । तत्पश्चात् ५ से १० सेकण्ड तक आंखों को बन्द रखें । फिर ठण्डे पानी से आंखों को धो डालें ३ से १५ दिन तक ३० सेकण्ड से ४० सेकण्ड तक ले जायें । शेष विधि ऊपर के समान है । १५ दिन से ३० दिन तक ४० सेकण्ड



TRATAKA (CENTRAL FIXATION)

त्राटक

से ६० सेकेण्ड तक अवधि बढ़ायें। एक मास के पश्चात् ऋतु, आयु और लाभ के अनुसार १ मिनिट से अधिक, या २ मिनिट तक समय बढ़ायें। आंखें घुमाते समय कदाचित् आंखों में पानी आये, उसे आने देना चाहिये, अभ्यास बन्द न करना चाहिये, निरन्तर चालू रखना चाहिये। सूर्य की तीव्र किरणों में त्राटक कभी न करें; अर्थात् जाड़े के दिनों में सबेरे ८ बजे के पश्चात् और गरमी तथा वर्षा के दिनों में प्रातः ७॥ बजे के बाद त्राटक न करें।

सूर्य के सामने त्राटक करने वालों को आवश्यक सूचना

आंखें खोलकर सूर्य के सामने त्राटक न करें। इससे आंखों की दृष्टि मन्द पड़ने की आशंका रहती है। आंखें बन्द करके अभ्यास करना लाभप्रद है। जब सूर्य पर बादल न हों और सूर्य-बिम्ब स्पष्ट दिखाई दे रहा हो, तभी त्राटक करना चाहिये।

चन्द्र में त्राटक करने की विधि

शुक्ल पक्ष में सप्तमी से पूर्णिमा तक और कृष्ण पक्ष में पूर्णिमा से सप्तमी तक त्राटक करना चाहिये। खड़े रहें या बैठें। चन्द्रमा के सामने आंखें खोलकर देखें, बन्द न रखें। शेष विधि सूर्य में त्राटक करने के समान ही है।

समय

जाड़े के दिनों में सायंकाल ६॥ बजे से ७ बजे तक त्राटक करना चाहिये। गरमी तथा वर्षा के दिनों में ७॥ से ८ बजे तक कर लेना चाहिये। कारणवशात् ९ बजे तक भी कर सकते हैं।

दीपक में त्राटक करने की विधि

मिट्टी, पीतल, चांदी अथवा अन्य किसी धातु का पात्र लें और उसमें

घी, अरण्डी, तिल या गिरी (नारियल) के तेल में से कोई एक तेल भर लें तथा रुई की बत्ती बनाकर उसे जलायें। जहां वायुवेग कम हो, अर्थात् दीपशिखा स्थिर रह सके, ऐसा स्थान चुनें और वहां दीपक रखें तथा उसके सामने पद्मासन, स्वस्तिकासन या सिद्धासन लगाकर बैठें। भूमिपर कुशासन या स्वच्छ कपड़े का आसन बिछा लें। दीपक को आंखों से ५ फीट की दूरी पर रखें। दृष्टि और दीपशिखा समानान्तर पर रहें, अर्थात् आंखों की दृष्टि दीपक के सामने पड़ने पर = ऊपर उठे और न नीचे झुके। दीपक के सामने आंखें खोलकर देखें। शेष विधि ऊपर लिखे अनुसार है। अभ्यास का समय प्रातःकाल ४ बजे से ७ बजे तक होना चाहिये।

वृक्षों के पत्तों में त्राटक करने की विधि

किसी छोटे पेड़ या पौधे के सामने बैठें या खड़े हों। तीन से पांच फीट की दूरी से उसे आंखें खोलकर देखें। फिर थोड़ी देर तक आंखें बन्द रखें बन्द रखने के समय आंखों की ऊपरी त्वचा की मालिश करते रहें। मालिश करने के पश्चात् आंखों की पुतलियों को घुमायें। फिर थोड़ी देर तक पौधों को देखते रहें। इस प्रकार तीन बार करें। फिर शीतल जल से आंखें और मुंह धो डालें।

समय

प्रातःकाल १० बजे तक। जाड़े के दिनों में सायंकाल ४॥ बजे से ६ बजे तक। गरमी और वर्षा में ६ बजे से ८॥ बजे तक पौधों में त्राटक करना चाहिये।

स्थान तथा अन्य सूचनाएँ

जिस स्थान पर बड़े पेड़ की छाया पौधे पर पड़ती हो, वहां दोपहर में भी त्राटक किया जा सकता है। सूर्य की किरणों में न बैठें। छाया में ही अभ्यास करना चाहिये। जहाँ दुर्गन्धपूर्ण हवा चलती हो, स्थान अस्वच्छ हो,

वहां त्राटक-कर्म करना हितकर नहीं। यदि पौधा न मिले तो पेड़ के पत्ते में ही त्राटक करें। पत्ता यथा सम्भव हरा होना चाहिये। पीले या सूखे पत्ते का उपयोग न करना चाहिये। पेड़ के पत्तों में ऊपर लिखी विधि से त्राटक करें। वृक्ष और पौधा जहां न मिले, वहां हरे रंग की कोमल घासपर त्राटक-दृष्टि स्थिर करें। इसमें दृष्टि यथासम्भव नीचे झुकने न पाये और साथ ही घास की हरीतिमा स्पष्ट दिखाई देती रहे। घास में काफी दूर पर दृष्टि स्थिर करें। शेष विधि पौधे पर त्राटक करने के समान है। समय भी वही है।

पानी में त्राटक करने की विधि

इस विधि से त्राटक करने के लिये शुद्ध और स्थिर जल की आवश्यकता होती है। गिलास, बर्तन, सरोवर, तालाब, झील, नदी-तट आदि पर जहां जल स्थिर हो, त्राटक करना चाहिये। पानी से ५ फीट की दूरी पर बैठकर या खड़े होकर पानी को एकटक देखते रहें। शेष विधि पौधे में त्राटक करने की विधि के समान है। समय भी पौधे पर त्राटक करने के समान है।

ॐकार के चित्र में त्राटक करने की विधि

ॐकार के चित्र को ३ से ४ फीट के समानान्तर पर रखें। ॐ की अर्धचन्द्राकार स्थित बिन्दी पर दृष्टि जमायें। पहले दिन २० सेकण्ड तक और दूसरे दिन २० से ३० सेकण्ड तक करें। फिर प्रतिदिन ५ सेकण्ड तक बढ़ाते जायें। इस प्रकार दो मिनट तक बढ़ायें। फिर आंखें बन्द कर पुतलियों की त्वचा पर दोनों हाथों की उंगलियों से मालिश करें। इसके बाद आंखों की काली पुतलियों को दायें-बायें और ऊपर-नीचे घुमायें। तत्पश्चात् ठण्डे पानी से आंखें धो डालें। यदि कभी ॐकार का चित्र मिल न सके तो एक फीट लम्बे और एक फीट चौड़े कागज पर काली स्याही से सूर्य-बिम्ब और सूर्य-किरणों से युक्त चित्र बना ले। मध्यबिन्दु (बिम्ब) एक

पैसे की गोलाई के बराबर हो। चित्रांकित कागज को दफती या पृष्ठ पर चिपका लेना चाहिये और उसे दीवाल, मेज या कुर्सी पर रखकर त्राटक करना चाहिये। यदि कारणवश दिन में यह न हो सके तो रात में कर सकते हैं दीपक के प्रकाश में। जहां बैठे हों, उसके दायें या बायें त्राटक-चाट पर प्रकाश पड़े। प्रकाश न अधिक तेज हो और न अधिक मन्द हो। वह सामने से भी न आना चाहिये। प्रातःकाल और सायंकाल का समय सर्वोत्तम है।

दर्पण में त्राटक करने की विधि

दो फीट लम्बा और एक फीट चौड़ा शीशा लेना चाहिये। शीशा ३ फीट की दूरी पर रखें। किसी आसन पर उसके सामने बैठें। भ्रू-मध्य (बरौनियों के बीच में) चन्दन का तिलक लगायें। तिलक को दर्पण में देखें। शेष त्राटक-विधि ऊपर लिखे समान है।

भगवान्, गुरु या महात्माके चित्रमें त्राटक करने की विधि

चित्र के भ्रू-मध्य में चन्दन का तिलक लगाकर देखना चाहिए। दूरी पाँच फीट की हो शेष विधि ऊपर के समान है। सम्य-प्रातःकाल और सायंकाल उत्तम है। दीपक के प्रकाश में भी यह विधि सम्पन्न कर सकते हैं। प्रकाश-व्यवस्था ऊपर लिखे अनुसार ही होनी चाहिये।

त्राटक-कर्म द्वारा मननिरोध एवं स्वास्थ्य-लाभ

ऊपर जिन विधियों का विस्तार के साथ वर्णन किया गया है, उनसे न केवल शारीरिक स्वास्थ्य लाभ होता है, बल्की मन-निरोध करने में भी बड़ी सहायता मिलती है। त्राटक-कर्म आँखों के लिये विशेष लाभ दायक है।

लाभ

आँखों की दृष्टि बढ़ती है। आँखों में और आँखों के ऊपर की त्वचा

में अत्यन्त सूक्ष्म वायु वाहिनी और रक्तवाहिनी नाड़ियां होती हैं। इन नाड़ियों में आंखों को जीवन-सत्त्व देने की शक्ति यथेष्ट मात्रा में नहीं रहती है। इससे आंखों की दृष्टि मन्द पड़ जाती है। त्राटक के समय आंखों की नाड़ियां सशक्त बनती हैं। आंखों को फिराते समय नाड़ियों में तनाव आता है। इस तनाव से नाड़ियां सबल बनती हैं। वे आंखों को आवश्यक पोषक तत्व पहुंचाने में समर्थ होती हैं। आंखों की व्यर्थ उष्णता का शमन होता है। असली उष्णता का संचार होता है।

सूचना

यदि आंखों की दृष्टि अधिक मन्द हो तो त्राटक करने से पहले गुलाब जल से आंखों को धो लेना चाहिये।

आंखों धोने की विधि

आई ग्लास (Eye-Glass) में शुद्ध गुलाब जल भरकर आंखों में लगायें। शिर थोड़ा झुका हुआ हो। आंखों को गुलाब जल में बारबार खोलना और बन्द करना चाहिये। पहले दिन १० बार करें। यह करने के बाद ५ सेकन्ड तक आंखें बन्द रखें। उस पर दोनों हाथों की उंगलियों द्वारा मालिश करें। फिरसे आई ग्लास को आंखों में लगायें। इसी तरह १० बार आंखों को बन्द करें और खोलें। दूसरे दिन १५ बार करें। तीसरे दिन २० बार करें। ४ थे दिन २५ बार करें। २५ बार करने के बाद आंखों को खोलकर पुतलियों को ऊपर-नीचे, दायें-बायें घुमायें—चारों ओर ५-५ बार। गुलाब जल में आंखें धोते समय आंखों में जलन होने की सम्भावना है। आंखों से पानी निकल सकता है। किन्तु उस दशा में भी अभ्यास बन्द न करें, चालू रखें, अन्यथा लाभ न होगा। त्राटक के समान ही आंखों को बन्द रखें और खोलें। यदि खोलने के समय आंखें बन्द होने के लिए विवश होती हैं एवं बन्द करते समय खुलना चाहती हैं तो लाभ उतना नहीं होगा। आंखों को स्वाभाविक अवस्था में रखें, न अधिक खोलकर रखें और न

अधिक बन्द । यदि बन्द होने की सम्भावना है तो साधारण खोलकर रखें । आंखों में पानी आने के समय उनके बन्द होने की सम्भावना है, लेकिन बन्द नहीं करना चाहिये । जिनका मन अधिक अस्थिर, शरीर रोगी, मन चिन्तित और भयातुर है, अभ्यास काल में वारंवार उनकी आंखों का बन्द होना सम्भव है । पानी भी अधिक गिर सकता है । ऐसा भी हो सकता है कि पानी बिलकुल न गिरे । यदि पानी अधिक गिरे तो अभ्यासकी कालावधि को कुछ कम कर सकते हैं । पानी आना बन्द हो जाने के बाद अभ्यासकाल को क्रमशः बढ़ा सकते हैं नेतिकर्म और ब्राह्मी तेल द्वारा भी आंखों की ज्योति बढ़ाने में सहायता ले सकते हैं । जीवनसत्वयुक्त आहार लेना भी आवश्यक है । दिन में एक बार प्रातःकाल अथवा सायंकाल गुलाब जल का प्रयोग करें । जो लोग दृष्टि बढ़ाने के लिये त्राटक, गुलाब जल, नेति, ब्राह्मी तेल आदि का उपयोग कर रहे हैं, उनकी दृष्टि ३ से ६ मास तक बढ़ेगी । यदि उम्र अधिक है, अर्थात् ५० से ६० वर्षात्क है तो अधिक समय भी लग सकता है । पहले महीने में ही इनका प्रत्यक्ष लाभ मालूम होगा । दृष्टि बढ़ाने के लिये ५ मिनट से आधा घन्टे तक शीर्षासन न हो सके तो अर्ध सर्वांगासन पांच मिनट तक करें । त्राटक के अभ्यास काल में इस भावना को निरन्तर बलवती रखें कि आंखों की ज्योति बढ़ती जा रही है, नेत्रों के अङ्ग प्रत्यङ्ग सशक्त बन रहे हैं—नीरोग बन रहे हैं । उनमें तेजोवृद्धि हो रही है । उत्तरोत्तर वांछित लाभ मिल रहा है । सम्पूर्ण श्रद्धा के साथ इन्हीं भावनाओं को मनमें दुहरायें । इस समय मुखमण्डल प्रसन्न और प्रफुल्ल रहे । इससे मानसिक (Psychic-effect) सुपरिणाम हो जाता है ।

त्राटक के समय मनमें अत्यन्त उच्चकोटि की भावनाओं का प्रादुर्भाव होता है । सात्त्विक गुणों का विकास होता है । आध्यात्मिक विषय में रुचि रखने वाले स्त्री-पुरुषों को थोड़ी देर आंखों को खुला रख कर बन्द करना चाहिये और तत्पश्चात् इष्ट देवता को भ्रूकुटी या हृदय में आसीन करना चाहिये । शारीरिक स्वास्थ्य के लिये अभ्यास करने वाले साधकों के लिए

जो नियम निर्धारित किये गये हैं, वे आध्यात्मिक दृष्टि से प्रयास करने वाले साधकों पर लागू नहीं होते हैं। वे अधिक समय तक टाटक कर सकते हैं।

आयु

८ से १०० वर्ष तक के स्त्रीपुरुष सभी ऋतुओं में टाटक कर सकते हैं।

वचनामृत

प्रारब्ध और पुरुषार्थ के बारे में लोगों में मतभेद रहता है। अर्थात् कोई समझता है कि प्रारब्ध मुख्य है और कोई कहता है कि प्रारब्ध पुरुषार्थ दोनों मुख्य हैं, कोई कहते हैं प्रारब्ध पुरुषार्थ और ईश्वर-कृपा मुख्य है। कोई कहता है कि केवल ईश्वर-कृपा मुख्य है। इस प्रकार अनेक विचारों से जीवन अस्थिर बन जाता है। हमारे अनुभव गम्य विचारों से स्पष्ट मालूम पड़ता है कि पुरुषार्थ का फल प्रारब्ध है। जिस ढंग से पुरुषार्थ करें अर्थात् श्रेष्ठ प्रकार के पुरुषार्थ करें तो प्रारब्ध अच्छा बढ़ता है और अनीतिमय अधर्ममय, अनाचारमय पुरुषार्थ करें तो प्रारब्ध प्रतिकूल बन जाता है। सुख मिलने पर प्रारब्ध की स्तुति करना और दुःख आने पर प्रारब्ध की निन्दा करना। यह ठीक नहीं है। जैसा कर्म करें, वैसे प्रारब्ध का निर्माण होकर फल मिलते जाते हैं। ईश्वर-कृपा अवश्य होनी चाहिये। इस बात को मैं मानता हूँ परन्तु इसके साथ दूसरी एक बात को याद दिलाना चाहता हूँ कि शुभनिष्ठा से सत्कार्य करने से स्वाभाविक रीति से ईश्वर-कृपा बढ़ती जाती है।

— योगीराज श्री उमेशचन्द्रजी

आसन विभाग

आसन की प्रत्यक्ष चर्चा करने से पहले प्राचीन महात्माओं ने आसनों की चर्चा किस व्याख्या के साथ प्रस्तुत कर दी है, यह देखना उचित होगा ।

स्थिरसुखमासनम् ।

—पातंजल योगदर्शन, साधनपाद, सूत्र ४६

जिस स्थिति में आसानी से बैठकर स्थिर सुख मिलता है उसे आसन कहते हैं ।

हठस्य प्रथमांगत्वादासनं पूर्वमुच्यते ।

कुर्यात्तिदासनं स्थैर्यमारोग्यं चांगलाघवम् ॥

—हठयोग प्रदीपिका

हठयोग अर्थात् अष्टांग योग के प्रथमांग को आसन कहते हैं । स्थिर होने के लिये आसनों का अभ्यास करना चाहिये । आसनों से शरीर आरोग्यमय और स्फूर्तिदायक होता है ।

आसनानि समस्तानि यावन्तो जीव-जंतवः ।

—घेरंडसंहिता

जितने जीवों के प्रकार हैं, उतने ही आसन भी हैं ।

यम, नियम और तदन्तर्गत षट्कर्म—विधि सम्पन्न होने के बाद अब योग के तृतीय अंग—आसन के अभ्यास का मार्गदर्शन कराया जा रहा है ।

भारतवर्ष में प्राचीन काल से योगाभ्यास की परम्परा चली आ रही है । इस मार्ग पर प्रवृत्त होकर व्यवहार और परमार्थ का जीवन भलीभांति चलाया जा सकता है । इसके द्वारा मानव शरीर से, मनसे, ऐश्वर्य, विज्ञान और आत्मज्ञान से अपनी जीवन-नौका अच्छी तरह चला सकता है । हमारे पूर्वज लम्बे आयुष्य का उपभोग करते थे । उनका शरीर सम्पूर्ण नीरोग रहता था । वे धैर्य, तेज तथा ओज् से सम्पन्न थे । यह जो कुछ उन्हें उपलब्ध था, वह कैसे ? और क्यों ? इसके अन्य अनेक कारणों में योगाभ्यास भी एक मुख्य कारण था । योगाभ्यास के आरम्भ और उसके नियमित होने पर व्यक्ति के जीवन में असाधारण परिवर्तन संघटित होता है । देखा जाता है कि योगाचरण से अधार्मिक, धार्मिक, रोगी, निरोगी, अनैतिक, नैतिक, दुराचारी, सदाचारी, मन्दबुद्धि, तीव्र बुद्धि और कुमार्गी, सन्मार्ग के पथिक बनते हैं । वे आचार-विचार को वैज्ञानिक ढंग से समझने लगते हैं । सत्य के पारखी होते हैं । व्यवहार कुशल होते हैं । परमार्थ में अग्रणी बनते हैं । आज के समाज की गिरी दशा, अर्थात् चारित्रिक पतन के लिये उत्तरदायी कारणों में यह कारण मुख्य गिना जायेगा कि आज का शिक्षित और सभ्य कहा जाने वाला समाज योगाभ्यास को केवल सन्यासी, त्यागी, वैरागी, नदी-तटवासी, कन्दरानिवासी, तीर्थपर्यटक, एकान्तसेवी और साधु बाबा आदि कहलाने वालों के करने का साधन मानता है । अन्य लोगों के अर्थात् सांसारिक लोगों के करने में हानि समझ बैठा है । उनके मुंह से ऐसे भ्रांत विचार सुनने को मिलते हैं कि योग साधना से शायद घर छोड़कर जङ्गल में भाग जाना पड़ेगा । अनेक रोग हो सकते हैं । दुर्बलता भी आ सकती है ।

पागलपन पीछा पकड़ सकता है। ऐसी बातें कहने वाले प्रायः वही लोग होते हैं, जो व्यसनों से सदा घिरे रहते हैं अथवा योगाभ्यास के उत्तम फलों से पूर्णतया अनभिज्ञ हैं। उनके शरीर में कितने ही रोगों और मलका भराव है, यह स्वयं वे भी नहीं जानते। वे डाक्टरों के यहां तो नित्य चक्कर मारेंगे; किन्तु प्राकृतिक उपचार की बात उनकी समझ में नहीं आयेगी। जिन्हें प्राकृतिक जीवन या योग के सम्बन्ध में कोई जानकारी नहीं, वे अश्राकृतिक जीवन की दिशा ग्रहण करते हैं। सच कहा जाये तो हमारे पूर्वज गृहस्थाश्रमी थे, सदाचारी थे, योगाभ्यासी थे और धर्म भवना से भरपूर थे। इन सब कारणों ने उनके जीवन को सुचारुता प्रदान की थी, देवत्व प्रदान किया था। वे वैयक्तिक और सामाजिक जीवन में तन-मन-धन से सन्तुष्ट और सुखी थे। क्षण-क्षण में भय, शंका, सन्देह, बीमारी आदि से मुक्त थे। आज के लोगों की तरह तन-मन की व्याधियों से पीड़ित नहीं रहते थे।

व्यायाम के अन्य प्रकार और योगासनों की विशेषता

हम लोग प्रतिदिन जो भोजन करते हैं, उसे अन्नाशय, छोटी आंत आदि अवयवों के द्वारा शरीर को पचाना पड़ता है। भोजन के उचित पाचन के लिये लिए व्यायाम की आवश्यकता होती है। व्यायाम अनेक प्रकार के होते हैं। दौड़ना, टहलना, तैरना, घोड़े की सवारी, दण्ड-बैठक, कुश्ती, मलखम्भ, सिंगल बार, डबल बार, सायकल सवारी, टेनिस, हॉकी, बॅड मिन्टन, क्रिकेट आदि सभी व्यायामों के लिये कितनी ही शर्तें पूरी करनी पड़ती हैं। जैसे अनेक साधन, स्थान, अन्य व्यक्ति, समय, आयु की अनुकूलता ऋतु आदि। किन्तु योगाभ्यास में कम से कम साधन, समय, ऋतु, परिश्रम आदि की जरूरत होती है और लाभ उक्त व्यायामों से अधिक प्राप्त होता है। सभी स्त्री-पुरुष योगाभ्यास कर सकते हैं। आयु यहां बाधक नहीं होती। ऋतु अड़चन नहीं डालती। शरीर के रोग निकल भागते हैं। उनके पुनरागमन की सम्भावना समाप्त हो जाती है। विचार निर्मल और पवित्र हो

प्रथम खंड

७३

जाते हैं। इन सभी कारणों से योग न केवल ब्रह्मचारियों और वानप्रस्थों के लिये है, बल्कि गृहस्थाश्रमी लोगों के लिये भी उतना ही उपयोगी है। योगाभ्यासियों की मन्तान नीरोगी और वीर्यवान् होती है। योगाभ्यासी के साथ कोई दुर्व्यसन नहीं होता, अतः वे प्रकृत्या शरीर और मन से निर्मल और स्वस्थ होते हैं और इसका प्रभाव उनकी सन्तान पर भी पड़ता है। निर्व्यसनी होने से उनकी सन्तधातुओं का स्वाभाविक निर्माण होता है और वे निर्मल होती हैं। रस, रक्त, मांस, मज्जा, मेद, हड्डी, और वीर्य अथवा रज शुद्ध बनते हैं। सभी अवयव विकासवान, प्रफुल्ल और शक्ति सम्पन्न होते हैं। शरीर में चर्बी न कम होती है, न अधिक। शरीर आयु के अनुसार संतुलित और उचित वजन का होता है। वात, पित्त और कफ के विकार नष्ट हो जाते हैं। वीर्य-दोष अथवा रजस्-दोष निकल जाते हैं। शान्त और गहरी निद्रा आती है। पाचन शक्ति बढ़ती है। इसके अतिरिक्त योगाभ्यास के और भी अनेकशः लाभ हैं। आसन-प्रकरण में उनका आसनों के अनुसार पृथक्-पृथक् वर्णन किया गया है। पाठकों को यह बात भलीभाँति ध्यान में रखनी चाहिये कि योगाभ्यासी के मन में किसी प्रकार का भय या शंका नहीं रहनी चाहिये। स्वयं करें और अन्य लोगों को भी यह पवित्र साधना करने के लिये प्रेरित करें। याद रहे, योगाभ्यास दैवी विद्या है। दैवी विद्या की उपेक्षा या अवहेलना मानव जाति के लिये उचित और हितकर नहीं जो लोग इसका अभ्यास करना चाहते हैं, जिनमें उत्कण्ठा और लगन है, उन्हें रोक देना अन्याय है। खाद्य पदार्थ-जिनका हम नित्य उपयोग करते हैं—परिमाण, अवस्था आदि का विचार किये बिना हानि पहुँचाते हैं। हैं। जैसे मन्दाग्नि में घी या बादाम लाभकर सिद्ध नहीं हो सकते। विचार पूर्वक ही हमें ऐसा भोजन लेना चाहिये, जो शारीरिक स्वास्थ्य को कायम रखे और बढ़ा भी सके। उसी तरह आसनों को, जो योग साधना के महत्वपूर्ण अंग हैं—बिना समझे-विचार किये या चाहे जैसे करने में यदि वांछित लाभ न हो तो इसमें आसनों का कोई दोष नहीं है। योग्य और उचित विधि से किया गया योगाभ्यास आशा से अधिक लाभकर सिद्ध होता है। प्रतिदिन

आध से एक घंटे तक योगाभ्यास करना चाहिये। स्त्रियां मासिक धर्म और गर्भाधान की अवस्था में आसनादि न करें। हृदय-रोग, रक्तचाप, हैजा अतिसार, (Heart Disease, Bloodpressure, Constipation, Dysentery) तीसरे दर्जे के क्षय-रोगी (T. B.) और तीसरे दर्जे के दमा के (Asthma) रोगियों को आसन न करना चाहिये। गलित कुष्ठ और वात-पित्त-कफ के अतिरेक वाले स्त्री-पुरुषों को भी आसनादि नहीं करने चाहिये। उक्त रोगों से पीड़ित लोग उचित परामर्श के अनुसार कुछ विशेष अवस्थाओं में आसनादि कर सकते हैं।

योगाभ्यास के लिये आरम्भिक नियम

भोजन के तीन घंटे के पश्चात् योगाभ्यास की आसनादि क्रियायें कर सकते हैं। आसन करने के २० मिनट के बाद भोजन कर सकते हैं। दूध, फलों का रस आदि द्रव पदार्थ लेकर एक घंटे के बाद आसन कर सकते हैं। स्नान के पश्चात् योगाभ्यास करना चाहिये। स्नान भी शीतल जल से करें। आयु, ऋतु आदि को दृष्टि में रखकर साधारण गरम पानी से भी स्नान किया जा सकता है।

स्थान और साधन सामग्री

योगाभ्यास का स्थान स्वच्छ हो। एक ही स्थान पर सदैव अभ्यास करना विशेष ठीक होगा। समय भी एक ही निश्चित रखना चाहिये। प्रतिदिन बदलना ठीक नहीं। शरीर में अधिक और कसे वस्त्र न हों। नेकर पहन कर करने में अधिक लाभ होता है। स्वच्छ और समतल भूमि पर शुद्ध खादी का वस्त्र बिछाना उपयुक्त होगा। जहां योगाभ्यास करना हो, वहां सन्तों-महात्माओं के सुन्दर आदर्श वाक्य भी लगाने चाहियें। कमरे में अगरवत्ती या धूप सुलगाकर रखना चाहिये। इससे आनन्द, प्रफुल्लता और स्वास्थ्य की भावनायें उद्दीप्त होंगी। नदी-तट पर, मैदान और बगीचे में अभ्यास कर सकते हैं। यह आवश्यक नहीं कि अभ्यास कमरे में ही हों।

प्रथम खंड

७५

वायुवेग अधिक न हो और वह सीधे मुंह पर आकर न लगता हो। नदी या झील या समुद्र के किनारे अभ्यास करने वालों को जल से १०-१५ फीट दूर बैठकर आसनादि करने चाहियें। गन्दर्गा और धूल साधना-स्थान में न हों। पत्थर पर अभ्यास कर सकते हैं। उस पर मोटा कपड़ा बिछाकर फिर उस पर अभ्यास करना उपादेय होगा। अभ्यास-काल में वर्षा का जल ऊपर पड़ना न चाहिये।

अन्य आवश्यक निर्देश

अभ्यास कालमें मनमें निरन्तर शुभ विचार और भावनाओं का सिलसिला होना चाहिये। अभ्यास काल में आंखें बन्द भी रख सकते हैं और खुली भी। सिंहासन और व्याघ्रासन—जैसे अपवादों को छोड़कर अन्य आसनों की साधना में मुंह बंद रखना चाहिये। शरीर अधिक तना या ढीला न रहे; मध्यम स्थिति में रहे। अपवादरूपेण यदि किसी आसन—क्रिया में तनाव से काम लेना पड़े तो वांछित समय तक ही तनाव की स्थिति रखनी चाहिये और फिर मध्यम स्थिति में आ जाना चाहिये। चश्मा लगाने वालों को चश्मा निकाल कर ही अभ्यास करना चाहिये। घड़ी, बूट, चप्पल आदि पहने रहकर अभ्यास न करें। चाय, काफी, बीड़ी, सिगरेट, तम्बाकू, शराब, अफीम, मांस—मछली, ताड़ी, भांग, सोडा, लेमन आदि उत्तेजक पदार्थों से दूर रहना चाहिये। यदि ये पदार्थ लम्बे समय तक गृहित हो चुके हैं तो इन्हें प्रयत्नपूर्वक धीरे-धीरे छोड़ देना चाहिये। एक महीने के अन्दर ही दुर्व्यसनों से मुक्त हो जाना चाहिये। यदि दुर्व्यसन न छूटेंगे तो साधना का उचित लाभ भी न मिलेगा और यदि थोड़ा-बहुत लाभ मिलेगा भी तो अल्प समय के लिये। स्थायी लाभ दुर्व्यसनों से मुक्त होने पर ही सम्भव है। सिनेमा आदि देखना भी वर्जित है। फिर भी, लम्बे समय के बाद एक बार देखने की छूट मिल सकती है। चित्र का धार्मिक, नैतिक या विचारपूर्ण सामाजिक होना अनिवार्य है; अन्यथा देखना उचित न होगा। कम से कम आठ घण्टे सोना चाहिये। रात में १० बजे तक सो जाना चाहिये और प्रातःकाल ६ बजे से पूर्व उठ जाना चाहिये। सोने और उठने

के समय में १० बजे के बाद सोना और ६ बजे के बाद उठना योगाभ्यास में भलीभांति सहायक नहीं होगा। यथासम्भव रात के १२ बजे से पूर्व ही नींद लेना अधिक उपयोगी होगा। अधिक शक्तिशाली और स्फूर्तिवान् बनने के लिये १२ बजे तक की नींद अच्छी मानी जाती है। इसलिये जल्दी सोना और जल्दी उठना चाहिये।

जल का उपयोग

शहर के निवासियों को नल के जल का उपयोग अनिवार्य रूप से करना पड़ता है। यह जल आवश्यक जीवन-तत्त्वों से (लोह, फॉस्फेटस् एवं गंधक से) युक्त नहीं होता। रोगोत्पादक कीटाणुओं को मारने के लिये उसमें कई औषधियां क्लोरीन आदि डाली जाती हैं। फलतः जल के उपयोगी तत्त्व प्रभावित होते हैं और कुछ तत्त्व कम या बिल्कुल नष्ट हो जाते हैं। इससे मन्दाग्नि, मलबद्धता, रक्त की अशुद्धि आदि रोग हो सकते हैं। योगसाधकों को जल गरम कर उ० ठण्डा कर रख लेना चाहिये और उसका उपयोग पीने में करना चाहिये। इस प्रकार का पानी यदि लाभदायक नहीं तो हानिप्रद भी नहीं होता। शरीर की अन्न-पाचन-क्रिया को कोई कठिनाई नहीं होती। भोजन के एक घण्टे के बाद पानी पीना चाहिये और फिर दो-दो घण्टे के अन्तर से जल का सेवन करते रहना चाहिये। प्रातःकाल ऋतु, अवस्था प्रकृति आदि के अनुसार पानी अधिक या कम करके पीना चाहिये। प्रातःकाल उठकर दन्तधावन के पश्चात् एक गिलास पानी पीना चाहिये। शीतकाल में साधारण गरम जल का भी व्यवहार कर सकते हैं। अन्य ऋतुओं में शीतल जल विशेष उपयोगी है। कफ और वायुप्रधान प्रकृति के लोगों को तांबे या पीतल के बर्तन का पानी पीना चाहिये। पित्तप्रकृतिवालों को मिट्टी के बर्तन का पानी पीना चाहिये। मलविसर्जन के पश्चात् ही आसनादि का अभ्यास करना चाहिये। यदि किसी कारण वश ठाक रूप से मल-विसर्जन नहीं हुआ तो भी आसन कर सकते हैं। पेशाब को रोक कर आसन न करें। रात में काम करने वालों को आठ

घन्टे की नींद लेने के उपरान्त ही आसनादि का अभ्यास करना चाहिये । जिनके शरीर में अधिक मात्रा में चरबी है, ऐसे लोगों को श्वास बाहर निकालकर अथवा थोड़ा भरकर आसन करने चाहियें । जिनका शरीर कृश हैं, वजन कम है उन्हें यथाशक्ति श्वास भरकर ही आसनादि करने चाहियें । जिनके फेफड़े कमजोर हों, संकुचित हों, उन्हें श्वास को अधिक नहीं भरना चाहिये अधिक रोककर भी नहीं रखना चाहिये । आसन के साधकों को थोड़े दिनों तक हाथ-पैर की सन्धियों में पीड़ा भी हो सकती है । पद्मासन आदि में बैठने के लिये कठिनाइयां भी मालूम पड़ेंगी । ऐसे समय लोग आसनादि का अभ्यास यह कहकर छोड़ न दें कि यह हमसे न होगा । अभ्यास लगातार चालू रखना चाहिये । थोड़े दिनों में कठिनाइयों का अपने आप निवारण हो जायेगा वेदना दूर हो जायेगी । हाथ-पैरों की सन्धियां भलीभांति मुड़ने लगेंगी । उनमें अनुकूल लचक आ जायेगी । प्रत्येक आसन करते समय स्थिरता लाना आवश्यक है । स्थिरता बढ़ाते रहना चाहिये मनको भी स्थिरता प्रदान करनी चाहिये, अर्थात् मनमें सांसारिक विचारों की ऊहापोह न रहनी चाहिये । उलझन न हो । निश्चिन्तता लाना जरूरी है । चित्तवृत्ति शांत होनी चाहिये । आसनादि क्रियाओं को करने में न तो अधिक उतावलापन दिखाना चाहिये और न अधिक मन्दता । सन्तुलित प्रयास आवश्यक है । आसन करते समय पसीना आता है, उसमें यदि दुर्गन्ध आती हो तो तौलिये से पोंछ डालना चाहिये । यदि पसीने में दुर्गन्ध नहीं है तो उसे शरीर में मल देना चाहिये । शरीर के पसीने के साथ रोगमूलक तथा विजातीय द्रव्य बाहर निकलते हैं । ऐसा अनुभव करते रहना चाहिये । पसीने में दुर्गन्ध नहीं है तो समझना चाहिये कि शरीर निरोग है ।

आसन करने वाले का आहार घटता क्यों है ?

एक मास के पश्चात् ही आसनों का लाभ मालूम पड़ेगा । यदि लाभ में देर हो तो समझना चाहिये कि शरीर में अधिक मात्रा में विजातीय द्रव्यों का संग्रह है । कभी-कभी ऐसा देखा जाना है कि आसन, प्राणायाम आदि

के अभ्यास-काल में स्त्री पुरुषों को भूख कम लगती है। फिर भी शरीर का वजन संतुलित रहता है। शरीर की शक्ति और ओज् में वृद्धि होती है। इसका प्रमुख कारण यह है कि हम जो कुछ प्रतिदिन भोजन करते हैं, वह परिमाण में अधिक होता है और जितनी मात्रा में पानी और वायु के पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है, उतने हमें मिल नहीं पाते। इनका मिलना नितान्त आवश्यक है। परिणामतः हमारे शरीर के सामर्थ्य और तेज में कमी आती है। योगाभ्यास का सीधा परिणाम यह होता है कि हमारे शरीर के विभिन्न अंग पानी और वायु के आवश्यक तत्व खींच लेते हैं, इससे अधिक आहार लेने की आवश्यकता नहीं रहती। योगाभ्यासी का शरीर न अधिक पतला होता है और न अधिक मोटा होता है, संतुलित होता है। सभी इन्द्रियां-पांच ज्ञानेन्द्रियां और पांच कर्मेन्द्रियां-सतेज और बलवान् रहती हैं। योगाभ्यासी में सहनशक्ति अधिक होती है। किसी जीवनोपयोगी उत्कृष्ट कार्य में बाधा आ पड़ने पर भी वह विचलित नहीं होता-पीछे नहीं हटता-किसी तरह से भी उस कार्य को सफल बनाता है। योगाभ्यासी दुराचारी की संगति नहीं करते। सत्संग में रहते हैं। पवित्र वस्तु और स्थान ही वे अपनाते हैं। पवित्र जीवन ही उनका अभ्यास और लक्ष्य रहता है। दूसरे की भलाई में वे अपना भला देखते हैं। यही उनके जीवन का मन्त्र होता है। सांसारिक जीवन-यात्रा में वे निर्भय होकर चलते हैं। तन और मन से समुत्पुष्ट रहते हैं। सुख और आनन्द ही उनका लाभ होता है।

बहिनों के लिये योगासनों का अभ्यास आवश्यक है या नहीं ?

प्रायः यह प्रश्न उपस्थित किया जाता है कि बहिनें (महिलायें) योगासनों का अभ्यास कर सकती हैं या नहीं ? अतः यहां इस प्रश्न पर विचार करना आवश्यक है। कहा जाता है कि बहिनें अपनी सन्तान के लालन-पालन, परिवार (घर) के काम काज और सामाजिक सेवा-कार्य करती रहती हैं इसके फलस्वरूप उन्हें उतना व्यायाम स्वतः मिल जाता है, जितना जरूरी है। ऐसी दशा में महिलाओं को आसन करने की जरूरत ही

कहां रहती है ? यह बात कुछ अंशों में सही है । हम भी मानते हैं कि बहिनों को घर-बाहर के बहुतेरे काम करने पड़ते हैं, किन्तु इस प्रवृत्तिमय जीवन में भी जिन अत्रयवों को जितने परिमाण में व्यायाम की आवश्यकता है, उतना उन्हें मिल नहीं पाता है । जैसे कि कपड़ा धोते समय, मसालादि पीसने में और स्वयंपाक करते समय केवल हाथों को ही व्यायाम मिल पाता है, अन्य अवयवों को अत्यल्प परिमाण में मिलता है इसी प्रकार गृहोद्योग, सीना-पिरोना, पढ़ना-पढ़ाना आदि अनेक कार्यों में व्यस्त रहने तथा टहलने में भी सर्वांग को व्यायाम मिल नहीं पाता । बहुतेरे अंग व्यायाम के लाभसे वंचित ही रह जाते हैं, फलतः शरीर सांगोपांग निरोग नहीं रहता और पुरुषों की तरह स्त्रियां भी रोगग्रस्त रहती हैं । किन्तु योगासनों के अभ्यास से जिस अवयव को जितने परिमाण में रस, रक्त, मांस, मज्जा आदि सप्त धातु आवश्यक हैं, वे सब यथोचित रूप में मिलते रहते हैं । फलतः शरीर में कोई रोग रहता है तो उसका निवारण हो जाता है और योगासनों की साधना निरन्तर करते रहने से आजीवन आरोग्य की कुंजी (चाबी) मिल जाती है । ऊँचाई और आयु के अनुसार ही शरीर का वजन भी सप्रमाण और संतुलित रहता है ।

अवश्य विचार करें

जो बहिनें लज्जा (शर्म), संकोच, आलस्य, प्रमाद दुराग्रह, अभिमान या अहंकारके वशीभूत होकर योगासनों का अभ्यास नहीं करतीं, उनका शरीर निरोग नहीं रह सकता । सूखी हवा, खेतों का काम, गांवों में कूपजल या प्रवहमान नदी के शुद्ध जल का सेवन, शुद्ध सात्विक एवं संतुलित आहार ग्रहण करें और साथ ही सत्संग आदि में समय बितायें तो बहिनें तन-मन से आरोग्यमय और सुखी जीवन का वरदान पा सकती हैं, अन्यथा नहीं । नागरिक जीवन में तो अशुद्ध वायु, अशुद्ध जल, अत्यल्प जीवन सत्वपूर्ण आहार का सेवन, चार आश्रमों में नितान्त पालनीय ब्रह्मचर्य का सर्वथा अभाव पाया जाता है । ऐसी दशा में बहिनें निरोगी कैसे रह सकती हैं ?

अप्राकृतिक जीवन ही रोग का मूल कारण है और आरोग्यमय जीवन का मूल प्राकृतिक जीवन है। अस्तु, वर्तमान अप्राकृतिक जीवन में भी यदि योगासनों का अभ्यास उत्साह, लगन, विश्वास और प्रसन्नता से किया जाये तो भविष्य में जीवन की प्राकृतिक दिशा में प्रगति होने लगती है और अन्ततः जीवन प्राकृतिक बन जाता है।

माताओ और बहनो ! आसनों के सम्बन्ध में सन्देह और भ्रम को त्याग कर आप श्रद्धापूर्वक अविलम्ब आसनों का अभ्यास प्रारम्भ कर दें। इससे आपका शरीर रोग से रहित होगा। मन में शान्ति रहेगी और धन का अपव्यय बच जायेगा; अर्थात् आप तन मन और धन से समृद्धिवान् बनेंगी।

बहिर्ने आसन कब न करें ?

सगर्भाविस्था, प्रसूति के पश्चात् दो मास तक, रजस्वला की अवस्था में ४ या ५ दिन तक शरीर में अधिक निबलता रहने पर, अत्यधिक कष्ट-दायक रोगों से पीड़ित रहने पर किसी योग विशेषज्ञ की उचित सलाह लिये बिना बहिर्ने को आसन नहीं करना चाहिये।

बहिर्ने कौन-सा आसन न करें ?

पूर्णमत्स्येन्द्रासन, मयूरासन, वृश्चिकामन, गण्डभेरुण्डासन आदि कष्टप्रद आसनों का अभ्यास बहिर्ने न करें; क्योंकि उनके गर्भाशय आदि पेट के अवयव बहुत कोमल रहते हैं, अतः उनसे बहुत सावधानी से काम लेना पड़ता है। अविवाहित या कुमारी अवस्था में बहिर्ने उक्त आसनों का अभ्यास कर सकती हैं। फिर भी, किसी सुयोग्य मार्गदर्शक की सलाह-सूचना लेना आवश्यक है। पुरुषों की तरह महिलाओं के लिये भी नियम है कि भोजन के तीन घण्टे के पश्चात् वे आसन कर सकती हैं और आसन करने के २० मिनट के पश्चात् भोजन कर सकती हैं।

बहिर्नों की आवश्यक सूचना

असाध्य रोग—जैसे तीसरी अवस्था पर पहुँचे हुए क्षय (T. B.), दमा (Asthma), केन्सर (Cancer), अतिसार (Dysentery), पाण्डुरोग (Anemia), मृगी (Hysteria), प्रदर (Leucorrhoea) तथा बहुतेरे अन्य कष्टसाध्य रोगों से ग्रस्त बहिर्नों बिना किसी योग मार्ग के विशेषज्ञ और शरीर-रचना के अनुभवी व्यक्ति की सलाह-सूचना लिये आसनों का अभ्यास न करें।

आसन कितने हैं ?

आसन का अर्थ है बैठक। ८४ लक्ष योनियों के खेचर, भूचर, जलचर, एवं चराचर जगत् के जीवों के बैठने की एक विधि है। इस विधि को आसन कहते हैं, अर्थात् ८४ लक्ष आसन बताये गये हैं। इन्हीं आसनों में से आर्य ऋषि-मुनियों ने ८४ आसनों को ही अधिक महत्व दिया है, उन्हें अच्छी तरह अपनाया और उनका समुचित अभ्यास कर मानवजाति के कल्याण के लिये उनके लाभ जनसमाज के समक्ष उपस्थित किये हैं। प्रत्येक स्त्री-पुरुष के लिये प्रति दिन ८४ आसन करना सम्भव नहीं। इसलिये इनमें से प्रमुख ३२ आसनों का विधान किया गया है। यदि ३२ आसन करने का भी समय न मिले, तो १६ आसनों की दैनिक साधना की अनिवार्य आवश्यकता पर बल दिया गया है। वैसे ४ आसन, २ आसन और १ आसन का अभ्यास करके भी कुछ लाभ उठाया जा सकता है। किन्तु वह लाभ अपूर्ण ही रहेगा। जो लोग ध्यान, मन्त्र-जप आदि के लिये एक आसन करना चाहते हैं, उनके लिये सिद्धासन उपयोगी होगा। शारीरिक कोई बीमारी हो तो किसी निष्णात योगाभ्यासी की सलाह-सूचना के बिना शीर्षासन करना नहीं चाहिये। चार आसनों की दैनिक साधना के अन्तर्गत सिद्धासन, स्वस्तिकासन (सुखासन), पद्मासन (कमलासन), शीर्षासन लाभप्रद होंगे। १६ आसनों में निम्न लिखित आसनों का समावेश होता है—(१) सिद्धासन, (२) शीर्षासन, (३) स्वस्तिकासन, (४) पद्मासन, (५) पूर्ण पद्मासन (योगमुद्रा),

(६) मत्स्यासन, (७) शवासन, (८) पश्चिमोत्तानासन, (९) भुजंगासन, (१०) वज्रासन, (११) सुप्त वज्रासन, (१२) एकपाद उत्थानपादासन, (१३) अर्धपत्स्येन्द्रासन, (१४) पूर्ण मत्स्येन्द्रासन, (१५) सर्वांगासन (ह्लासन) (१६) उर्ध्वसर्वांगासन (विपरीतकरणी) । ३२ आसनों की साधना के अन्तर्गत ऊपरिलिखित षोडश आसन-समूह के सभी आसनों का समावेश तो होता ही है, तदुपरान्त निम्नांकित १६ आसन और हैं :—(१) लोलासन, (२) मयूरासन, (३) मयूरीआसन (४) विस्तृतपाद पश्चिमोत्तानासन (विस्तृतपाद वक्ष-भू-स्पर्शासन), (५) एकपाद-शिरासन, (६) द्विपाद-शिरासन (७) एकपाद-पवन-मुक्तासन, (८) द्विपाद-पवनमुक्तासन, (९) एकपाद-शलभासन; (१०) द्विपाद शलभासन, (११) कर्णपीडनासन, (१२) गोमुखासन; (१३) एकपाद भुजासन; (१४) द्विपाद भुजासन, (१५) गोरक्षासन, (१६) सिंहासन ।

८४ आसनों का दिग्दर्शन

८४ आसनों के अन्तर्गत ऊपर लिखे हुए १६ और १६ मिलकर ३२ आसनों के अतिरिक्त शेष ५२ आसन निम्नलिखित हैं—

(१) कूर्मासन	१२) पादांगुष्ठासन
(२) सुप्तधनुरासन	(१३) कुक्कुटासन
(३) वीरासन	(१४) गर्भासन
(४) त्रिकोणासन	(१५) वीर्यस्तम्भनासन
(५) सुप्तउर्ध्वहस्तासन	(१६) वृक्षासन
(६) तोलांगुलासन (तुलासन)	(१७) विस्तृतपाद सर्वांगासन
(७) जानु-शिरासन	(१८) सुप्त द्विपाद शिरासन
(८) नौकासन	(१९) वातायनासन
(९) उत्कटासन	(२०) गरुडासन
(१०) बकासन	(२१) निश्वासासन
(११, उर्ध्वपाद शिरासन	(२२) द्विभुजासन

(२३) उर्ध्वपाद हस्तासन	(३८) प्रार्थनासन
(२४) चक्रासन	(३९) मण्डूकासन
(२५) उष्ट्रासन	(४०) कार्मुकासन
(२६) हंसासन	(४१) पर्वतासन
(२७) द्विपाद उत्थान पादासन	(४२) प्राणासन
(२८) अपानासन	(४३) समानासन
(२९) कुंजरासन	(४४) त्रिस्तम्भासन
(३०) आनन्द-मंदिरासन	(४५) यष्टिकासन
(३१) क्षेमासन	(४६) मकरासन
(३२) वृश्चिकासन	(४७) दृढासन
(३३) चतुष्कोणासन	(४८) पर्यङ्कासन
(३४) पवनासन	(४९) धीरासन
(३५) खंजनासन	(५०) स्थितिविवेकासन
(३६) कोकिलासन	(५१) ग्रन्थि-भेदनासन
(३७) उत्तमागासन	(५२) आकर्षण (आकर्ण) धनुरासन

ऊपरिलिखित ८४ आसनों की तालिका में ऐसे बहुत से आसन हैं, जिनका पूर्ण विवरण बताना जरूरी था, किन्तु पुस्तक का कलेवर बढ़ जाने के भय से प्रस्तुत पुस्तक में उन्हीं महत्वपूर्ण आसनों की साधना की पद्धति और लाभों का वर्णन किया गया है, जो साधकों को विशेष सरलता से साध्य, अधिक लाभदायक और उपयुक्त हैं। यदि जनसाधारण की रुचि होगी तो पुस्तक के तृतीय संस्करण में ८४ आसनों की साधना-पद्धति और उनके लाभों का विस्तृत वर्णन किया जायेगा।



अल्पश्रमसाध्य भासन

सिद्धासन

विधि—बायें पैर को घुटने से मोड़कर गुदा और अण्डकोश के बीच में स्थापित करें। फिर दाहिने पैर को घुटने से मोड़कर उसके ऊपरी भाग को पिण्डलियों पर रखें। शरीर को बिलकुल सीधा रखें। आंखों को चाहे तो खुला रखें; चाहे बन्द। अधिक देर तक करना हो तो बन्द रखना ही उचित

है। मेरुदण्ड को सीधा रखें। लिंगमूल (कंधस्थान) पर एड़ी का दबाव रखना चाहिये।

समय

कम से कम आधा घण्टा और अधिक से अधिक ३ घण्टे तक सिद्धासन पर बैठ सकते हैं।

लाभ

सिद्धासन का अभ्यास सभी कर सकते हैं। यह सब के लिये समान रूप से अनुकूल है। परन्तु गृहस्थाश्रमी लोग आधा घण्टे से अधिक इस आसन पर न बैठें। इसका कारण यह है कि वीर्यवाहिनी नली पर एड़ी का दबाव पड़ने से वीर्य हृष्ट-पुष्ट होता है; परन्तु वीर्यवाहिनी नाड़ी में कुछ अंशों में निर्बलता आ जाने की सम्भावना है। मंत्र-जप, पूजा-पाठ, सन्ध्या-विधि और धारणा, ध्यान तथा समाधि की साधना के समय सिद्धासन पर बैठ सकते हैं। इस आसन से सिद्धि प्राप्त होती है और मुद्राका अभ्यास भी किया जाता है।

स्वस्तिकासन (सुखासन)

जानूधौरन्तरे कृत्वा योगी पादतले ऋभे।

ऋजुकायः समासीनः स्वस्तिकं तत्प्रचक्षते ॥

अर्थात्—दोनों पैरों के तलुओं को दोनों जानुओं की बगल में लगा कर पैर के ऊपर के भाग को पिण्डलियों से ढक दें और ताड़की तरह सीधे बैठें। इसे स्वस्तिकासन कहा जाता है।

विधि—पहले दाहिने पैर को पद्मासन की तरह घुटने से मोड़ कर भूमि पर रखें। तदुपरान्त उसे मुड़ें हुए दाहिने पैर की जानु और पिण्डली के मध्य बायें पैर को स्थापित करें। दाहिने पैर को भी मुड़े हुए बायें पैर की जानु

और पिन्डली के बीच में जमायें। दोनों घुटने जमीन से लगे रहें। इस प्रकार दोनों ही पैर एक-दूसरे की जानु और पिन्डली पर जम जायेंगे। दोनों हाथों को दोनों पैरों के घुटनों पर रखें। शरीर को सीधा-समरेखा में-खिचा हुआ रखें। इसे स्वस्तिकासन अथवा सुखासन कहते हैं।

समय

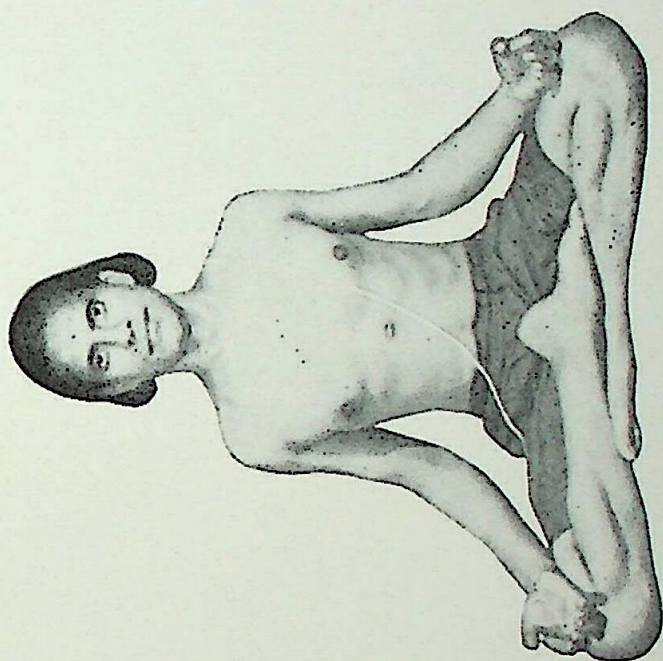
५ दिन तक ३ मिनट। ६ से ८ दिन तक ५ मिनट। ९ से १५ दिन तक १० मिनट। इस प्रकार समय और प्रकृति के अनुसार आध घन्टे या इससे भी अधिक समय तक बढ़ा सकते हैं।

लाभ

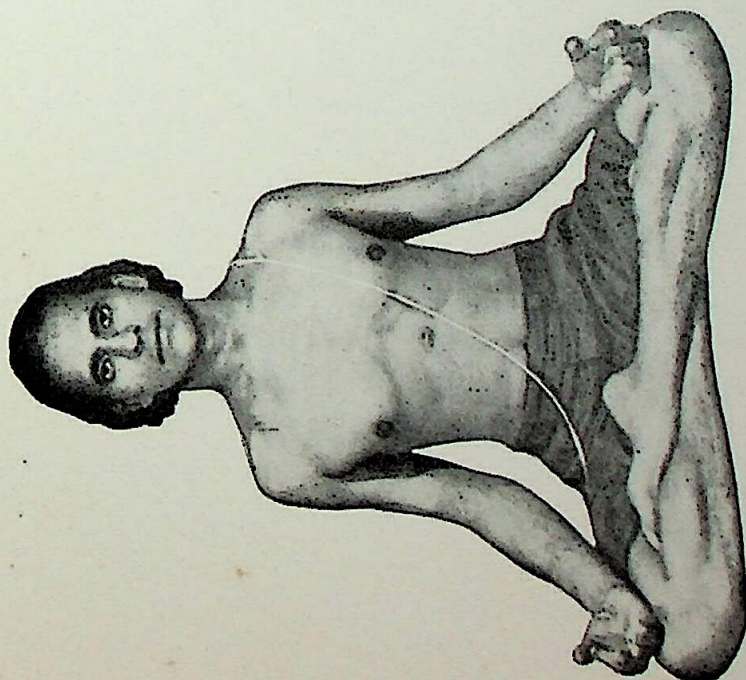
प्राणायाम के समय, धारणा, ध्यान और समाधि के समय, पठन-पाठन के समय, और सत्संग के समय इस आसन पर सरलता से सुखपूर्वक बैठ सकते हैं। सभी स्त्री-पुरुषों के लिये यह आसन अनुकूल है।

एकपाद उत्थानपादासन

विधि—जमीन पर स्वच्छ चटाई अथवा खादी का वस्त्र बिछाकर उस पर चित लेट जायें। हाथों को कमर के अगल-बगल रखें। तत्पश्चात् श्वास को फेफड़ों में भरकर दाहिने पैर को जमीन से ऊपर उठायें और लगभग दो फुट ऊपर ले जायें। ऊपर उठे हुए पैर के स्थिर होते ही दोनों पैरों पर ध्यान रखें कि वे घुटनों से मुड़ने न पायें। उठा हुआ पैर पंजे सहित आगे की ओर खिंचा रहे। सरलता से जितनी देर तक श्वास को रोका जा सके, उतने समय तक रोक रखने के पश्चात् पैर को धीरे-धीरे जमीन पर रखें और श्वास को शनः शनः बाहर निकाल दें। फिर तुरन्त ही फेफड़ों में श्वास भरकर दाहिने पैर को जमीन पर रहने देकर बायें पैर को ऊपर उठायें और यथाशक्ति कुम्भक कर के पैर को जमीन पर पुनः लाकर श्वास को बाहर निकाल दें; अर्थात् रेचक करें।

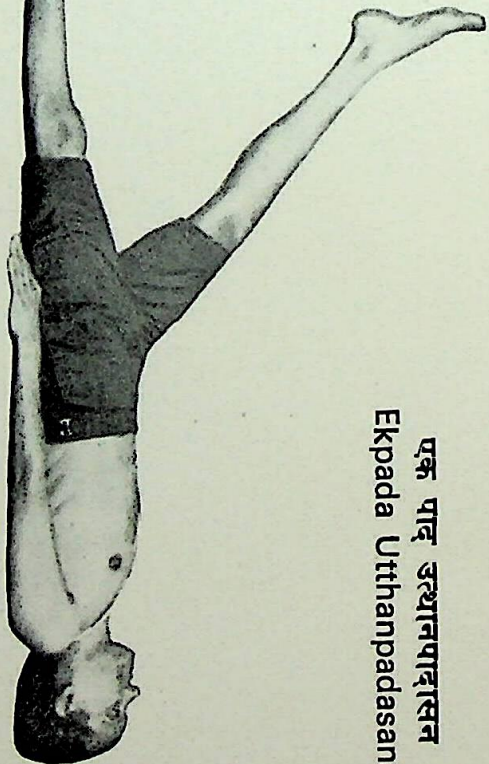


Swastikasana (Sukhasana)
स्वस्तिकासन (सुखासन)

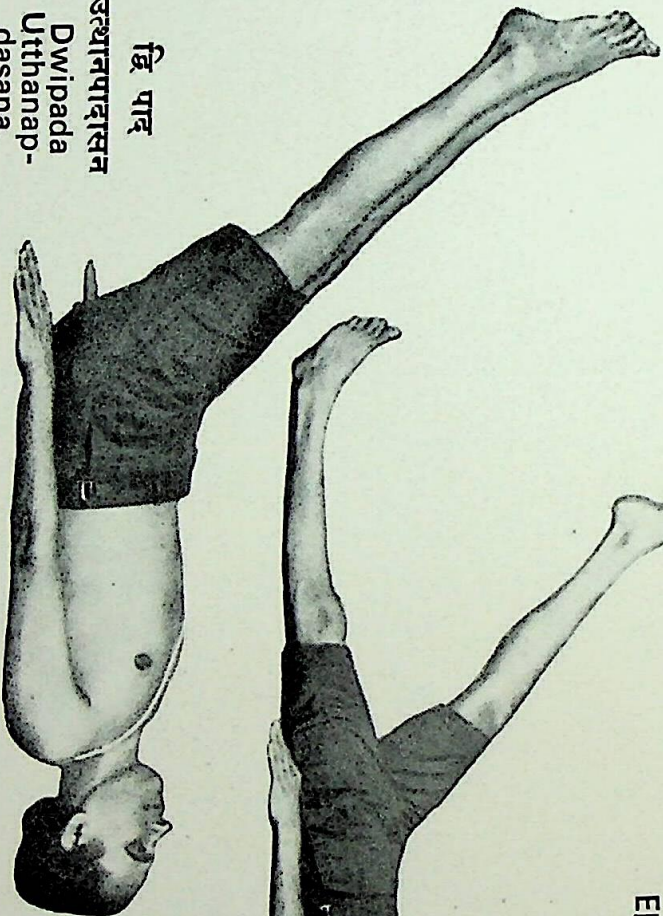


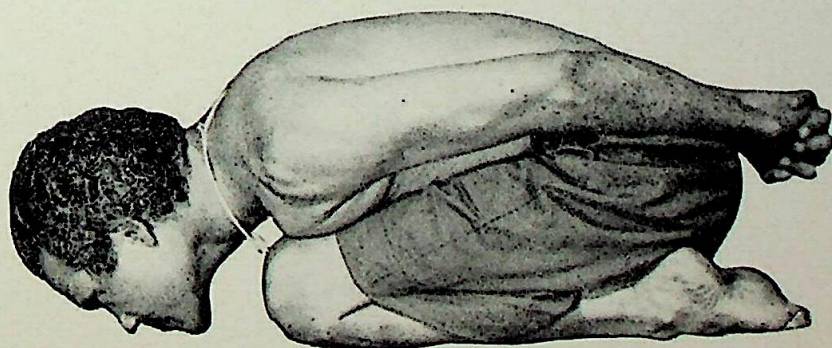
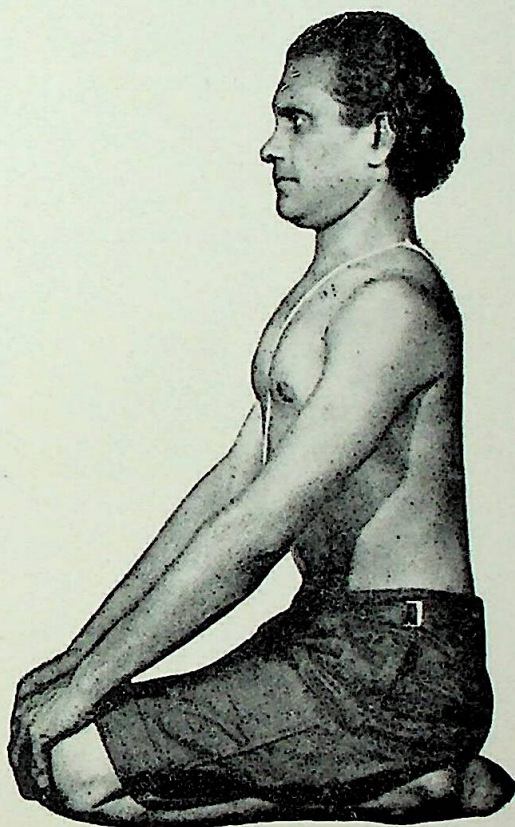
Siddhasana
सिद्धासन

एक पाद उत्थानपादासन
Ekpada Utthanpadasana



द्वि पाद
उत्थानपादासन
Dwipada
Utthanap-
dasana.



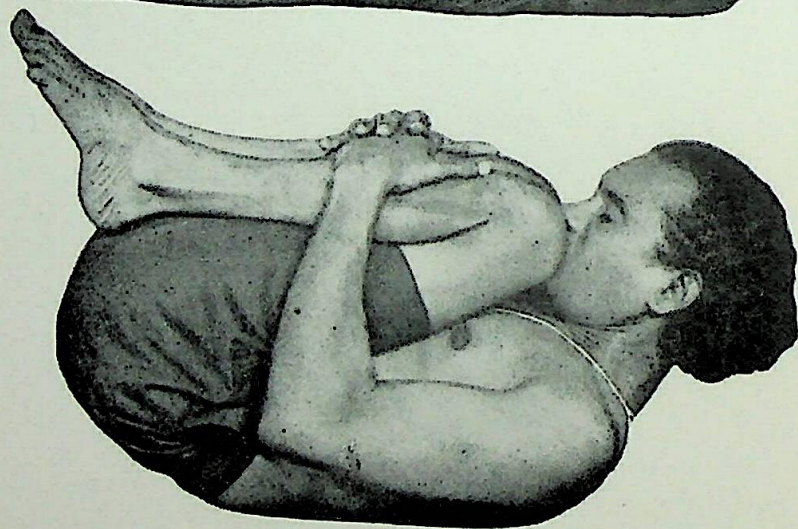
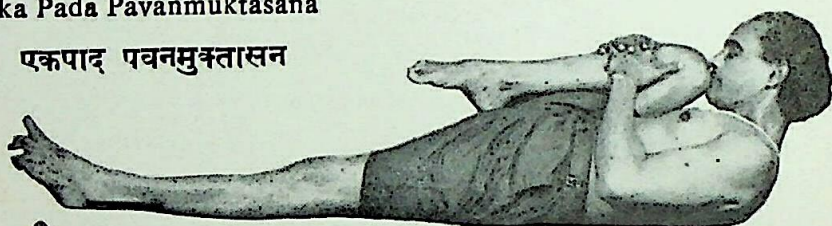


Vajrasana
वज्रासन

[90]

Eka Pada Pavanmuktasana

एकपाद पवनमुक्तासन



Dwipada Pavanmuktasana

द्विपाद पवनमुक्तासन

ध्यान रखने योग्य सूचना

फेफड़ों की कमजोरी, शरीर की स्थूलता या अन्य किसी विशेष कारणवश श्वास को अधिक समय तक रोक रखने का सामर्थ्य न हो तो पैर को दो फुट तक ऊपर उठाने के बाद तुरन्त ही ५ बार श्वास को खींचें और छोड़ें। ६ ठी बार में श्वास को फेफड़ों में भरकर पैर को पुनः शनैः शनैः जमीन पर लाकर रख दें। इसी प्रकार दूसरे पैर से भी करें। आंखें खुली भी रख सकते हैं और बन्द भी रख सकते हैं। दोनों नासापुटों से श्वास खींचते और छोड़ते रहना चाहिये। कुम्भक के समय में नाभि के नीचे के भाग को साधारण दबाकर रखें तथा छाती के भाग को फुलाने और विकसित करने का प्रयास करें।

समय

२ दिन तक ३३ बार। ३ से ४ दिन तक ४४ बार। ५ से ८ दिन अथवा और अधिक समय तक ५५ बार।

लाभ

इस आसन के अभ्यास से पैर की सृजन अच्छी होती है। पैर का रक्ताभिसरण उचित रूप से गतिवान् होता है। पैर के घुटनों और अन्य नीचे के भागों का दर्द दूर होता है। छाती पर भी यह अपना शुभ प्रभाव डालता है। पेट के अनेक विकार दूर होते हैं। जिन लोगों को कब्ज की शिकायत हो; उन्हें प्रातःकाल बिछौने से उठकर और दन्तधावन कर गरमी के दिनों में शीतल जल और शीतकाल में सामान्य गरम जल १२ से १६ औंस तक पीना चाहिये। इसके बाद एकपाद उत्थानपादासन का अभ्यास २ से ३ मिनट तक करना चाहिये और द्विपाद उत्थानपादासन को ५ बार करना चाहिये तदुपरान्त कुछ समय के बाद मल-विसर्जन के लिये चले जाना चाहिये। इस प्रकार की साधना से कब्ज की शिकायत पूर्णतया दूर

हो जायेगी और पेट साफ होगा । इस आसन के अभ्यास से नितम्ब के भाग में भी रक्त का संचार उत्तम रूप में होता है ।

द्विपाद उत्थानपादासन

विधि=पहले चित लेट जायें । तदुपरान्त फेफड़ों में श्वास भरकर दोनों पैरों को दो फीट जमीन से ऊपर उठावें । यथाशक्ति श्वास को रोकने (कुम्भक करने) के पश्चात् पैरों को भूमि पर रख दे और श्वास को बाहर निकाल दें-रेचक करें । श्वास को दोनों नासिका-छिद्रों से भरना और निकालना चाहिये । शेष नियम एकपाद उत्थानपादासन के अनुसार समझना चाहिये ।

विशेष सूचना

पैर को जमीन से चार अंगुल ऊपर उठाकर और स्थिर रखकर भी इस आसन को किया जा सकता है । दोनों पैर बिल्कुल सीधे-समरेखा में रहें । अशक्ति और वातादि रोगों के कारण इस आसन का अभ्यास करते समय पैरों में कम्पन उत्पन्न हो सकती है । ऐसे समय में भी अभ्यास चालू रखना चाहिये और यह ध्यान रखना चाहिये कि कुछ दिनों तक पैरों को ऊपर उठाई हुई स्थिति में अधिक समय तक स्थिर न रखें । जैसे-जैसे स्थानीय स्नायुओं में शक्ति बढ़ती जायेगी; रक्त में यथोचित उष्णता आती जायेगी; कमर का भाग मजबूत होता जायेगा वैसे-वैसे पैरों को आसानी से ऊपर स्थिर रख सकेंगे । मन में अस्थिरता (चंचलता) होने पर भी पैर अधिक समय तक ऊपर स्थिर रह न सकेंगे । ऐसे समय में आंखें मूंदकर मन-ही-मन में अपने धर्मानुकूल देवता का स्मरण करें । ॐकार का स्मरण करें अथवा राम कृष्ण या अपने गुरुदेव का स्मरण करें । इस आसन के अभ्यास की यही सरल पद्धति है । यदि इस आसन से थकावट का अनुभव हो तो कुछ समय तक श्वासन करें । यदि थकावट मालूम पड़ती हो और शिरोवेदना; हाई ब्लडप्रेसर, छाती आदि के रोग हों तो श्वास को बाहर निकालकर इस आसन का अभ्यास करना चाहिए ।

समय

४ दिन तक ४ बार । ५ से ८ दिन तक ४ बार । ९ से १५ दिन तक ७ बार । तदनन्तर समय शक्ति और लाभ के अनुसार १० बार तक बढ़ायें ।

लाभ

एकपाद उत्थानपादासन में बताये गये सभी लाभ इस आसन से मिलते हैं; साथ ही आरम्भिक बवासीर के निवारण के लिये यह आसन निस्सन्देह अप्रतिहत लाभ प्रदान करता है । पीठ के भाग, कमर के भाग और गले के पृष्ठ भाग पर इस आसन का अच्छा प्रभाव पड़ता है । हिचकी आना, जानुओं में पीड़ा होना, वारंवार डकारें आना, थोड़ी-थोड़ी देर में मल विसर्जन की हाजत होना, अपान वायु का विकार आदि अनेकों विकार इस आसन के अभ्यास से पीछा छोड़ भागते हैं ।

वज्रासन

प्रथम प्रकार

जंघाभ्यां वज्रवत्कृत्वा गुदपाश्वरे पदावुभौ ।

वज्रासनं भवेदेतत् योगिनां सिद्धदायकम् ॥

—यो सं

अर्थ—दोनों जानुओं और दोनों पिण्डलियों को एक-दूसरे के समीप लाकर तालुओं को गुदा के नीचे रखें; इसे वज्रासन कहा जाता है । इस आसन से साधकों को सिद्धि प्राप्त होती है ।

विधि—पैरों को घुटनों से मोड़कर मुड़े हुए पैरों पर बैठ जायें । दोनों हाथों को दोनों घुटनों पर रख दें । छाती को फुलाकर रखें और पेट को अन्दर की ओर खींच रखें । कमर, पीठ और शिर को सम रेखा में रखें । आंखों

को खुला रखें। दीर्घ (लम्बा) श्वास-प्रश्वास लेते रहें। शरीर अधिक ढीला भी न रहे और अधिक तना भी न रहे। मध्यम स्थिति में रहे।

द्वितीय प्रकार

विधि-वज्रासन प्रथम प्रकार की स्थिति में बैठ जाइये। हाथों को पीछे की ओर लेजाकर दोनों हाथों की अंगुलियों को एक दूसरे में फसा लीजिए फिर गहरा श्वास लेकर धीरे से आगे की ओर झुकते हुए माथे को जमीन पर लगाने का प्रयत्न कीजिए। जमीन स्पर्श करने के बाद पूर्ण रेचक कर लें। फिर पूरक करके धीरे से माथे को ऊपर उठाते हुए प्रथम स्थिति में आ जाने पर पूर्णतः रेचक कर लें। इस प्रकार तीन बार माथे का स्पर्श जमीन से करे।

समय

६ दिन तक १ मिनट। ७ से १२ दिन तक २ मिनट। १३ से १८ दिन तक ३ मिनट। १९ से ३० दिन तक ४ मिनट। तदनन्तर आयु, शक्ति और लाभ के अनुसार ४ से ८ मिनट तक बढ़ा सकते हैं।

लाभ

‘यथा नाम तथा गुणः’ के अनुसार उक्त दोनों प्रकार के वज्रासनों का अभ्यास करने से शरीर वज्र के समान सुदृढ़ और सामर्थ्यवान् बन जाता है। इतना ही नहीं; इससे अनेकशः रोग मिट जाते हैं। वीर्यदोष से उत्पन्न बहुतेरे रोग—जैसे कि जीर्णज्वर, अशक्ति, मन्दाग्नि, शिरोवेदना, आलस्य, जड़ता, प्रमाद, क्रोध, चिन्ता, व्यग्रता, क्लेश, भीरुता, कायरता, संकोच, शर्म, शिश्नेन्द्रिय में शिथिलता, अण्डकोश की कमजोरी और अन्य बीमारियां, वीर्याशय-कोष की निर्बलता, गुर्दे की कमजोरी और अन्य मूत्र तथा वीर्यदोषजन्य रोग पूर्णतया नष्ट हो जाते हैं। इतना ही नहीं; वज्रासन के इन दोनों प्रकारों का समुचित अभ्यास करते रहने से पाण्डु रोग—कफज

पाण्डु, पित्तज पाण्डु और वातज पाण्डु रोग पूर्णतया मिट जाते हैं। प्लूरसी के रोगियों के लिये भी यह आसन अतीव लाभप्रद है। बुढ़ापा के लक्षणों से भी यह आसन दूर रखता है; अर्थात् युवावस्था को दीर्घकाल तक स्थिर रखने वाला है। निराशा जीवन में परिवर्तन संघटित कर उसे आशा और आत्म विश्वास से भरपूर बना देता है। हृदय-विकार वालों को यह आसन बहुत लाभ पहुंचाता है।

एकपाद पवन मुक्तासन

विधि—जमीन पर चित लेट जायें। बायें पैर को सीधा जमीन पर फैलाये रखें और दाहिने पैर को घुटने से मोड़कर उसे पेट और छाती पर दोनों हाथों से दबाकर रखें। फिर शिर को जमीन से ऊपर उठाकर घुटने से मुंह लगायें। पैर को आगे की ओर तना हुआ रखें। शरीर भी तना रहे। श्वास-प्रश्वास चालू रखें। आंखें चाहे बन्द रखें चाहे खुली रखें। पेट में चरबी अधिक मात्रा में होगी तो मुंह घुटने से लग नहीं पायेगा। ऐसे लोग श्वास को बाहर निकाल कर एकपाद पवनमुक्तासन का अभ्यास करें। पेट छोटा हो, तो श्वास को भरकर ही करें। पाँच बार श्वासोच्छ्वास चालू रखने तक अथवा केवल कुम्भक कर पैर को मुंह से लगाये रखें। तदुपरान्त श्वास को फेफड़ों में भरकर मुंह से लगे हुए पैर को भूमि पर सीधा फैला दें। फिर तुरन्त दोनों नासिका-छिद्रों से श्वास को बाहर निकालकर और बायें पैर को मोड़ कर पेट और छाती पर रखें और शिर को ऊपर उठाकर मुंह से पैर के घुटने का स्पर्श करें।

समय

४ दिन तक ४।४ बार। ५ से ७ दिन तक ५।५ बार। ८ से १० दिन तक ६।६ बार। तत्पश्चात् आयु, शक्ति और लाभके अनुसार ८।८ बार तक अभ्यास बढ़ाया जा सकता है।

लाभ

मेद (चरबी) कम करने के लिये यह आसन अतीव लाभकर है । इसके अभ्यास से पसलियाँ मजबूत बनती हैं । उदान वायु, व्यान वायु, अपान वायु, समान वायु और प्राण वायु अपने-अपने स्थान पर जब उचित रूप से काम नहीं करते; तब शरीर में दाह अंगों में थकावट शूल, शोथ, पसीने की अधिकता, सूर्छा, रोमांच, दुर्बलता, कफावरोध आदि अनेकों रोगों की उत्पत्ति हो जाती है । एकपाद पवनमुक्तासन की साधना से उपर्युक्त सभी रोग मिट जाते हैं और शरीर स्फूर्तिवान् बनता है ।

द्विपाद पवनमुक्तासन

विधि—जमीन पर चित लेट जायें फिर दोनों पैरों को घुटनों से मोड़कर पेट और छाती पर दोनों हाथों से दबाकर रखें । तदुपरान्त शिर को जमीन से उठाकर दोनों घुटनों के बीच मुंहको रखें । पैरों को मोड़ते समय यदि पेट बड़ा हो, तो श्वास को बाहर निकालकर और यदि पेट छोटा हो तो श्वास को अन्दर भरकर आसन का अभ्यास करें । घुटनों को पेट और छाती पर लाते समय ५ बार श्वास खींचना और छोड़ना चाहिये अथवा कुम्भक किये रहना चाहिये । ६ ठी बार में श्वास को फेफड़ों में भरकर पैरों को सीधा भूमि पर तान देना चाहिये । दोनों नासापुटों से श्वास को बाहर निकाल कर इस प्रकार करने से एक बार का अभ्यास पूरा होता है । आंखों को खुला भी रख सकते हैं और बन्द भी रख सकते हैं । हाई ब्लडप्रेसर के रोगियों को श्वास बाहर निकाल कर ही यह आसन करना चाहिये ।

समय

६ दिन तक ४ बार । ७ से ९ दिन तक ५ बार । १० से १५ दिन तक ७ बार । तदुपरान्त शक्ति, आयु और लाभ के अनुसार १० बार तक बढ़ायें ।

लाम

पक्काशय में कुपित हुआ अपान वायु जब ऊपर चढ़ जाता है; तब हृदय में पहुंचकर पीड़ा पहुंचाता है। शिर और कनपटियों को पीड़ा होती है। कभी-कभी यह शरीर को घनुष की तरह टेढ़ा भी कर देता है और शरीर कांपने लगता है। यह सब रोग इस आसन से मिट जायेंगे। हृदय के वायु का वेग निकल जाने पर रोगी स्वस्थ हो जाता है। पेट में चरबी की अधिकता होने से सोते समय पेट का दबाव वायु द्वारा हृदय में बढ़ जाता है, जिससे हृदयविकार उत्पन्न हो जाता है। शरीर, हृदय और फेफड़ों को कोई उत्तम प्रकार का व्यायाम न मिलने से हृदय और फेफड़े रोगग्रस्त हो जाते हैं। हृदय-विकार बढ़ जाने से बैठते, स्नान करते या चलते-फिरते प्राणोत्क्रमण अर्थात् मरणोन्मुख हो जाने की स्थिति आ पहुंचती है। इस आसन का अभ्यास करने से शनैः शनैः हृदय मजबूत होता जायेगा; फेफड़ों में नवीन शक्ति का संचार होगा और हार्टफेल (हृदय-विकार) का रोग पास आ न सकेगा। इतना ही नहीं; शरीर के अन्य अनेक वायुजन्य रोग मिट जाते हैं—जैसे कि अपान वायु के उचित परिमाण में न छूटने से पेड़ू में पीड़ा होना मल शुष्क हो जाने से मलबद्धता बढ़ जाना, पेशाब की गति में अचानक रुकावट वीर्यस्थल में दबाव पड़ने से वीर्य की कमजोरी और पतलापन आदि अनेक रोगोत्पादक लक्षण इस आसन के अभ्यास से समाप्त हो जाते हैं।

वीरासन

विधि—बायें पैर को घुटने से मोड़कर उसकी एड़ी को बायें कूल्हे के नीचे रखें। बंठने में पैर की उंगलियों का हो आधार रहे। पजे को ऊपर उठा रखें। बायें हाथ का बायें घुटने पर रखें। दाहिने पैर को मोड़कर बायें पैर के घुटने और जानुमूल के बीच स्थापित करें। दाहिने पैर का घुटना ऊपर की ओर रहे। दाहिने हाथ को दाहिने घुटने पर रखें। छाती को

फुलाकर रखें। कमर, पीठ तथा शिरोभाग को यथासम्भव समान रेखा में रखें। आंखें खुली रहें। श्वासोच्छ्वास चालू रहे। पेट को साधारण दबाकर रखें।

समय

८ दिन तक १ मिनट। ९ से १६ दिन तक २ मिनट। तदुपरान्त ४ मिनट तक बढ़ा सकते हैं। इसी प्रकार इस आसन को दूसरे ढंग से भी कर सकते हैं। दोनों ओर के लिये ऊपर का समय समान है।

इस आसन के व्यायाममूलक लाभ उठाने के लिये बायें और दाहिने हाथ-पैरों का वारवार परिवर्तन करते रहना चाहिये। इससे शरीर में थकावट जल्दी आ जाती है; पसीना छूटता है; शरीर हल्का एवं फुर्तीला प्रतीत होने लगता है। और भी अनेक लाभ होते हैं, जिनका विवरण लाभ में पढ़िये।

लाभ

यह आसन वीरों का आसन है। इसके अभ्यास से साधक में स्वभावतः वीरता, साहस, निर्भीकता, धीरता, दृढ़ता और गम्भीरता आदि गुणों का आविर्भाव होता है। जीवन में आशा, विश्वास, कार्य को सफल बनाने का दृढ़ संकल्प और विघ्नों के निवारण का नैतिक सामर्थ्य उत्पन्न होता है। मानसिक तथा शरीरिक शक्ति बढ़ जाती है और मनुष्य पुरुषार्थ-सम्पादन की ओर उत्साह के साथ प्रवृत्त होता है।

त्रिकोणासन

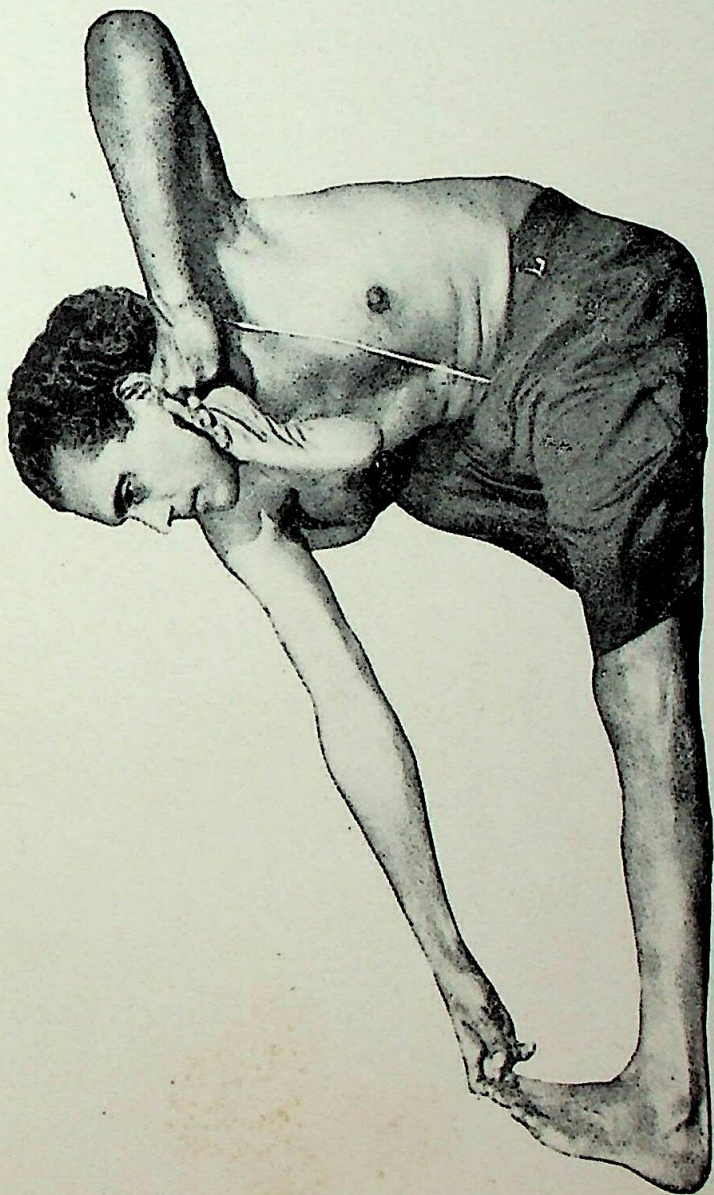
विधि—जमीन पर सीधे खड़े हो जायें। एक पैर को दूसरे पैर के कुछ अन्तर पर रखें। दाहिने पैर को घुटने में मोड़कर रखें और बायें पैर को सीधा रखें। कमर के ऊपर के भाग को दाहिने पैर की ओर झुका कर



Virasana
वीरासन



Trikonasana
त्रिकोणासन



Akarshan (Akarna) Dhanurasana
आकर्षण (आकर्ण) धनुर्गसन



Shavasana
शवासन

दाहिने हाथ से दाहिने पैर के अंगूठ को पकड़ रखें। बायें हाथ को ऊपर की ओर उठावें और बगल में ऊपर की ओर ताने रहें। श्वासोच्छ्वास चालू रखें। आंखें खुली रखें। समग्र शरीर को तना हुआ रखें। छाती को खोलकर सामने की ओर रखें। इसी प्रकार का अभ्यास-साधना दूसरे अंग से भी करनी चाहिये; तब इस आसन का अभ्यास सम्पूर्ण होता है।

समय

८ दिन तक १५।१५ सेकण्ड। ९ से १६ दिन तक ३०।३० सेकण्ड। १७ से २४ दिन तक ४५।४५ सेकण्ड। तदुपरान्त आयु, शक्ति और लाभ के अनुसार १।१ मिनट तक अभ्यास बढ़ायें।

लाभ

इस आसन से मूत्रावरोध की व्याधि मिट जाती है। मल का वेग रोकने से वायु प्रकुपित हो उठता है, फलतः पेट फूल जाता है। पेट में वात शूल हो जाता है और कभी-कभी अश्मरी (पथरी) रोग हो जाता है। मूत्र-कृच्छ्र का विकार भी कभी-कभी उत्पन्न हो जाता है। इस आसन के अभ्यास से इन व्याधियों का पूर्णतया प्रशमन हो जाता है। वातादि दोषों के प्रकोप से जब वीर्य में विकार उत्पन्न हो जाता है और वीर्य मूत्रमार्ग से बाहर निकलने लगता है, तब रोगी का मूत्र वीर्यसहित कष्ट से निकलता है और बीच में मूत्र में रुकावट आ जाती है। मूत्र का रंग भी बदल जाता है। मूत्रेन्द्रिय और शिश्नेन्द्रिय में पीड़ा होती है यह सब रोग-विकार इस आसन से मिट जाते हैं। इसके अतिरिक्त २० से २५ वर्ष तक की आयु के साधक की ऊँचाई भी इस आसन से बढ़ जाती है।

आकर्षण [आकर्ण] धनुरासन

पादांगुष्ठौ तु पाणिभ्यां गृहीत्वा ध्वणावधि।

धनुराकर्षणं कुर्याद्धनुरासनमुच्यते ॥ १ ॥

—हठयोग प्रदीपिका

अर्थ—एक पैर को फैलाये रखकर दूसरे पैर के अंगूठे को हाथ से पकड़ कर कान तक खींच ले जायें। यही क्रिया दूसरे पैर से भी करें। इसे आकर्षण या आकर्ण धनुरासन कहते हैं।

विधि—दोनों पैर सामने की ओर फैलाकर बैठ जायें। तत्पश्चात् दाहिने पैर को मोड़कर बायें पैर के ऊपरी भाग पर रखें और मुड़े हुए दाहिने पैर के अंगूठे को बायें हाथ से पकड़ लें तथा दाहिने हाथ से बायें पैर के अंगूठे को पकड़ लें। दोनों नासापुटों से श्वास फेफड़ों में भरकर दाहिने पैर को बायें कान तक खींच रखें। शिर को ऊपर उठाये रखें, वह नीचे आने न पाये। आंखों से सामने फैले हुए बायें पैर के अंगूठे को देखते रहें। श्वासो-च्छ्वास चालू रखें। पैर को यथाशक्ति कान के पास रोक रखने के पश्चात् श्वास को फेफड़ों में भरकर त्वरित गति से दोनों हाथों को छोड़ दें और दाहिने पैर को बायें पैर की बगल में फैलाकर जमीन पर रख दें। यही सब क्रिया—विधि इनके विपरीत अंगों से भी करें; तब इस आसन की साधना सम्पूर्ण होती है। सारे शरीर को तना हुआ रखें। छाती को फुलाकर रखें। पेट को दबाकर अन्दर की ओर खिंचा हुआ रखें। फैले हुए पैर को बिलकुल सीधा रखें मुड़े हुए हाथ को कन्वे की समरेखा में रखें।

समय

६ दिन तक २।२ बार। १० से १६ दिन तक ३।३ बार। तदुपरास्त शक्ति, आयु और लाभ के अनुसार १।५ बार तक अभ्यास बढ़ायें।

लाभ

सन्धियों का संकुचन और जकड़ जाना, वीर्य और रजका नाश, शिर, नाक, नेत्र और गले के नीचे की हड्डी तथा ग्रीवा के भीतर कुछ वेदना आदि विकार पूर्णतया मिट जाते हैं। रोमांच, सन्धियों में फटन की-सी पीड़ा, बिना परिश्रम के ही थकावट मालूम होना तथा हाथ, पैर, पार्श्व और वक्षः स्थल में पीड़ा आदि अनेक व्याधियों का उपसम इस आसन के अभ्यास

करते रहने से हो जाता है। हृदरोग, गुल्म, पेट में शूल, प्यास अधिक लगना, डकारें आना, खांसी, कन्ठ और मुख में शोष आदि अनेक रोगों का सदा के लिये निवारण हो जाता है। भोजन के पश्चात् पेट का फूल जाना, मल-मूत्र का त्याग करते समय कष्ट होना, त्वचा का रुक्ष हो जाना और उसमें सुई चुभने-जैसा भान होना, त्वचा का सिकुड़ जाना, भोजन में अरुचि रहना, स्त्रियों के गर्भाशय का विकार, स्नायुगत वायु आदि सर्वांग रोग का समूलोन्मूलन करने के लिये यह आसन सम्पूर्ण सफल प्रयोग है।

शवासन

उत्तानं शववद् भूमौ शयनं तु शवासनम् ।

शवासनंतु श्रमहर चित्तविश्रान्तिकारणम् ॥

घे. सं. २।१६

अर्थ—भूमि पर शवकी तरह शांत और उत्तान लेटने को शवासन कहा जाता है। इससे श्रम दूर होता है और चित्त को शान्ति मिलती है।

विधि—जमीन पर चित्त लेट जायें। सारा शरीर समरेखा में रहे। दोनों हाथ सीधे शरीर के साथ सटे रहें। शरीर शिथिल रहे। तनाव बिल्कुल न रहे। श्वास-प्रश्वास की गति सामान्य या स्वाभाविक रहे। जान-बूझकर हाथ-पैर की उंगलियों या अन्य किसी अवयव को हिलायें-डुलायें नहीं। जहां तक हो सके, अवयवों को शिथिल करने का प्रयत्न करें। मनको ईष्टदेव, गुरुजन अथवा हृदय या नाभिमण्डल में स्थिर करें।

समय

कम से कम ५ मिनट।

लाभ

शीर्षासन करने के बाद इस आसन को कम से कम ५ मिनट करना

अत्यावश्यक है। कारण यह है कि शीर्षासन से समय में पेर, कमर, पेट, हाथ, छाती, गला आदि से शिर की ओर जो रक्त-प्रवाह आ रहा था, उसे फिर नीचे की ओर ले आना पड़ेगा, शीर्षासन के पश्चात् खड़े रहने से चक्कर आना, मस्तिष्क की अस्थिरता आदि अनेक चिन्ह प्रकट होते हैं, जिससे शीर्षासन का लाभ साधक को उचित रूप से मिल नहीं पाता।

प्रगाढ़ निद्रा का लाभ

जिन लोगों को नींद नहीं आती, सारी रात जो बिछौने पर अगल-बगल करवटें बदलते रहते हैं; उनके लिये शवासन एक आश्वासन के समान है; अर्थात् उत्तम लाभदायक है। इसके अभ्यास काल में ध्यान रखने की बात यही है कि हाथ-पैर धोकर बिछौने पर कोई अनुकूल आसन लगाकर बैठ जायें और पास में अगरवत्ती, धूप आदि सुगन्धित द्रव्य जला रहें। दोनों नासावृटों से दीर्घ या लम्बा श्वास-प्रश्वास लेते रहें। मनको हृदय-कमल पर स्थिर करें। अपने गुरुदेव; इष्टदेव अथवा किसी महात्मा पुरुषका मन में ध्यान करें। इस प्रकार ३ मिनट तक ध्यान करते रहें। तदुपरान्त “मुझे गाढ़ी नींद आ रही है। पंचज्ञानेन्द्रियां निद्रा देवी के शुभागमन की प्रतीक्षा कर रही हैं। मैं सभी चिन्ताओं से पूर्णतया मुक्त हूँ। निद्रा देवी मस्तिष्क में प्रवेश करने के लिये कटिबद्ध खड़ी हैं। मैं उनका सहषं स्वागत करता हूँ।”—इस प्रकार की भावना ५१ बार मन ही मन दुहराते रहें। कदाचित् ऐसी भावना स्थिर न रहकर मन में चिन्ता, भय, क्रोध, ईर्ष्या आदि का प्रभाव बढ़ रहा हो तो तुरन्त ही अपने कानों को सुनाई दे, इतने उच्च स्वर से उक्त शब्दों का उच्चारण मुख से ५१ बार करें। तत्पश्चात् तुरन्त ही शवासन का अभ्यास प्रारम्भ करें। शवासन के विवरण में उल्लेख किये गये अनुसार जो विधि बतलाई गई है, तदनुसार काम करें और मनमें दुहराते रहें कि मुझे गहरी नींद आ रही है; अच्छी नींद आ रही है। इन्हीं भावनाओं को वारंवार दुहराते रहें और ध्यान रहें कि हाथ-पैर तनिक भी हिलने न पायें। इस प्रकार के दो-तीन दिनों के अभ्यास से ही गहरी निद्रा

आने लगेगी । श्वासन करते समय 'यह सामान्य अभ्यास है'—इस प्रकार की भावना होने पर ही महत्त्वपूर्ण लाभ अवश्य ही मालूम पड़ेंगे ।

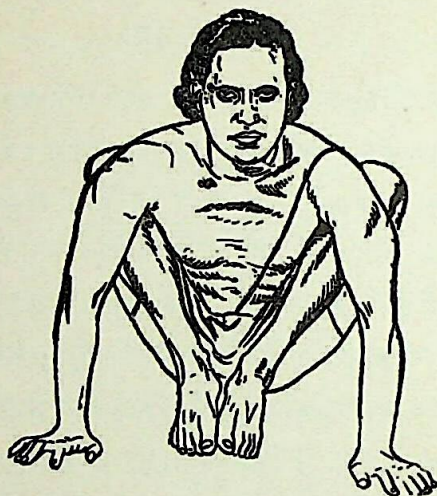
विशेष सूचना

कई वर्षों से और अनेक कारणों से यदि अनिन्द्रा का रोग पीछे लग गया हो तो शुद्ध सात्विक आहार ग्रहण करना पड़ेगा, रात का भोजन अल्प और सुपाच्य रखना पड़ेगा; जिससे पेट में भारीपन मालूम न हो और भोजन के पचाने में भी सरलता और सुविधा हो । दिन भर के व्यवहार में जहां तक हो सके; निरर्थक चिन्ता, क्रोध, ईर्ष्या, घृणा, झगड़ा आदि से बचते रहें । तमोगुण प्रधान आहार जैसे कि बीड़ी, सिगरेट; तम्बाकू, शराब चाय-काँफी, गांजा, भांग, अफीम आदि—से मुक्त रहें । श्वासन करते ही नाभिपर श्वेत स्वच्छ वस्त्र ठण्डे जल में भिगोकर १० से १५ मिनट तक रखें । शिर में और पैरों के तलुओं में बादाम का तेल, रामतीथं ब्राह्मी तेल, तिल का तेल, खोपरे का तेल, गाय का घी आदि वस्तुओं में जो भी अनुकूल हो, उसे ५ मिनट तक घिसकर सो जायें । इस प्रयोग से निस्सन्देह गाढ़ी निद्रा आनी चाहिये । शरीर को जैसे शुद्ध सात्विक आहार की आवश्यकता है, मन को जैसे विशुद्ध विचार आवश्यक हैं; उसी प्रकार प्रगाढ़ निद्रा का आना भी अत्यावश्यक है । कमसे कम ८ घण्टे तक निद्रा लेना बहुत जरूरी है ।

दिव्यामृत

मनुष्य जन्म सरलता से वारंवार नहीं मिलता । इसके लिये इह जीवन में बड़ी साधना तथा तपस्या करनी पड़ती है । वैसे तो पशु-पक्षी आदियों की जीवन प्रवृत्ति आहार, निद्रा, भय और मैथुन तक ही सीमित है, किन्तु मनुष्य केवल इसी सीमा के अन्दर सन्तोष मानकर कैसे बैठ सकता है ? मनुष्य को इससे आगे बढ़ना चाहिये और योगाभ्यास, भक्तियोग की साधना तथा वेदान्तादिका अध्ययन और मनन कर आत्मदर्शन की अनुभूति में मग्न रहना चाहिये । मानव जन्म को सफल बनाने का यही राजमार्ग है ।

—योगीराज श्री उमेशचन्द्रजी



श्रमसाध्य आसन

शीर्षासन

प्रथम प्रकार

विधि—शुद्ध खादी का वस्त्र जमीन पर बिछायें। वस्त्र इतना चौड़ा हो कि शिर और हाथ उसी कपड़े पर रहें। फिर दोनों पंजों को परस्पर फँसाकर बिछे हुए वस्त्र के ऊपर शिर के पिछले भाग में रखें। हाथों की

प्रथम खंड

१०६

कुहनियों को शिर के अगल-बगल स्थापित करें। कुहनियों का विस्तार अधिक न हो। शिर वस्त्र पर रहे और उसका पिछला भाग हथेलियों से जकड़ा रहे। तदुपरान्त घुटनों को ऊपर उठाकर छाती के पास ले जाने का प्रयास करें। बाद में हाथों तथा शिर के आधार पर पैरों को जमीन से ऊपर उठाये और घुटनों से उन्हें मोड़कर जानु के ऊपर स्थापित करें। यह शीर्षोसन का प्रथम (अपूर्ण) प्रकार है।

समय

५ दिन तक १ से ३ मिनट तक अभ्यास बढ़ायें और इस बात का पूरा ध्यान रखें कि आसनकाल में शरीर हिलने-डुलने न पाये।

आवश्यक सूचना—शीर्षोसन प्रारंभ करना हो तो किसी भी योग्य निर्देशक की देख-रेख और सहारे के साथ ही करें।

द्वितीय प्रकार

विधि—प्रथम प्रकार में बताई स्थिति पर पहुँच जाने के पश्चात् दोनों पैरों के घुटनों को मुड़ा रख कर जंघाओं के ऊपर ले जाना चाहिये और उन्हें समरेखा में सीधा रखना चाहिये।

समय

२ दिन तक २ मिनट। २ से ५ दिन तक ५ मिनट।

अन्तिम प्रकार

विधि—दूसरे अपूर्ण प्रकार में बताई गई स्थिति पर पहुँच जाने के पश्चात् दोनों पैरों को ऊपर ले जाकर सीधी रेखा में तान दें। पैरों को परस्पर सटाकर रखें। शिर, छाती, कमर, घुटने और पैरों के अंगूठे समरेखा में रखें। आंखों को खुला भी रख सकते हैं और बन्द भी रख सकते हैं। अधिक समय तक करना हो तो आंखें बन्द रखनी चाहियें, जिससे मन स्थिर

हो। शरीर का कोई अवयव हिले-डुले नहीं; इस बात का ध्यान रखें। श्वासोच्छ्वास चालू रखें। शरीर का सारा वजन सम-परिमाण में रहना आवश्यक है।

समय

३ दिन तक २ मिनट। ४ से ८ दिन तक ३ मिनट। ९ से १५ दिन तक ५ मिनट और तदुपरान्त दो से तीन महीने तक ५ से लेकर ३० मिनट (आधा घण्टा) अथवा इससे भी अधिक समय तक कर सकते हैं। कम से कम १० मिनट तक अभ्यास किया जाये तो लाभ मिल सकता है। जिनका शरीर अधिक चरबी और मांस से अधिक वजनदार होगा, उनको अधिक समय तक शीर्षासन करना प्रतिकूल मालूम होगा। फिर भी १० से २० मिनट तक करना अनिवार्य है। किसी कारण वश हो न सके तो अन्य आसनों के अभ्यास से शारीरिक वजन को घटाने के पश्चात् शीर्षासन का समय बढ़ायें। शीर्षासन के समय मुँह को बन्द रखें; केवल नाक के छिद्रों से श्वासोच्छ्वास चालू रखें। गले पर शरीर का अधिक वजन पड़ने न पाये शिर के मध्य-भाग से किंचित् अगले भाग को जमीन पर रखें।

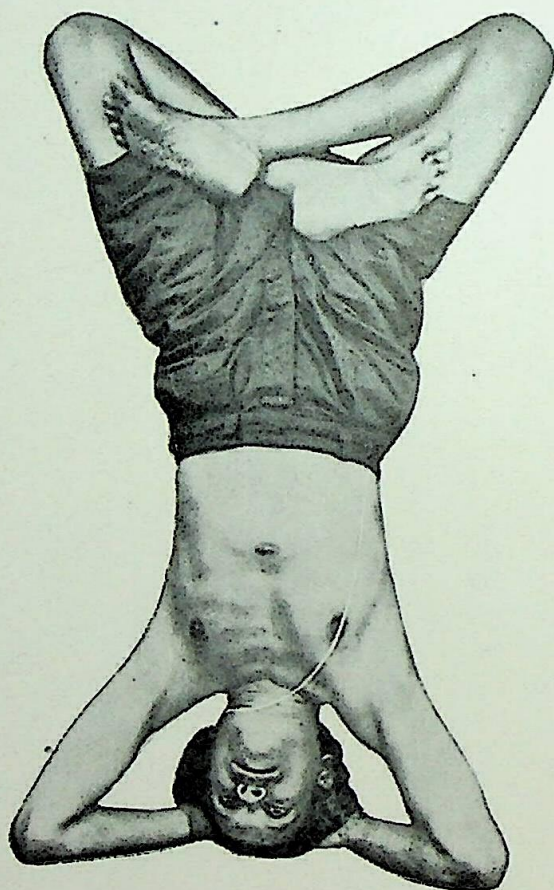
लाभ

शीर्षासन की निरन्तर साधना से आंखें अच्छी रहती हैं। नींद अच्छी आती है। शरीरका रक्त शुद्ध होता है। स्फूर्ति बढ़ती है। जीवन के दैनिक कार्यों में मन लगा रहता है। रक्तविकार से उत्पन्न अनेक रोग निर्मूल हो जाते हैं। गले की शक्ति बढ़ती है और शिर में जाने वाली वायुवाहिनी और रक्तवाहिनी नाड़ियां तथा मज्जातन्तु और ज्ञानतन्तु मजबूत होते हैं, जिससे मस्तिष्क को आवश्यक जीवनतत्त्व मिलते हैं। यही कारण है कि नाक, कान आदि अवयव भी पूर्ण नीरोग रहते हैं। एक घण्टे से अधिक समय तक करने पर नाभि के नीचे के भाग में अवस्थित कुण्डलिनी शक्ति के भी जाग उठने की संभावना है और समाधि की अवस्था पर पहुँच जाना भी सम्भव है। शरीर के सभी अवयव प्रफुल्ल रहते हैं। मन एकाग्र हो जाता है और उस



(First Stage)
प्रथम प्रकार

(Final Stage) Shirshasana
अंतिम प्रकार शीर्षासन

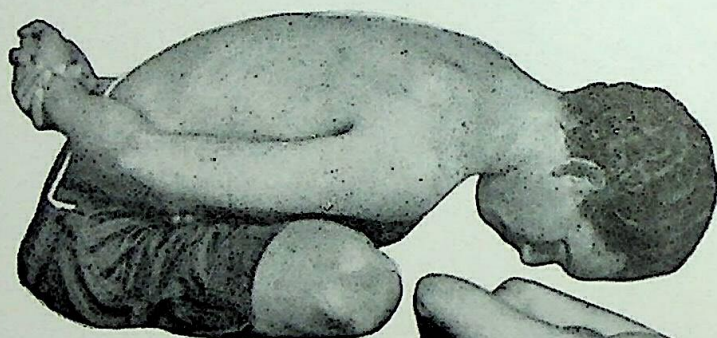


Padmasana In Sirshasana
पद्मासन शीर्षासन की अवस्थामें

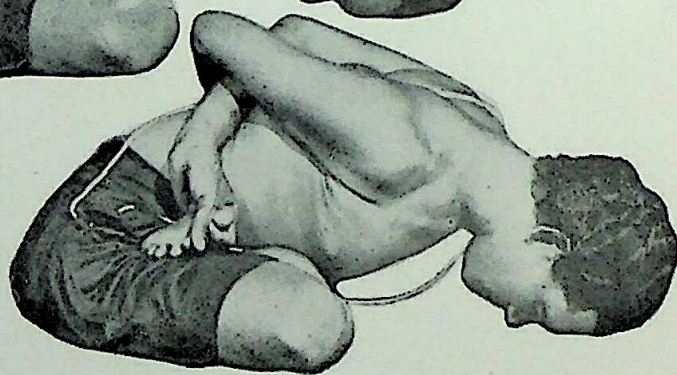


Padmasana
पद्मासन

Yoga Mudra
योग मुद्रा



Padmasana
पद्मासन



Baddha Padmasana
बद्ध पद्मासन

समय उच्च प्रकार के विचार करने से सुखपूर्वक शान्ति का अनुभव होता है। इतना ही नहीं; शीर्षासन और भी अनेकशः लाभ प्रदान करना है।

ध्यान रखने योग्य बातें

शीर्षासन के पश्चात् तुरन्त श्वासन करना चाहिये; खड़े रहना उचित नहीं। क्योंकि खड़े रहने से चक्कर आने और गिर जाने की सम्भावना रहती है। आंखों के सामने अन्धकार छा जाने का भी भय है। शरीर में कम्प हो सकता है तथा और भी अनेक प्रकार के लक्षण प्रकट होंगे, जिनसे हानि हो सकती है। इसलिये शीर्षासन के पश्चात् तुरन्त खड़े होना न चाहिये; बल्कि श्वासन करना चाहिये। श्वासन की साधना—विधि और उसके लाभों का वर्णन अल्प श्रमसाध्य आसनों के प्रकरण में किया गया है। शीर्षासन के समय पैरों के रक्त के शिर की तरफ आने के समय पैरों के तलुओं और ऊपरी भाग में चींटियां चढ़ने-जैसी स्थिति का अनुभव होगा, किन्तु इसमें चिन्ता का कोई कारण नहीं। इससे किसी प्रकार की हानि न होगी। श्वासन के समय यह आभास मिट जायेगा। शीर्षासन उस दशा में न करें, जबकि शरीर का रक्त गरम हो, अर्थात् शीर्षासन को सब आसनों से पहले कर लें।

शीर्षासन के अभ्यास के लिये प्रातःकाल का समय उत्तम है। अभ्यास काल में पेट खाली रहे। प्रातःकाल अवकाश न मिलने पर सायंकाल भी अभ्यास किया जा सकता है। भोजन के तीन घण्टे पश्चात् और दुग्धादि द्रव पदार्थ लेने के एक घण्टे से बाद शीर्षासन किया जा सकता है।

शीर्षासन---सम्बन्धी मेरे अनुभव

अपवाद रूप में यात्रा-काल में मैं शीर्षासन कर नहीं पाता हूँ। अन्य काल में प्रतिदिन १० मिनट से १ घण्टे तक शीर्षासन करता हूँ जिससे मैंने अनेक महत्वपूर्ण लाभ उठाये हैं। नींद गहरी आती है। स्मरण शक्ति तीव्र रहती है। स्फूर्ति अच्छी रहती है। शरीर और मन में उत्साह और उल्लास

भरा रहता है। गत ५० वर्ष के स्वानुभव और ४५ वर्ष के योगाश्रम के अन्य अभ्यासियों के अनुभव से यह निश्चित रूप से पता लगा है कि शीर्षासन से अनेक महत्वपूर्ण लाभ प्राप्त होते हैं।

एक विशेष व्याधिका शमन

आज से २७ वर्ष पूर्व की घटना है। स्नानागार (बाथरूम) में जल से पूर्णतया भरी हुई बाल्टी को एक स्थान से दूसरे स्थान पर हटाते समय मेरे (लेखक के) दाहिने पैर का अँगूठा उसके नीचे एक रगड़ के साथ दब गया। फलतः अँगूठा घायल हो गया; रक्तस्राव होने लगा और दो दिनों में पैर में घुटने तक सूजन आ गई। वेदना भी अत्यधिक होती रही। घरेलू आयुर्वेदिक जड़ी-बूटियों का इलाज चलता रहा; परन्तु सूजन नहीं उतरी और वेदना भी कम नहीं हुई। परीक्षा से पता चला कि अँगूठे में लोहे का विष व्याप्त हो गया है। मैं आहार में भी पथ्य का पूरा विचार रखता था। फिर भी सूजन घटी नहीं, यह भी भय हुआ कि शीर्षासन करने से सूजन और वेदना कहीं और भी अधिक बढ़ न जाये। इसलिये शीर्षासन नहीं किया। किन्तु जब ३-४ दिन तक सूजन नहीं मिटी, तब शीर्षासन का प्रयोग कर देखने की इच्छा हुई। पहले दिन ५ मिनट तक शीर्षासन किया; परन्तु कोई लाभ मालूम नहीं हुआ। दूसरे दिन ५ से १० मिनट तक किया; तब साधारण लाभ दिखाई दिया; अर्थात् सूजन बढ़ी नहीं और वेदना में भी वृद्धि नहीं हुई। तीसरे दिन २० मिनट तक शीर्षासन किया, फलतः सूजन और वेदना दोनों घटने लगे। तत्पश्चात् बढ़ाते-बढ़ाते ४५ मिनट से १ घण्टे तक प्रतिदिन अभ्यास चालू रखा; फलतः ८ दिन के पश्चात् सूजन और वेदना का दमन हो गया और पैर अच्छा होने लगा। १५ दिनों में पैर बिल्कुल अच्छा हो गया; अतएव मेरा विश्वास बढ़ गया कि शीर्षासन के अभ्यास से अनेकशः रोग मिटाये जा सकते हैं। शीर्षासन से सर्वांग को व्यायाम मिलना सम्भव नहीं; अन्य आसन भी इसके साथ करने पड़ते हैं। सूजन की स्थिति में मैं शीर्षासन के साथ अन्य आसन भी करता रहा, परन्तु उनका

लाभ गौण रहा । इस प्रकार के अनुभव शीर्षासन के महत्व को भली-भाँति प्रकट कर रहे हैं ।

शीर्षासन कौन नहीं कर सकते ?

हृदय विकार से पीड़ित, रक्त के दबाव के रोगी और तीसरी स्थिति पर पहुँचे हुए दमाश्वास के रोगी, दूसरी और तीसरी अवस्था के टी-बी (क्षय) के रोगी, तीसरी अवस्था पर पहुँचे हुये कैंसर के रोगी, तीसरी अवस्था पर गये हुए पान्डु और पीनस आदि नाक के रोगी, वेदना पीड़ित कर्णरोगी, अधिक शारीरिक अशक्ति वाले, पित्त प्रकृति से उत्पन्न शिरोवेदना से पीड़ित आंखों में जलन आदि कई रोगों के शिकार, गले के रोगी और वे लोग भी शीर्षासन न करें, जिनके शरीर में अत्यधिक चरबी है । अपवाद रूप में यदि कोई यह आसन करना चाहे तो एतदर्थ अनुभव सिद्ध साधक पुरुषों की सलाह सूचना लेना अनिवार्य होगा ।

विशेष सूचना—शीर्षासन के अम्यास से मृगी रोग, उन्माद रोग, बुद्धि में जड़ता, आंखों के अनेक रोग तथा बहुतेरे कर्ण रोग स्वाः मिट जाते हैं ।

शीर्षासन में व्यतिक्रम

विधि—इस आसन को करते समय हथेलियों को भूमि पर स्थापित कर कुहनियों तक के भाग को ऊपर उठाये रखें । कुहनियों और भुजाओं को कन्ध को सम रेखा में रखें । पैर ऊपर की ओर तने रहें ।

समय

८ दिन तक ३० सेकण्ड (आधा मिनट) । ९ से १६ दिन तक ४५ सेकण्ड (पौन मिनट) । १७ से २४ दिन तक १ मिनट । तत्पश्चात् शक्ति आयु और लाभ के अनुसार २ से ५ मिनट तक बढ़ायें ।

विशेष सूचना—इस शीर्षासन का अभ्यास सबके लिये आवश्यक नहीं है। जिन लोगों को अनुकूल हो, वे इसका अभ्यास कर सकते हैं। अन्तिम प्रकार के सभी लाभ इस आसन की साधना से मिलते हैं। इतना ही नहीं, यह आसन शरीर पर नियन्त्रण स्थापित करने में भी सहायक होता है। शिर के आन्तरिक भाग में अवस्थित ४२ सेन्टरों (केन्द्रों) को जितने परिमाण में पर्याप्त रूप में जिस प्रकार शक्तिवर्धक और विकासमय जीवन तत्व आवश्यक है; उसे उतने परिमाण में मिलता रहता है। इसका मुख्य कारण यही है कि गले के सभी छोटे-बड़े पुर्जे (अंग-प्रत्यंग) सशक्त बन जाते हैं।

शीर्षासनस्थ पद्मासन

विधि—प्रथम शीर्षासन के अनुसार अभ्यास चालू रखें। तदुपरान्त शीर्षासन किये हुए ही पैरों को पद्मासन की स्थिति में स्थापित करें। श्वास-प्रश्वास की अन्य विधियां शीर्षासन के समान ही हैं।

समय

१० दिन तक १ मिनट। ११ से २० दिन तक १२ मिनट। २१ से ३० दिन तक ४ मिनट। तदुपरान्त आयु, शक्ति और लाभ के अनुसार ८ मिनट तक बढ़ायें।

लाभ

पैरों के तलुओं के गुठे और उंगलियों के रोग पूर्णतया मिट जाते हैं।

पद्मासन

पद्मासन को कमलासन भी कहते हैं।

विधि दोनों पैरों की एड़ियों को नाभि के नीचले भाग में दबाये रखें।

दोनों हाथों को दोनों घुटनों पर रखें। मेरुदण्ड को सीधा रखें। आंखों को बन्द अथवा खुला भी रख सकते हैं। जिन स्त्री-पुरुषों का शरीर अधिक स्थूल हो, जिनकी जानुओं में विकृत स्थूलता हो और जिनके पैर पर पैर चढ़ना असम्भव हो, उन्हें ऐसी दशा में एक ही जानुपर पैर चढ़ाकर बैठना चाहिये और थोड़ी देर में दूसरी जंघा पर पैर रखने का अभ्यास करना चाहिये। इस प्रकार कुछ दिनों के अभ्यास के पश्चात् ऊपर बताये गये ढंग के अनुसार दोनों पैरों को जानुओं पर चढ़ाने का अभ्यास करना चाहिये। शरीर पतला होने पर भी जमीन पर बैठने की जिन लोगों की आदत न हो सदैव कुरसी, सोफा और पलंग पर बैठने के ही जो लोग अभ्यस्त हों, उनके भी पैर पद्मासन के समय सम्भवतः मुड़ेंगे नहीं। ऐसे लोगों को निराश न होना चाहिये। ऊपर बताई गई विधि के अनुसार निरन्तर अभ्यास करते रहने से अवश्य ही पद्मासन का अभ्यास हो जायेगा।

पद्मासन आवश्यक क्यों है ?

पद्मासन पर बैठते ही थोड़ी देर में सुषुम्ना नाड़ी गतिवान् हो उठती है—चलने लगती है। मन को शान्ति मिलती है। इतना ही नहीं, शरीर के जत्रयव सीधे रहते हैं और लोलामन, मत्स्यासन, पूर्ण पद्मासन, मयूरासन, तोलांगुलासन, उर्ध्व पद्मासन, शीर्षासन युक्त पद्मासन, उर्ध्वहस्त पद्मासन, कुक्कुटासन, गर्भासन आदि अनेक आसन इस आसन के साथ सम्बन्ध रखते हैं, अर्थात् एक पद्मासन के न करने से आप अनेक आसनों के लाभों से वंचित रह जायेंगे।

समय

पद्मासन का अभ्यास कम से कम आध घण्टे से अधिक समय तक ले जाना चाहिये।

सरल विधि — जिन साधकों को पद्मासन करने में असुविधा हो वे इस विधि का अनुसरण करें। पद्मासन प्रारम्भ करने वाले साधक को प्रथ-

मतः भूमि पर बिछे शुद्ध आसन पर बैठकर दोनों पैर सामने की ओर फैला लेने चाहिए फिर दाहिने पैर को घुटने से मोड़कर दाहिने हाथ से दाहिने पैर का पंजा और बायें हाथ से एड़ी पकड़ कर बायीं जांघ पर स्थित करें। फिर इसी प्रकार बायें पैर को घुटने से मोड़कर बायें हाथ से बायें पैर का पंजा और दाहिने हाथ से एड़ी पकड़ कर दाहिनी जांघ पर स्थापित करें।

लाभ

पद्मासन के अभ्यास से सिद्धासन के सभी लाभ तो प्राप्त होते ही हैं; साथ ही अन्य अनेकशः लाभ मिलते हैं। जैसे कि नाभि के अगल-बगल या कन्धस्थान में सूर्य और चन्द्र नाड़ी का जो स्थान है; उस पर पैरों की एड़ियों का दबाव पड़ता है। इस दबाव से सूर्य और चन्द्र नाड़ी का वायु-प्रवाह बन्द हो जाता है और सुषुम्ना नाड़ी चलने लगती है। सुषुम्ना नाड़ी के चालू होने से प्राणायाम के समय में मन सात्विक भावों में प्रविष्ट हो जाता है और कुम्भक का समय बढ़ जाता है। प्राणायाम के प्रभाव से शरीर और मेरुदण्ड अनायास ही सीधे और खिचे हुए रहते हैं। त्राटक के समय, पूजा-पाठ के समय, श्रवण, मनन और निदिध्यासन के समय, व्याख्यान के समय तथा भोजन के समय में पद्मासन पर बैठ सकते हैं।

स्थूल शरीर वाले स्त्री-पुरुषों का कर्तव्य

जिन स्त्री-पुरुषों का शरीर अधिक स्थूल है, उनकी जानु अधिक मोटी होने से सम्भवतः पद्मासन पर बैठते समय उनके पैरों में रक्ताभिसरण कम हो और फलस्वरूप पैर के दबे हुए स्थान पर शून्यता का और चींटियों के रेंगने जैसा भान होगा। कुछ लोगों के घुटनों में कुछ वेदना होने की भी सम्भावना है। परन्तु अभ्यास के उत्तरोत्तर बढ़ते जाने पर उपर्युक्त प्रतिक्रियायें धीरे-धीरे दूर हो जायेंगी और पैरों की अधिक स्थूलता भी कम होकर उनमें स्फूर्ति का संचार होगा।

पूर्णपद्मासन (बद्धपद्मासन या योगमुद्रा)

प्रथम प्रकार

विधि—पद्मासन पर बैठकर दोनों हाथों को पीठ की ओर ले जाय और बायें हाथ से दाहिने हाथ की कलाई पकड़ कर कमर के पिछले भाग पर स्थापित करें। यदि पेट बड़ा और चरबी से भरा हुआ हो तो दोनों नासा-पुटों से श्वास को बाहर निकाल कर (रेचक करके) और यदि पेट छोटा हो तो श्वास को अन्दर खींचकर (पूरक करके) शिर को सामने भूमि पर रखना चाहिये। श्वास को यथासम्भव चालू रखना चाहिये। तदनन्तर श्वास को अन्दर भरकर; अर्थात् पूरक करके शिर को जमीन से ऊपर उठा लें और पूर्ववत् सीधे बैठ जायें। आंखें बन्द भी रख सकते हैं और खुली भी रख सकते हैं। जो लोग आंखों की ज्योति बढ़ाने की इच्छा रखते हैं, उन्हें चाहिये कि वे शिर को भूमि पर रखने के बाद आंखों की पुतलियों को दाहिने और बायें तथा ऊपर और नीचे घुमाते रहें।

समय

३ दिन तक ४ बार। ४ से ७ दिन तक ६ बार। ८ से १२ दिन तक ८ बार।

द्वितीय प्रकार

विधि—पद्मासन पर बैठकर दोनों हाथों को पीछे की ओर ले जाकर बायें हाथ से बायें पैर के अंगूठे को और दाहिने हाथ से दाहिने पैर के अंगूठे को पकड़ कर बैठें और श्वासोच्छ्वास चालू रखें।

समय

३ दिन तक १ मिनट। ४ से ६ दिन तक दो मिनट। ७ से ९ दिन तक ३ मिनट। तदुपरान्त समय, प्रकृति और लाभ से अनुसार कम से कम

३ से ५ मिनट तक करना चाहिये ।

तृतीय प्रकार

विधि—दूसरे प्रकार में बताये गये अनुसार बद्ध पद्मासन पर बैठने के उपरान्त पेट बड़ा हो तो श्वास बाहर निकालकर और यदि पेट छोटा हो तो श्वास अन्दर भरकर शिर को दाहिने घुटने के पास जमीन पर रखें । जब तक श्वास को अनायास या आमानी से रोका जा सके; तब तक रोका रखें । तत्पश्चात् उसी अवस्था में ५ बार श्वास-प्रश्वास जारी रखें । उस समय शिर को भूमि पर ही रखे रहें । तत्पश्चात् श्वास को फेफड़ों में भरकर अथवा बाहर निकालकर पूर्ववत् सीधे बैठ जायें ।

चतुर्थ प्रकार

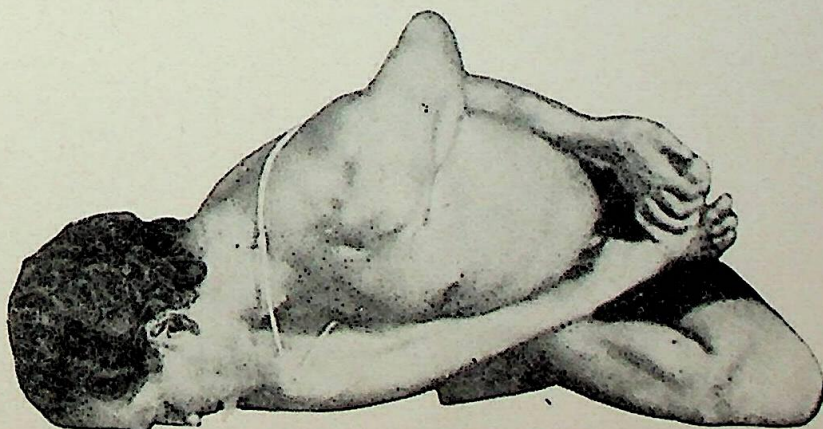
विधि—पूर्ण पद्मासन के प्रथम प्रकार में बताये अनुसार बैठकर पश्चात् श्वास को फेफड़ों में भरें अथवा निकाल दें । तदनन्तर शिर को बायें घुटने के पास रखें और ५ बार श्वासाच्छ्वास लेने तक शिर को भूमि पर ही स्थित रखें । ६ बार में श्वास को बाहर निकाल कर अथवा अन्दर भरकर प्रथम प्रकार की स्थिति में पुनः सीधे बैठ जायें ।

समय

तृतीय और चतुर्थ प्रकार का समय एक ही माना जायेगा; अर्थात् एक बार शिर को दाहिनी ओर रखें और दूसरी बार बाईं ओर रखें । इस प्रकार बारी-बारी से दाहिनी और बाईं-दोनों ओर करना चाहिये । ४ दिन तक ६ बार । ५ से ७ दिन तक ८ बार । ८ से १० तक दिन तक १० बार तदनन्तर समय, शक्ति और लाभ के अनुसार १० से १२ बार तक बढ़ा सकते हैं ।

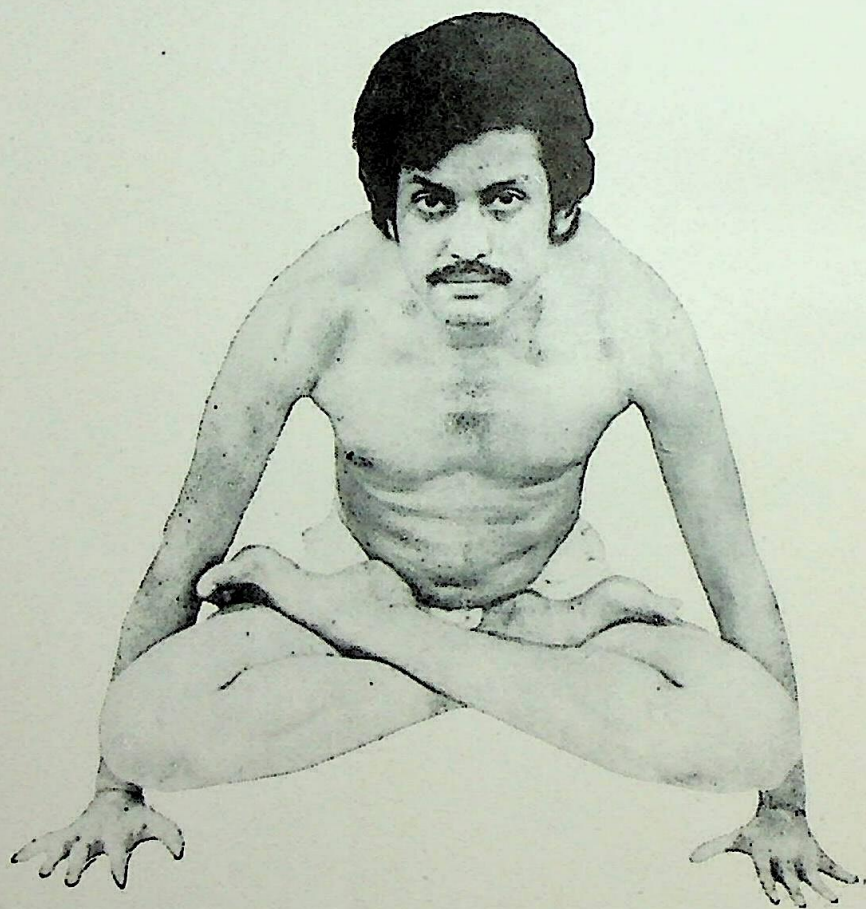
पंचम प्रकार

विधि—द्वितीय प्रकार में बताए अनुसार पद्मासन पर बैठने के उप-

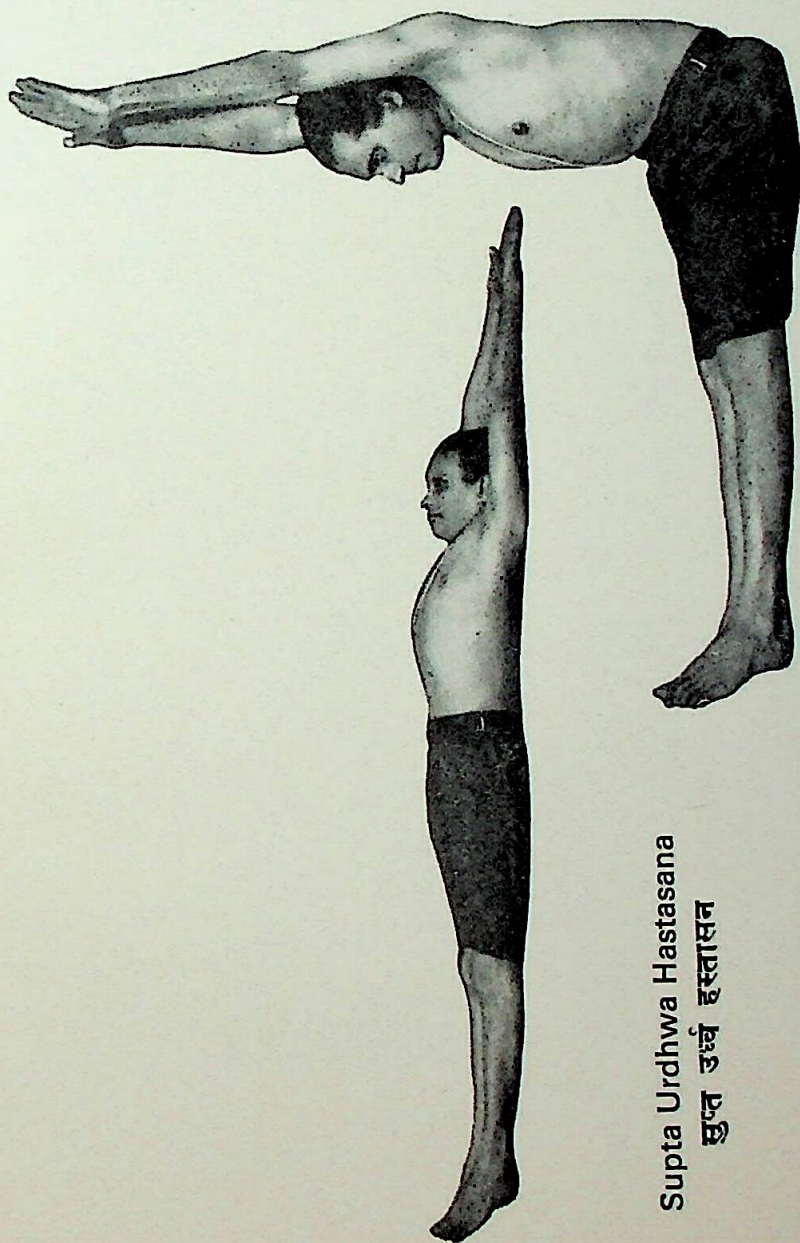


Baddha Padmasana

बद्ध पद्मसन

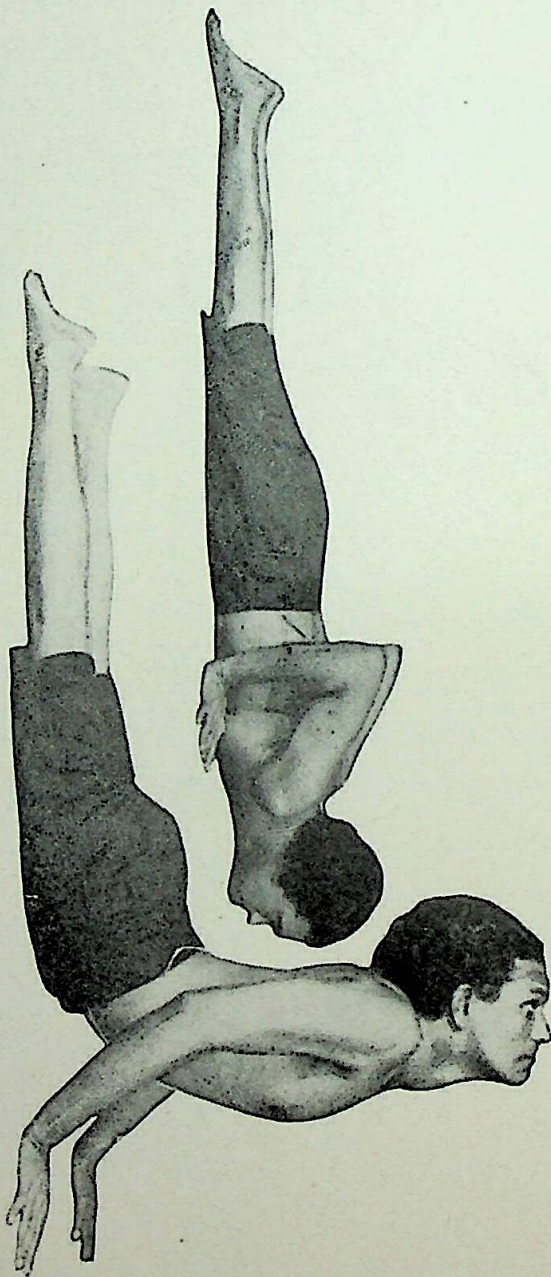


Lolasana
लोलासन



Supta Urdhwa Hastasana
सुप्त उर्ध्व हस्तासन

Bhujangāsana
भुजंगासन



रान्त श्वास अन्दर खींचें अथवा बाहर निकाल दें। शिर को पेट के सामने जमीन से टिका दें। यदि हो सके तो छाती को भा भू-स्पर्श कराने का प्रयास करें। इसी अवस्था में श्वासोच्छ्वास को ५ बार अन्दर खींचें और बाहर निकाल दें। तत्पश्चात् श्वास को अन्दर खींचकर या बाहर निकाल कर प्रथम प्रकार की स्थिति पर पुनः बैठ जायें।

समय

३ दिन तक ३ बार। ४ दिन से ५ दिन तक ६ बार। तदुपरान्त समय, शक्ति और लाभ के अनुसार ८ बार तक बढ़ायें।

विशेष सूचना

शिर को भूमि से टिकाने या स्पर्श कराने के पश्चात् श्वासोच्छ्वास की गति को अधिक तेज न रखें। जहां तक हो सके, दीर्घ अर्थात् लम्बा श्वास लेने का प्रयत्न करते रहें। उस समय छाती का भाग तना हुआ रहे; गले का भाग खिंचा हुआ रहे और कन्धों के भागों पर दबाव पड़ता रहे। शरीर को ऐसी स्थिति में रखना चाहिये कि जिससे स्नायुओं पर तनाव का प्रभाव पड़े। पैरों की उंगलियों से हाथों की उंगलियों को पकड़ रखें। आंखें बन्द रखें अथवा खुली रखें। जिन लोगों का मन स्थिर नहीं है; उनके लिये आंखें बन्द रखना ही हितकर होगा। यदि आंखों की ज्योति बढ़ानी हो तो पूर्ण पद्मासन में बताये अनुसार अभ्यास करें। मलद्वार, कन्ध-स्थान, नाभिस्थान आदि अवयवों को पीछे की ओर खींच रखें। जिन स्त्री-पुरुषों को हाई ब्लडप्रेसर (रक्त का मस्तिष्क की ओर अधिक दबाव) का विकार है; उन्हें चाहिये कि वे श्वास को बाहर निकाल कर उपर्युक्त बद्ध पद्मासन के सभी 'प्रकारों' का अभ्यास करें। जिन लोगों को लो-ब्लडप्रेसर अर्थात् नीचे की ओर रक्त का दबाव है, उन लोगों को श्वास फेफड़ों में भरकर बद्धपद्मासन की साधना करनी चाहिये। सभी स्त्री-पुरुषों के लिये आसन सुगम और लाभकर है। सभी लोग इसे निरापद रूप से

भली भाँति कर सकते हैं। जिन लोगों को अण्डकोश का रोग हो अर्थात् आन्त्र वृद्धि (हार्निया) के रोग से पीड़ित हों, वे श्वास को बाहर निकालकर इस आसन का अभ्यास करें। मूलव्याधि (रक्तार्श) के रोगी भी श्वास को बाहर निकालकर हं। यह आसन करें और इसके लाभों को पाकर कृतार्थ हों।

लाभ

इस आसन के अभ्यास से पेट की चरबी कम होती है। हाथ-पैरों के स्नायु बलवान् बनते हैं। सूत्रपिण्ड और वीर्याशय में मजबूती आती है। पथरी और आन्त्रपुच्छ के रोग मिट जाते हैं। कानों के आन्तरिक भाग (पर्दे) सशक्त और सुदृढ़ होते हैं और अनेकशः कर्ण रोगों से मुक्ति दिलाने में यह आसन सहायक होता है। मृगी वायुविकार, ज्ञानतन्तु और क्रिया तन्तुओं की निर्बलता, गिर की ओर रक्ताभिसरण के अभाव से उत्पन्न अनेकशः रोग आदि अनेक रोग दूर होते हैं। समग्र शरीर में सप्तधातु अच्छी तरह हलचल करने में तत्पर हो जाते हैं। नाड़ियाँ शुद्ध हो जाती हैं। प्रारम्भिक क्षय (टी. बी.) दमा (अस्थमा) शिरोवेदना और भगन्दर रोग के निवारण में यह पद्मासन सहायभूत होगा। बहिर्नों को मासिक घर्म के समय में या उससे पहले कन्धस्थान में जो वेदना होती है; वह न होगी। भूख अच्छी खुलकर लगेगी। अपान वायु की व्याधि मिट जायगी तथा अन्य अनेक लाभ इस आसन से प्राप्त होते हैं।

षष्ठ प्रकार

विधि—बद्धपद्मासन का यह छठा प्रकार ५वें प्रकार की तरह सम्पूर्ण है। समय और लाभ भी दोनों के एक ही है। अन्तर केवल इतना है कि ५वें प्रकार में शिर को भूमि से लगाया जाता है ६ठे प्रकार में छाती और ठुड़ी से जमीन का स्पर्श किया जाता है। यह कोई अनिवार्य शर्त नहीं है कि ५वें और ६ठे-दोनों प्रकार करने ही पड़ेंगे। यदि ५वाँ प्रकार करें तो ६ठे

प्रकार को न करें और यदि दृष्टा प्रकार करें तो पूर्वा प्रकार न करें। दृष्टा प्रकार पर्याप्त कठिन है। सभी लोग इसका अभ्यास भली भाँति कर भी नहीं सकते।

लोलासन

प्रथम प्रकार

विधि-पद्मासन लगाकर बैठ जायें। दोनों हाथों को कमर के अगल-बगल रखें। दोनों नासा-पुटों से श्वास फेफड़ों में भरकर हाथों के आधार पर समग्र शरीर को ऊपर उठावें। आंखें खुली रखें। शरीर के ऊपर उठाने के पश्चात् श्वास को ५ बार खींचें और छोड़ें। तदनन्तर श्वास को फेफड़ों में भरकर शरीर को शनैः शनैः जमीन पर ले जायें और बैठ जाने के उपरान्त श्वास को बाहर निकाल दें। शरीर को जमीन से ऊपर उठाने के पश्चात् सारे शरीर को तना हुआ रखें। छाती उभरी हुई रखें। पेट को अन्दर की ओर संकुचित करें। मलद्वार को भी संकुचित करें। शिर को यथासम्भव ऊपर उठावें। इस समय शरीर को स्थिर रखने का पूरा प्रयास करें। अशक्ति और वायु विकार आदि कारणों से हाथ-पैर कांपने लगें अथवा शरीर हिलने लगे तो थोड़ी ही देर में जमीन पर बैठ जाना चाहिये। शरीर को ऊपर उठाते समय कूल्हों और घुटनों को समरेखा से उठाना चाहिये। यदि शरीर को ऊपर उठाकर हाथों की कुहनियों के बराबर तक ले जाया जा सके तो अधिक लाभ होगा।

द्वितीय प्रकार

विधि—लोलासन प्रथम प्रकार में बताये अनुसार करने के पश्चात् शरीर के उठे हुए भाग को झूले की तरह झुलायें अर्थात् पैरों और कमर के भाग को जो जमीन पर रखे हुए हाथों की कुहनियों की सतह तक उठा हुआ है। आगे तथा पीछे की ओर झूले की तरह ले जायें। इस आसन

के अभ्यास को पूरा कर लेने के पश्चात् जब जमीन पर बैठ जाने का समय आये तब शरीर को भलीभाँति स्थिर करके बैठ जायें। इस आसन को दोलासन भी कहा जाता है।

समय

८ दिन तक ३ बार। ९ से १२ दिन तक ४ बार। १३ से १६ दिन तक ५ बार। तत्पश्चात् आयु, शक्ति और लाभ के अनुसार ७ बार तक बढ़ा सकते हैं। इतना ही नहीं; ५ से १० बार तक श्वास को खींचने और छोड़ने तक शरीर को ऊपर स्थिर रखा जा सकता है। इस आसन को सभी स्त्री-पुरुष कर सकते हैं। हाई ब्लडप्रेसर और छाती के रोग वाले इस आसन को न करें।

लाभ

इस आसन के अभ्यास से उँगलियों, हाथों और कन्धों की शक्ति बढ़ जाती है। डकार और हिचकी के रोगियों को यह आसन अवश्य करना चाहिये इससे उन्हें निस्सन्देह बहुत लाभ होगा। अपान वायु से उत्पन्न हो जाने वाला मलावरोध (कब्ज), पेट का फूल जाना; पेट में गुड़गुड़ाहट होना; कभी-कभी पेट में दर्द पैदा हो जाना; अतिसार, धातुक्षय आदि रोगों को मिटाने में यह आसन सहायभूत होता है। मुँह में स्वाद-हीनता मालूम होना, जँभाई आना, अंगों का टूटना, थकावट, आलस्य और प्रमाद का अनुभव होना, तृषा (प्यास) कम लगना, देह में रोमांच होना आदि विकारों को मिटाने के लिये यह आसन एक सफल प्रयोग है।

तृतीय प्रकार

विधि-लोलासन प्रथम प्रकार में बताये अनुसार करने के पश्चात् दोनों पैरों को दोनों हाथों की कुहनियों के ऊपरी भाग पर रखें। छाती के भाग को आगे की ओर कुछ झुकाकर रखें आँखें खूली रखें। शरीर के

किसी भी अवयव को हिलने न दें। श्वासोच्छ्वास चालू रखें। नीचे उतरने से पहले ही श्वास को फेफड़ों में भर लें। इस समय उतावली या जल्दबाजी न करें। कन्धों और हाथों में अच्छी शक्ति आ जाने पर ही आसन का अभ्यास सुचारु रूप से होता है और लाभ भी मिलता है।

सुप्त उर्ध्वहस्तासन

विधि—जमीन पर श्वासन की तरह चित लेट जायें। तदुपरान्त दोनों हाथों को शिर के दोनों ओर पीछे की ओर जमीन पर फैला दें हथेलियों का तलभाग ऊपर की ओर रहे और बायें हाथ का अंगूठा दाहिने हाथ के अंगूठे और तर्जनी के मूल के बीच दबा रहे। उँगलियों सहित पैर के पंजे आगे की ओर खिंचे रहें। तदनन्तर दोनों नासिका-छिद्रों से श्वास को अन्दर खींचकर दोनों हाथों को, शिर को तथा पीठ के भाग को एक साथ ऊपर उठायें और जमीन से नितम्ब चिटकाकर कमर के ऊपर के भाग को सीधा सम-रेखा में रखकर बैठ जायें और तुरन्त ही झुककर एवं धीरे-धीरे आगे बढ़कर दोनों पैरों के अंगूठों को दोनों हाथों की उँगलियों से पकड़ लें—जैसा कि विशेष श्रमसाध्य आसनो के अन्तर्गत निर्दिष्ट पश्चिमीत्तानासन में बताया गया है। इसके बाद तुरन्त ही श्वास को बाहर निकालकर पुनः श्वास अन्दर भर लें और हाथों को पूर्ववत् ऊपर उठाकर भूमि पर लेट जायें। इस प्रकार उर्ध्वहस्त सुप्तासन पूरा होता है। लेटने के पश्चात् पुनः श्वास को छोड़ दें। उठते समय और लेटते समय शिर के साथ ही हाथों को रखें।

इस आसन के अन्य सुलभ प्रकार

इस आसन को सभी स्त्री पुरुष कर सकते हैं। इस आसन के और भी कई प्रकार हैं। जिन लोगों को उपर्युक्त प्रकार का अभ्यास कठिन मालूम हो, उन्हें चाहिये कि वे हाथों की उँगलियों को भिड़ाकर शिर के नीचे रखें और उन्हीं के बल से—उन्हीं की सहायता से शिर को ऊपर उठाने का प्रयास

करें। तदुपरान्त शिर को घुटनों से लगाते समय श्वास को बाहर निकाल देना चाहिये। फिर तुरन्त ही श्वास अन्दर खींचकर पूर्ववत् लेट जायें। इस आसन की अभ्यास—क्रिया के आरम्भ से अन्त तक शिर को हाथों से जकड़ा रखना चाहिये। उपर्युक्त आसन के सभी प्रकारों की साधना करते समय सम्भव है दोनों पैर भी ऊपर उठ जायें; किन्तु पैर उठने न पायें। पैरों को जमीन के साथ दृढ़तापूर्वक सटाये रखें। जिनका शरीर मेद से अधिक भरा हुआ और जड़ हो, वे भी इस आसन का अभ्यास आसानी के साथ कर सकते हैं।

समय

३ दिन तक ३ बार। ४ से ६ दिन तक ४ बार। ६ से १२ दिन तक ५ बार। तत्पश्चात् आयु, शक्ति और लाभ के अनुसार १२ बार तक बढ़ा सकते हैं। स्त्री-पुरुष सभी यह आसन कर सकते हैं।

लाभ

मेरुदंड दृढ़ बनता है। बढ़ा हुआ पेट का भाग अपने वास्तविक आकार में आ जायगा। कमर को पतली रखने के लिए यह आसन वरदान है।

भुजंगासन

अंगुष्ठनाभिपर्यन्तमधो भूमौ विनियसेत्

करतलाभ्यां धरां धृत्वा उर्ध्वं शीर्षं फणीव हि।

—घेरंडसंहिता २.४१

प्रथम प्रकार

विधि—जमीन पर पेट के बल सीधे लेट जायें। पैरों की उँगलियों को जमीन पर पीछे की ओर खिंचा रखें। दोनों हाथों को छाती के अगल-बगल दृढ़ स्थापित करें। ठुड़ी से जमीन का स्पर्श करें। शरीर खिंचा हुआ रखें; शिथिल (ढीला) न रखें।

द्वितीय प्रकार

विधि—भुजंगासन प्रथम प्रकार में बताये गये अनुसार लेट जाने के पश्चात् श्वास को फेफड़ों में भरकर प्रथम प्रकार के निर्देशानुसार हाथों के आधार पर पहले ठुड्डी, तत्पश्चात् शनैः शनैः छाती और पेट (नाभि) तक के भाग को ऊपर उठाकर रखें । यथाशक्ति कुम्भक करके अर्थात् श्वास को रोककर शरीर को ऊपर उठायें और ऊपर उठाने के पश्चात् श्वासोच्छ्वास चालू रखें । किसी कारणवश यदि श्वास को रोक रखने की शक्ति न हो तो ५ बार श्वास को खींचें और छोड़ें । ६ ठी बार छाती में श्वास भर कर नीचे जमीन पर शनैः शनैः आ जायें और श्वास को बाहर निकाल दें । पेट के भाग को जमीन से उठाते समय पैरों के फैल जाने की सम्भावना है । अतः जहां तक सम्भव हो, दोनों पैरों को परस्पर मिलाये रखने का प्रयास करें ।

समय

५ दिन तक ४ बार । ६ से ११ दिन तक ६ बार । १२ से २१ दिन तक ८ बार । तत्पश्चात् आयु, शक्ति और लाभ के अनुसार १२ बार तक बढ़ायें ।

विशेष रूप से ध्यान रखने योग्य बातें

द्वितीय प्रकार के भुजंगासन का अभ्यास करते समय शिर के भाग को पीठ की ओर ले जाने का प्रयास निरन्तर जारी रखें और सर्प के शिर की तरह अपने शिर को पीछे की ओर खिंचा रखकर दाहिने-बायें हिलाते रहें । आंखों की दृष्टि खुली रखें । मुंह बन्द रखें । इसी तरीके को सम्पूर्ण भुजंगासन कहते हैं ।

लाभ

भुजंगासन के अभ्यास से कण्ठनली साफ होती है और उसमें शक्ति

आती है। मस्तिष्क की शक्ति और आंखों की ज्योति बढ़ती है। बाहुबल में भी वृद्धि होती है। हाथों के स्नायु सुदृढ़ होते हैं। पसलियों की पीड़ा मिटती है। पीठ की रीढ़ अर्थात् मेरुदण्ड में लचीलापन आकर उसका वातविकार दूर होता है। कमर के दर्द से सदा के लिये पीछा छूट जाता है। गले की सूजन मिटती है और गले के स्नायु मजबूत होते हैं। स्मरणशक्ति बढ़ाने के लिये जैसे शीर्षासन लाभदायक है, उसी तरह यह आसन भी परम हितकर है। इसका कारण यह है कि स्मरणशक्ति बढ़ाने वाले आवश्यक जीवनसत्व ले जाने वाले जो मार्ग (रक्तवाहिनी नाड़ी, वायुवाहिनी नाड़ी, मज्जातन्तु, क्रियातन्तु आदि) हैं; उन मार्गों को सशक्त बना लेना अनिवार्य है। इन अवयवों का सुव्यवस्थित विकास इस अभ्यास-काल में सतत होता जाता है। गम्भवती स्त्रियां प्राथमिक ४ मास तक इस आसन को कर सकती हैं, तदुपरान्त उनके लिये यह आसन वर्जित है। मूर्छा रोग के लिये भी यह आसन अतीव हितकर है और उन्माद रोगियों को भी अच्छा लाभ पहुंचाता है। गण्डमाला, कण्ठमाला, गुल्म रोग, आरम्भ का बहिरापन और आरम्भिक कर्णस्राव, कर्णकण्डू, कर्णपाक और कर्णशोथ आदि अनेकों व्याधियों से छुटकारा मिलता है। गले के स्वर में सुधार होता है और आरम्भ का विद्रधि रोग दूर होता है। तालु का पाक आदि मुख के बहुतेरे रोग इस आसन से नष्ट होते हैं।

एकपाद शलभासन

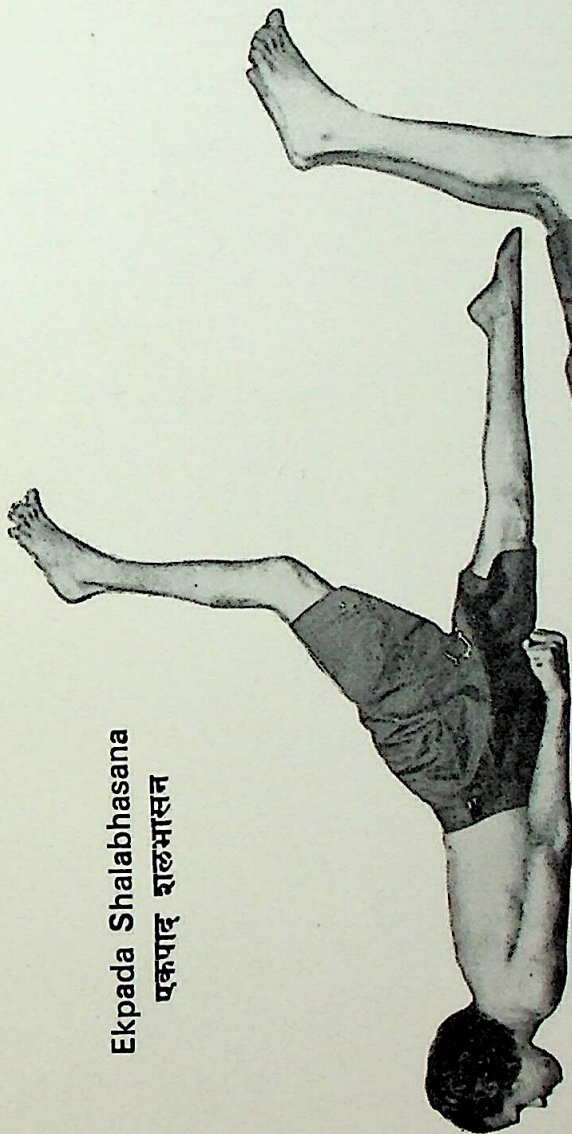
अधास्य शेते करयुग्मवक्षं भूमिमवष्टभ्य करयोस्तलाभ्याम् ।

पादो च शून्ये च वितास्ति चोर्ध्वं वदन्ति पीठं शलभं मुनीन्द्राः ॥

—धेरडसंहिता २.३८

विधि-पेट के बल जमीन पर लेट जायें। दोनों हाथों को शरीर के अगल-बगल कमर के पास स्थापित करें। हाथों की मुठ्ठियाँ बँधी रहें। ठुड़ी भूमि का स्पर्श करती रहे। पैरों की उँगलियों को जमीन पर सीधा रखें। तदुप-

Ekpada Shalabhasana
एकपाद शलभासन

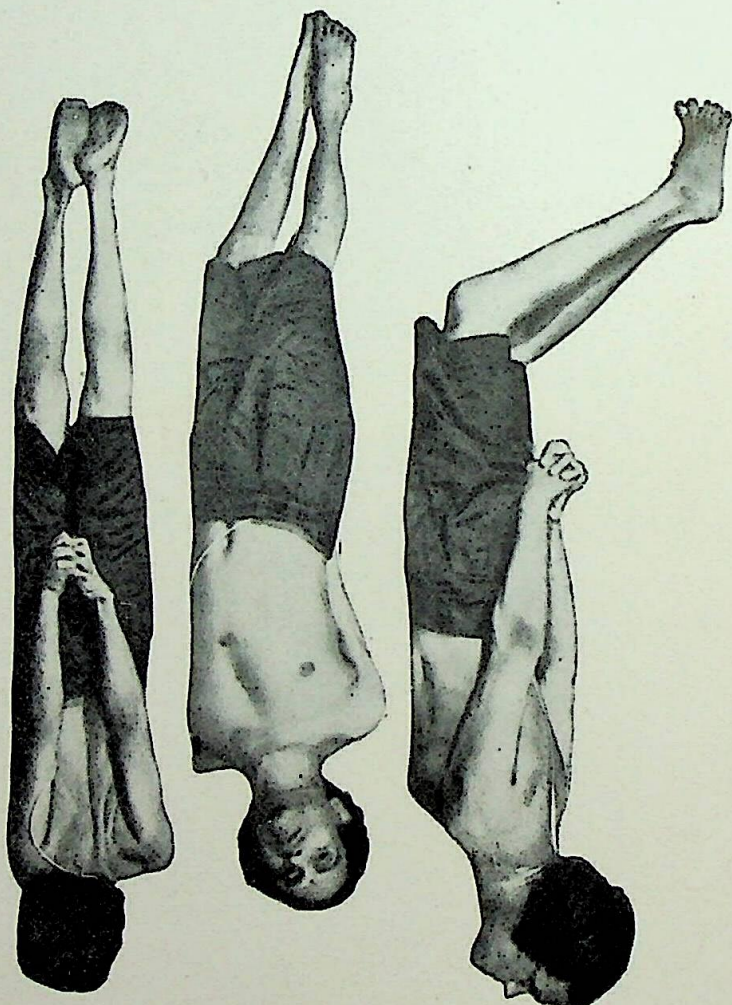


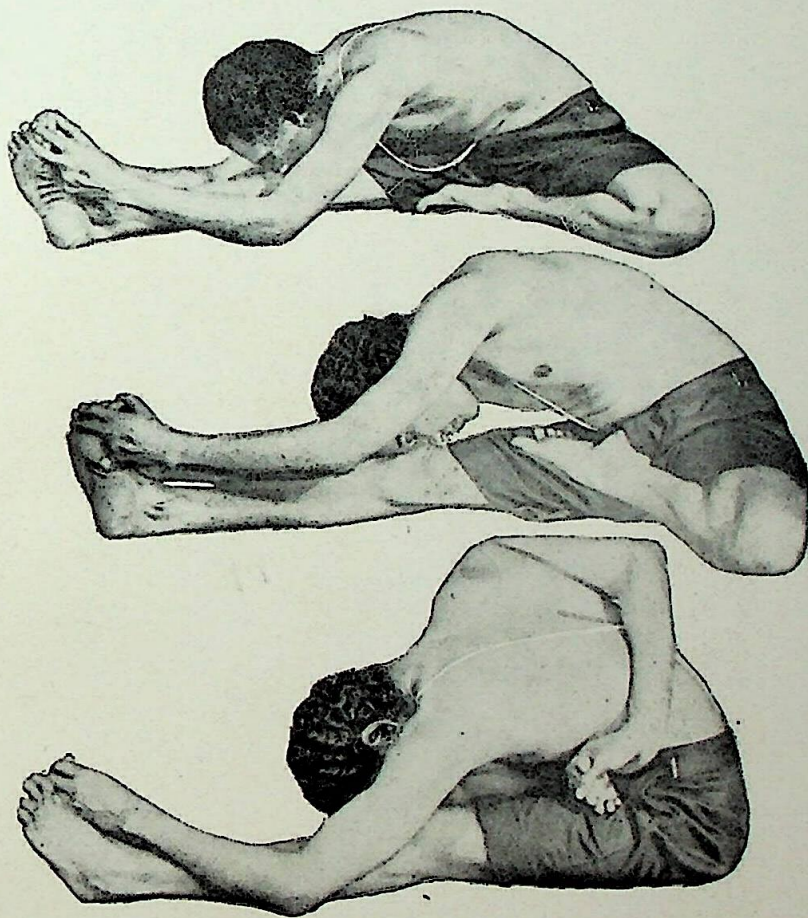
Dwipada Shalabhasana
द्विपाद शलभासन



[136]

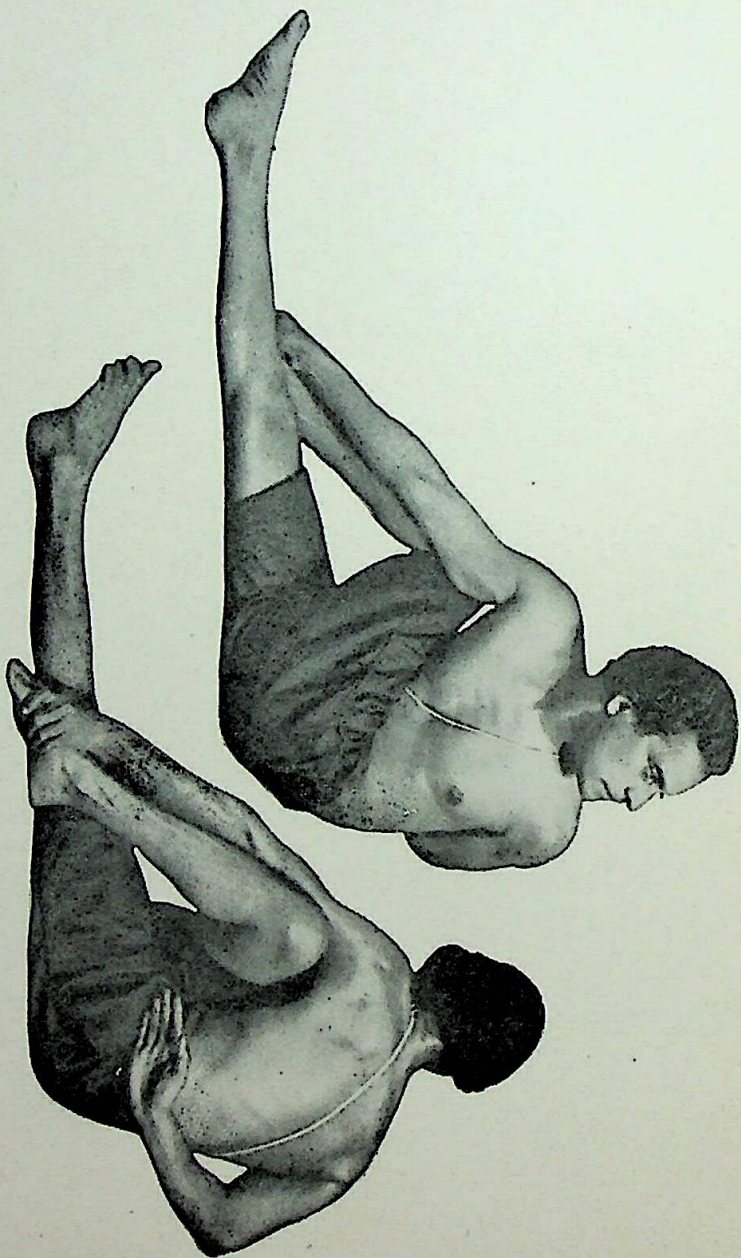
Naukasana
नौकासन





Janushirasana
जानुशिरासन

[138]



अर्ध मत्स्येन्द्रासन
Ardha Matsyendrasana

रान्त दोनों नासपुटों में श्वास फंफड़ों में भरकर दाहिने पैर को जमीन से ऊपर उठाये। सरलता के साथ पैर जितना ऊपर उठ सके, उतना ही उसे ऊपर ले जायें। दाहिने हाथ के बल पर ही दाहिने पैर को उचित सतह तक उठाना चाहिये। पैर को जमीन से ऊपर उठाये रखने की स्थिति में ही ५ बार श्वास को खींचकर फेफड़ों में भरें और निकाल दें। ६ ठी बार में श्वास को अन्दर भर कर पैर को भूमि के पास शनैः शनैः ले आये और उसे जमीन पर रख दें। तदुपरान्त तुरन्त ही बायें हाथ के जोर पर बायें पैर को ऊपर उठाये और दाहिने पैर के समान ही श्वासोच्छ्वास की क्रिया करें। आंखें बंद भी रख सकते हैं और खुली भी रख सकते हैं। गरीर को साधारण खिचाव की स्थिति में ही रखना चाहिये। पैर को जमीन से उठाने और स्थिर रखने के समय में ध्यान रखें कि वह कमर की सम रेखा में रहे। पैर को बिल्कुल हिलना नहीं चाहिये, स्थिर रहना चाहिये और घुटने से मुड़ना भी नहीं चाहिये।

समय

४ दिन तक ३ बार। (एक-एक पैर का तीन बार)। ५ से ८ दिन तक ४ बार। ९ से १२ दिन तक ५ बार। १३ से १६ दिन तक ६ बार। तत्पश्चात् आयु, बल और लाभ के अनुसार ८ बार तक बढ़ायें।

लाभ

जानु, नितम्ब, कमर और पेट में अधिक परिमाण में भरी हुई चरबी कम हो जाती है। बवासीर (अर्श) का रोग दूर होता है। अण्ड कोश की नाड़ियां मजबूत होती हैं। पैरों के तलुवों का दर्द मिट जाता है। आन्त्रपुच्छ (एपेण्डिसाइटिस) का रोग दूर होता है। पेट का शूल मिटता है। समान वायु, अपान वायु के विकार से छुटकारा मिलता है। प्राणवायु की गति अच्छी रहती है। घटनों का दर्द भी दूर होता है।

द्विपाद शलभासन

विधि—एकपाद शलभासन में बताये अनुसार जमीन पर लेट जायें। श्वास को दोनों नासाछिद्रों में भरकर दोनों पैरों को हाथों के आधार पर जमीन से उठावें। पैर को ऊपर स्थिर रखने की स्थिति में कम से कम ३ बार और अधिक से अधिक ५ बार श्वास को खींचें और बाहर निकालें। तदनन्तर श्वास को फेफड़ों में भरकर पैरों को शनैः शनैः भूमि पर लाकर रख दें। आंखें बन्द भी रख सकते हैं और खुली भी रख सकते हैं। इस आसन को करते समय पैरों को सीधा रखने का प्रयास करें; घुटने से मुड़ने न दें। इस आसन को करते समय ठुड़ी भी जमीन को छूती रहे। आसन-अभ्यास के आरम्भ—काल में कई दिन तक जमीन से पैर बहुत कम परिमाण में ऊपर उठ सकेंगे। कमर में साधारण पीड़ा का भी अनुभव होगा। इसका कारण यह है कि शरीर में जड़ता की अधिकता है; पीठ की रीढ़ अर्थात् मेरुदण्ड में त्रुटियां हैं। मेरुदण्ड में लाघव (लचीलापन) नहीं है और उसमें कठोरता की अधिकता है। वीर्यदोष, हाथ-पैरों के सांधों में निर्बलता आदि इस आसन के अभ्यास में बाधक हैं। परन्तु इस आसन का अभ्यास निरन्तर जारी रखने से महीने-डेढ़ महीने में ही उपर्युक्त समग्र बाधक लक्षण शनैः शनैः मिट जायेंगे। किसी भी आसन का अभ्यास करते समय कुछ वेदना, कुछ कष्ट और कुछ कठिनाइयों का होना स्वाभाविक है। इसका अर्थ यह समझना चाहिये कि उस में रोग के निवारण की क्षमता अधिक है और शरीर को शाश्वत सामर्थ्य प्रदान करने की क्षमता भी इस आसन में विद्यमान है।

समय

४ दिन तक दो बार। ५ से ८ दिन तक ४ बार। ९ से १५ दिन तक ५ बार। १६ से २२ दिन तक ७ बार। तत्पश्चात् यथाशक्ति आयु और लाभ के अनुसार ८ बार तक बढ़ा सकते हैं।

लाभ

पैरों की सूजन मिटती है। गले में नवीन शक्ति का संचार होता है। वातज, पित्तज और कफज गुल्म रोग नष्ट होता है। मूत्रकृच्छ्र, मधुप्रमेह, मूत्राघात और बस्तिकुण्डल आदि रोग मिट जाते हैं। महिलाओं के रजो-दर्शन-काल में कन्धस्थान में जो वेदना होती है वह इस आसन के अभ्यास से मिट जाती है। फुफ्फुस (फेफड़े) के रोग दूर होते हैं। जलोदर रोग सदा के लिये समाप्त हो जाता है। आरम्भिक भगन्दर रोग पर इस आसन का शुभ प्रभाव होता है।

नौकासन

प्रथम प्रकार

विधि-पेट के बल जमीन पर लेट जायें। दोनों हाथों को कमर पर मुठ्ठी बांध कर रखें। दोनों नासा-पुटों से श्वास फेफड़ों में भर लें। तत्पश्चात् शिर और छाती के भाग को जमीन से ऊपर उठा लें और शरीर के अग्न्य भागों को इस प्रकार ऊपर की ओर तान कर रखें कि जिससे शरीर का समग्र भार पेट पर ही पड़े। लहरों के ऊपर नाव जैसे इधर-उधर डोलायमान होती है उसी प्रकार एक बाजू से दूसरे बाजू लुढ़कना चाहिए। खासकर जो लोग अधिक मोटे हैं चरबी अधिक है उन्हें अवश्य ही इस आसन से चरबी घटाने के लिए दोनों ओर लुढ़कना चाहिए।

द्वितीय प्रकार

विधि-प्रथम प्रकार में बताये अनुसार करने के पश्चात् तुरन्त ही दोनों हाथों को पीठ पर बांधने के बदले सिर की सीध में ले जाकर नौका के आकार में आ जाना चाहिए। जितना समय इस स्थिति में रह सकें रहें। फिर प्रथम स्थिति में आजायें। उस समय पैर, छाती, पेट, शिर

आदि अंग भूमि को बिलकुल छूने न पाये। केवल घुटनों से लेकर भुजा तक का ही भाग भूमि का स्पर्श करें।

तृतीय प्रकार

विधि—द्वितीय प्रकार में निर्दिष्ट स्थिति पर पहुंचने के पश्चात् तुरन्त ही पेट के आधार पर अर्थात् पैर, छाती और शिर के भाग को जमीन से लगाये बिना समस्त शरीर को दाहिनी ओर ले जायें। इन तीनों चित्रों के अनुसार तीन विभिन्न स्थितियों में नौकासन का अभ्यास माना जाता है और यही लाभप्रद भी है।

विशेष सूचना

इस आसन के अभ्यास के समय श्वास को फेफड़ों में भर लेना चाहिये और यदि ऐसा सम्भव न हो तो श्वास को बाहर निकाल सकते हैं। हाथों को कमर के अगल-बगल न रखकर उठाकर शिर के अगल-बगल तान कर रखना चाहिये। उस समय हाथ ऊपर की ओर तने रहें। अगल-बगल घूमते समय जिस ओर घूमते हैं, उस ओर के हाथ की कुहनी तक हाथ स्पर्श कर सकता है। श्वास को जब तक रोका जा सके; तब तक रोक रखकर चालू रख सकते हैं।

समय

६ दिन तक १ मिनट। ७ से १२ दिन तक १½ मिनट। १३ से २० दिन तक २ मिनट। तदुपरान्त आयु, शक्ति और लाभ के अनुसार ३ मिनट तक लगातार करते रहना पड़गा; ऐसा कोई खास नियम नहीं है, बीच में विश्राम लेकर पुनः यह आसन किया जा सकता है।

लाभ

भूख खुलकर लगती है। अपान वायु के विकार मिट जाते हैं।

हिचकी और डकार के रोगियों के लिये भी यह आसन हितकर है । यदि नाभिचक्र अपने स्थान से हट गया होगा तो वह भी इस आसन की साधना से यथास्थान स्थित हो जायेगा । निरर्थक बँधा हुआ अपान वायु छूटने लगता है । पित्ताशय-कोश कलेजा, यकृत, छोटी आंत, बड़ी आंत आदि की विकृतियाँ दूर होती हैं । दमा, कफ और शरदी के रोगियों के लिये यह आसन हितकर है । भगन्दर के रोगी भी इस आसन से आराम का अनुभव करते हैं । छाती पर इसका अच्छा प्रभाव पड़ता है । पेट की अधिक चरबी कम हो जाती है । इस आसन का धर्म स्थानों में भी उपयोग किया जाता है; अर्थात् शारीरिक बीमारी या कष्ट आ पड़ने पर श्रद्धासम्पन्न धर्मावलम्बी स्त्री-पुरुषों को किसी मन्दिर के महन्त का ओर से आदेश मिलता है कि हे भक्तप्रवर ! अपना कष्ट दूर करने के लिये केवल चड्डी पहन कर और हाथों को शिर के ऊपर की ओर रखकर मन्दिर के चारों ओर १ से ५ बार अथवा अधिक बार तक प्रदक्षिणा करो । उस समय भक्तराज को वे सभी क्रियायें करनी पड़ती हैं, जो इस आसन में बताई गई हैं । अन्तर केवल इतना ही है कि भक्त को गेंद के समान चारों ओर घूमना नहीं पड़ता, परंतु शरीर के अगले भाग और अगल-बगल के स्थान को घुमाना पड़ता है । यदि कमरे में स्थान अधिक हो तो शरीर को गोलाकार घुमा सकते हैं । मन्दिर का यह अनुष्ठान भी शरीर को सशक्त बनाने, मन निरोध और आत्म कल्याण के लिये बताया गया है । बताने के ढंग और तरीके अलग-अलग हैं । वायु रोगियों के लिये यह आसन आशीर्वाद के समान है ।

जानु-शिरासन

प्रथम प्रकार

विधि—सीधे बैठ जाने के पश्चात् बायें पैर को घुटने से मोड़कर उसकी एड़ी को सिवनी स्थान (अण्डकोष के नीचे के भाग) में लगा रखें । पैर के तलुवे को दाहिने पैर की जानु से लगा दें और हो सके तो एड़ी को सिवनी

में लगा दें। दाहिने पैर को सामने की ओर फैला रखकर उसके अँगूठे को दोनों हाथों की मध्यमा, तर्जनी और अँगूठे से पकड़ लें। तदनन्तर मस्तक (ललाट) को घुटने से लगा दें। घुटने से ललाट को लगाते समय घुटना जमीन से उठने न पाये और बायें पैर का घुटना भी जमीन से उठने न पाये और न टेढ़ा होने पाये। श्वासोच्छ्वास चालू रखें। आँखें बन्द रखें अथवा खुली रखें। इस अभ्यास के पूर्ण हो जाने पर दाहिने पैर को घुटने से मोड़कर सिवनी-स्थान (अण्डकोश के नीचे के भाग) पर स्थापित करें और बायें पैर को सामने की ओर फैलाकर उसके अँगूठे को दोनों हाथों की मध्यमा, तर्जनी और अँगूठे से पकड़ लें। शेष क्रिया दाहिने पैर के अनुसार ही करें।

द्वितीय प्रकार

विधि—बायें पैर को घुटने से मोड़कर जानु के ऊपर के भाग पर रखें। दाहिने पैर को सामने फैलाकर दोनों हाथों की उँगलियों से अँगूठे को पकड़ रखें। शिर को दाहिने पैर के घुटने से लगायें। श्वासोच्छ्वास चालू रखें। आँखें बन्द भी रख सकते हैं और खुली भी रख सकते हैं। तत्पश्चात् जो पैर मुड़ा हुआ है, उसको सीधा सामने की ओर फैला दें और जो पैर फैला हुआ है, उसको मोड़कर बायें पैर की जानु पर रखें। शेष क्रिया ऊपर की विधि के समान है।

तृतीय प्रकार

विधि—बायें पैर को सामने की ओर फैला दें। फिर दाहिने पैर के घुटने को मोड़कर जानुमूल और कन्धस्थान पर रखें। बायें हाथ की उँगलियों से फैले हुए बायें पैर के अँगूठे को पकड़ लें (और दाहिने हाथ को पीठ की ओर ले जाकर दाहिने पैर के अँगूठे को पकड़ लें)। तदनन्तर ललाट को बायें पैर के घुटने से स्पर्श करें। श्वास-प्रश्वास चालू रखें। आँखें खुली रखें अथवा बन्द रखें। इस अभ्यास के बाद जो पैर मुड़ा हुआ है, उसे सीधा

फला दें और फैले हुए पैर को मोड़कर जानु पर रखें। शेष क्रिया ऊपर के समान है।

विशेष सूचना

जिन स्त्रो-पुरुषों का पेट चरबी से भरा हुआ हो अथवा कमर झुकती न हो, पैर के सांघे भी अधिक जड़ (कठोर) हों उन लोगों का शिर घुटनों के पास पहुंच न सकेगा। कदाचित् थोड़ा बहुत शिर नीचे झुक जाने पर पैर के घुटनों का भाग उठ जाता हो, जिससे लोग इस आसन को कड़िन समझकर इसके अभ्यास को छोड़ बैठते हैं। इतना ही नहीं; ५।६ दिन तक कमर और पैरों के सांघों में कुछ अंशों में वेदना होने की सम्भावना रहती है। इससे भी लोग इसे छोड़ भागते हैं। ऐसे लोगों के लिये अति अनुकूल हो और वेदना भी कम से कम हो एवं अभ्यास काल में निराशा की भावना उत्पन्न न हो, नित्य-प्रति कुछ न कुछ प्रगति के पथपर आगे बढ़ने का लक्षण प्रतीत हो, ऐसा अभ्यास निम्नलिखित रूप में है।

बायें पैर को मोड़ कर उसकी एड़ी को सिवनी-स्थान पर लगा दें। एड़ी से घुटने तक का भाग जमीन पर रखा रहे। तत्पश्चात् दाहिने पैर को ऊपर की ओर मोड़कर रखें। एड़ी और जानु के मूल भाग में लगभग एक फीट का अन्तर रहे। तदुपरान्त दाहिने हाथ की तर्जनी और मध्यमा उंगलियों से दाहिने पैर के अंगूठे को पकड़कर पैर को यथासम्भव आगे फैलाने का प्रयास करें। जहां तक पैर पहुंच सके वहाँ तक लेजाकर वहाँ कुछ देर तक स्थापित रखें। फिर उसी पैर को संकुचित करें आगे बढ़ाते जायें। इस प्रकार का अभ्यास बारंबार करते रहने से सांघे, कमर और पैर के सांघे, ढीले और नरम होते जायेंगे और शिर भी घुटने के पास अनायास पहुंचने लगेगा। यही अभ्यास पैरों को बारी-बारी से बदल-बदल कर करते रहें। सर्वसामान्य रूप से व्यवहार युक्त जानुशिरासन का जो प्रथम प्रकार बताया गया है; वही सर्वत्र सिखाया जाता है, किया और कराया जाता है। दूसरे और तीसरे प्रकार के जो जानुशिरासन हैं, उनका अभ्यास श्रमसाध्य होने

के कारण वह न तो कहीं किये जाते हैं और न सिखाये ही जाते हैं। साधक लोग नीचे लिखे अनुसार समय को पहले प्रकार के जानुशिरासन के समान ही समझें।

समय

४ दिन तक २ मिनट। ४ से १० दिन तक ३ मिनट। १० से २० दिन तक ४ मिनट। २० दिन के पश्चात् यथाशक्ति लाभ और आयु के अनुसार ६ मिनट तक बढ़ायें। यह समय दोनों पैरों का अलग-अलग समझना चाहिये।

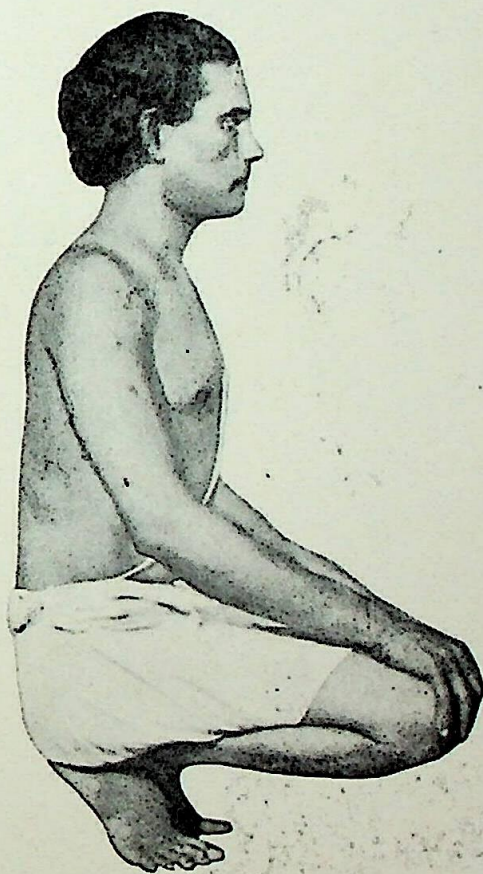
लाभ

वीर्य के अनेकशः रोग-जैसे कि वीर्य का पतलापन, पेशाब के साथ वीर्य का जाना, पसीने के साथ वीर्य का जाना, स्वप्नावस्था में वीर्य-स्खलन, वीर्य-दौर्बल्य के कारण शिश्नेन्द्रीय का अकारण अकड़ जाना, अण्डकोश की दुर्बलता आदि अनेकशः व्याधियां पूर्णतः निर्मूल हो जाती हैं। यकृत मज्जबूत बनता है। पसलियां मज्जबूत बनती हैं और वीर्यकोश तथा मूत्राशय में दृढ़ता और शक्ति आती है। पथरी के रोगियों के लिये भी यह आसन अतीव हितकर है। अतिसार (मरोड़) पाण्डु रोग और कृमिरोग इस आसन से मिट जाते हैं। दन्तरोगी इस आसन को करते समय नीचे-ऊपर के दांतों को जकड़कर रखें, जिससे दांत के मूलों में मज्जबूती आती है। शिगगत वायु, मज्जा-अस्थिगत वायु और पक्षावात के रोगियों को भी यह आसन लाभ पहुंचायेगा। इस जानुशिरासन के जो अन्य दूसरे और तीसरे प्रकार बताये गये हैं, उनके करने से अनेक लाभ मिलते हैं। इससे स्त्रियों के गर्भाशय का रोग पूरी तरह से दूर हो सकता है। गला सूख जाना, अति तृषा आदि विकारों का पूर्ण रूप से प्रशमन हो जाता है।

अर्धमत्स्येन्द्रासन

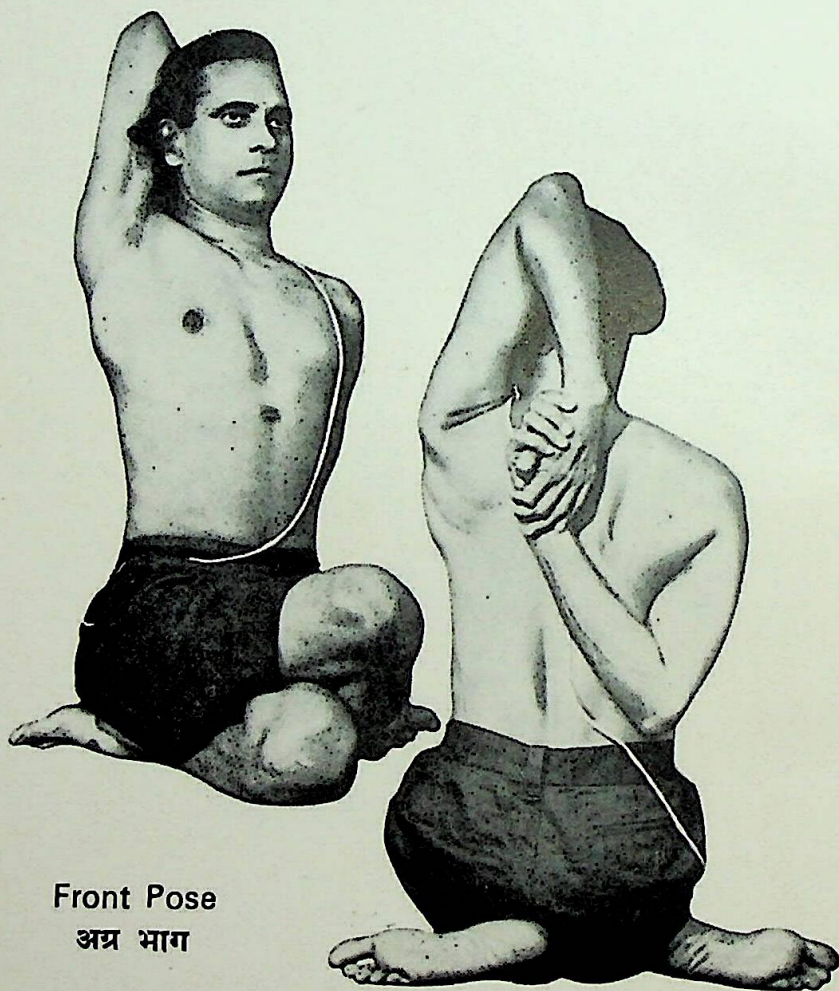
प्रथम प्रकार

विधि—दाहिने पैर को सीधा सामने की ओर फैलाकर बैठ जायें। बाय



Utkatasana

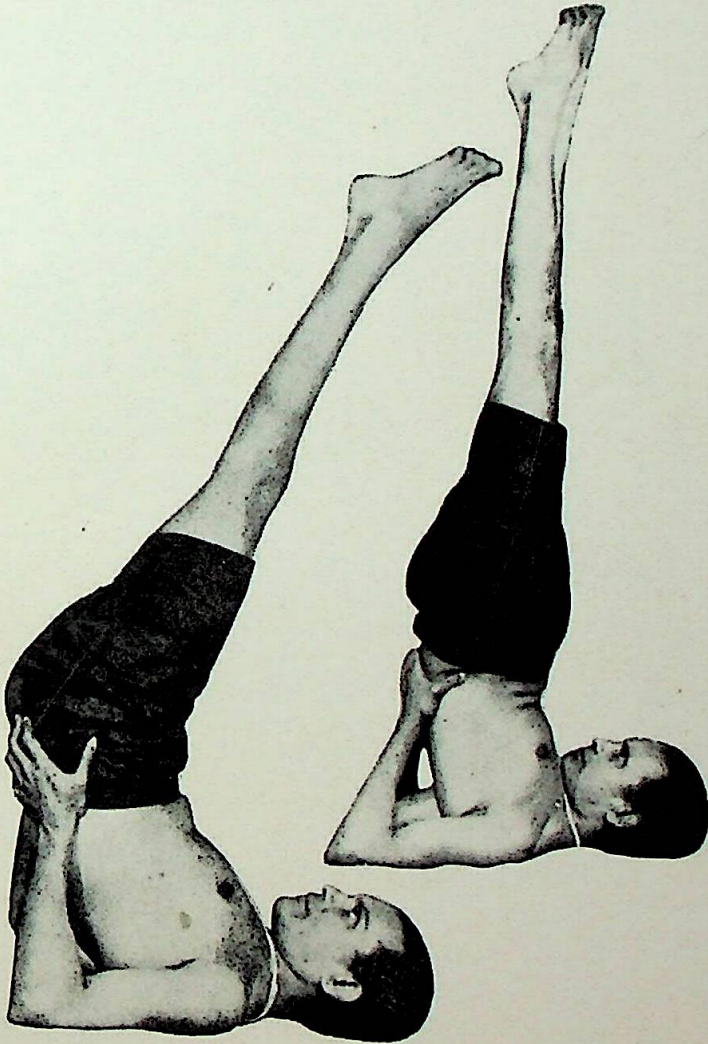
उत्कटासन



Front Pose
अग्र भाग

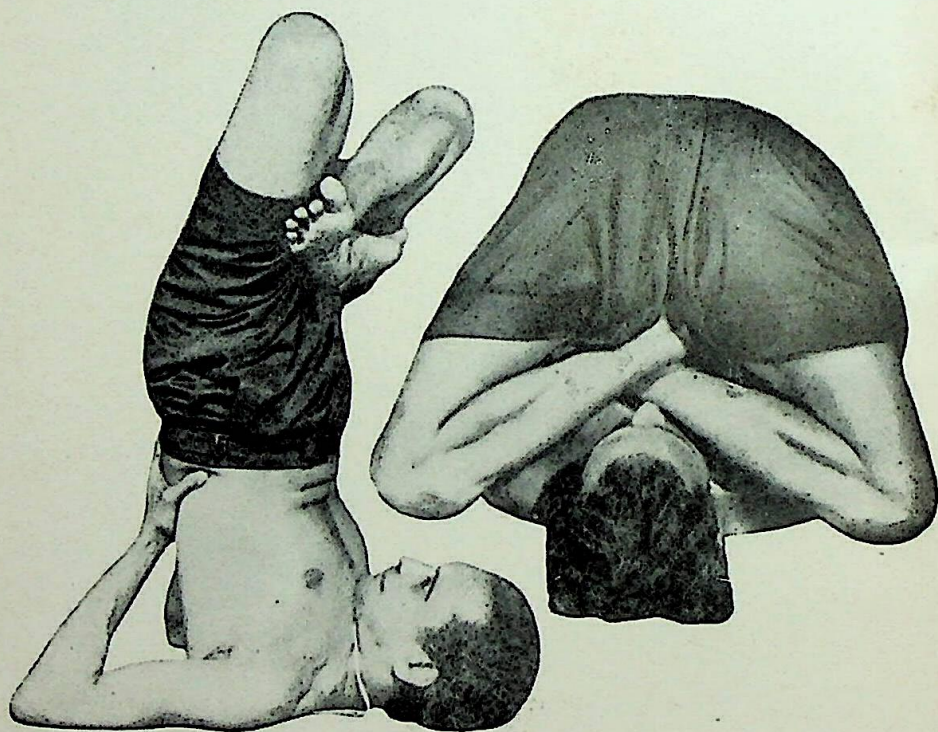
Back Pose
पृष्ठ भाग

Gomukhasana
गोमुखासन



Viparit Karani
विपरीत करणी

Urdhwa Sarvangasana
उर्ध्व सर्वांगासन



Viparit Karni with Padmasana
पद्मासन विपरीत करणी अवस्थामें

पैर को घुटने से मोड़कर दाहिने पैर के घुटने को दाहिनी ओर रखें। बायें पैर के तलुवे से भूमि का स्पर्श करें। दाहिने पैर के तलुवे को सीधा करने का प्रयत्न करें। दाहिने हाथ की बगल में बायें पैर के घुटने को भरकर दाहिने हाथ से बायें पैर के पंजे को पकड़ रखें। छाती को जहां तक हो सके, प्रशस्त करते जायें—विकसित करते जायें। शरीर के किसी भी अंग को ढीला न रखें। शिर के भाग को बाईं ओर घुमाकर ठुड़ी को कन्धे पर रखें। आंखें खुली रखें। दाहिने पैर के घुटने को जमीन से उठने न दें। धीरे-धीरे पेट के भाग को बायें पैर की जानु से दबाकर रखने का पूर्णतया प्रयास करें।

द्वितीय प्रकार

विधि—बायें पैर को सीधा सामने फैलाकर बैठ जायें। फिर दाहिने पैर को घुटने से मोड़कर बायें पैर के घुटने को बाईं ओर स्थापित करें। दाहिने पैर के तलुवे से भूमि का स्पर्श करें। बायें पैर के तलुवे को सीधा करने का प्रयास करें। बायें हाथ की बगल में दाहिने पैर के घुटने को भरकर बायें हाथ से दाहिने पैर के पंजे को पकड़ रखें। दाहिने हाथ को पीठ की ओर ले जाकर कमर पर रखें। श्वासोच्छ्वास चालू रखें। छाती को यथासम्भव फैलाते रहें—विकसित करते रहें। शरीर का कोई भी अंग ढीला न रहने पाये। शिर के भाग को दाहिनी ओर घुमाकर ठुड़ी को कन्धे पर रखें। बायें पैर का घुटना जमीन से ऊपर तनिक भी उठने न पाये। धीरे-धीरे पेट के भाग को दाहिने पैर की जानु से दबाकर रखने का प्रयास करें। उक्त दोनों प्रकारों को कर लेने के बाद अर्धमत्स्येन्द्रासन का अभ्यास पूरा माना जाता है।

समय

४ दिन तक १।१ मिनट। ५ से ९ दिन तक १।१—१।१ मिनट। १० से १६ दिन तक २।२ मिनट। तदुपरान्त आयु, शक्ति और लाभ के अनुसार ५।५ मिनट तक अभ्यास बढ़ा सकते हैं।

लाभ

जिसके कारण लोगों को पेशाब में जलन होती है और शरीर का मांस अधिक बढ़ गया है; ऐसी स्थिति पर पहुँचे हुए प्रमेह रोग को जालनी प्रमेह कहा जाता है और पीठ या पेट में होने वाली नीले रंग की ग्रन्थि को पिडका कहते हैं। इस प्रकार के अनेक लक्षणों वाले प्रमेह रोग इस आसन के अभ्यास से नष्ट हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त इस आसन के अभ्यास के साथ-साथ अनिवार्य रूप से प्राकृतिक नियमानुसार पथ्य रूप से आहार में भी कुछ परिवर्तन करना पड़ता है और पुराने रोगियों को सूर्य-किरण-चिकित्सा आदि अन्य उपचारों का भी सहयोग लेना पड़ता है। इसके अतिरिक्त और भी अनेक लाभ इस आसन से प्राप्त होते हैं।

तृतीय प्रकार

विधि—दाहिने पैर को घुटने से मोड़कर उसकी एड़ी को सिवनी (अण्ड-कोश और मलद्वार के मध्य)—स्थान पर स्थापित करें। बायें पैर को दाहिने पैर के घुटने की दाहिनी ओर रखें। बायें तलुवे से भूमि का स्पर्श करें। दाहिनी बगल में बायें पैर के घुटने को भर लें बायें पैर के पंजे को दाहिने हाथ से पकड़ रखें। बायें हाथ को पीठ की ओर ले कर ठुड़ी को कन्धे पर रखें। आंखें खुली रखें। श्वासोच्छ्वास चालू रखें। शरीर को तना हुआ रखें। छाती को आगे की ओर फुलाने का प्रयत्न करें। बाये पैर को जानु से पेट को दबाने का प्रयत्न करें।

चतुर्थ प्रकार

विधि—बायें पैर को घुटने से मोड़कर उसकी एड़ी को सिवनी-स्थान पर रखें। दाहिने पैर को बायें पैर के घुटने की बाईं ओर रखें। दाहिने तलुवे से जमीन का स्पर्श करें। बाईं बगल में दाहिने पैर के घुटने को भर लें। दाहिने पैर के पंजे को बायें हाथ से पकड़ रखें। दाहिने हाथ को पीठ की ओर ले जाकर कमर पर रखें। शिर को दाहिनी ओर ले जाकर ठुड़ी

को कन्ध पर रखें । आंखें खुली रखें । श्वासोच्छ्वास चालू रखें । शरीर को तना हुआ रखें । छाती को आगे की ओर उभरा हुआ रखें और उसे विकसित बनाने का प्रयत्न करें । पेट के भाग को दाहिने पैर की जानु से दबाने का प्रयत्न करें ।

समय

५ दिन तक ११ मिनट । ६ से १० दिन तक १॥-१॥ मिनट । ११ से २० दिन तक २।२ मिनट तदनन्तर आयु, शक्ति और लाभ के अनुसार ५।५ मिनट या इनसे भी अधिक समय तक बढ़ा सकते हैं ।

लाभ

अर्धमत्स्येन्द्रासन के पहले प्रकार में बताये गये सभी लाभ इस आसन से मिलते हैं । इसके अतिरिक्त क्षतोदर अर्थात् आहार के साथ कण, कांटा आदि के पेट में पहुँच जाने से क्षत (घाव) हो जाता है और आंत छिल जाती है । इसके फलस्वरूप पानी के समान तरल पदार्थ का कुछ स्राव होने लगता है । वह पदार्थ मलद्वार से निकलता है । कभी अति भोजन से भी इस रोग के हो जाने की सम्भावना है । फलतः नाभि के नीचे का भाग फूल जाता है और सुई चुभने का सा दर्द होता है । इस रोग के निवारण के लिये यह आसन अतीव लाभदायक है । जलोदर के रोगियों को भी यह आसन काफी फायदा पहुंचाता है ।

उत्कटासन

विधि—दोनों पैरों को पीछे की ओर मोड़कर उनकी एड़ियों पर बैठ जायें । पैरों के पंजे उंगलियों के आधार पर जमीन से ऊपर उठे रहें । कमर, पीठ और शिर के भाग सम रेखा में रहें । आंखें खुली रखें । श्वासोच्छ्वास चालू रखें । दोनों हाथों को दोनों घुटनों पर रखें ।

समय

४ दिन तक आध मिनट । ५ से १० दिन तक पौन मिनट । ११ से २० दिन तक १ मिनट । तत्पश्चात् १ से ५ मिनट तक अभ्यास बढ़ायें ।

लाभ

कटि प्रदेश के पृष्ठ भाग को सशक्त बनाता है आन्त्रपृच्छ व्याधियों के लिए लाभदायक हैं, उदर के वायु विकार दूर होते हैं और मेरुदण्ड में लचीलापन लाने के अनुकूल है । अस्थि संधियों की व्याधियां दूर होती हैं ।

गोमुखासन

सव्ये दक्षिणगुल्फं तु पृष्ठपाश्वे नियोजयेत्
दक्षिणेऽपि तथा सव्यं गोमुखं गोमुखाकृतिः ॥

—या. सं.

पृष्ठ भाग

विधि—सामने की ओर दोनों पैरों को फैलाकर बैठें । बायें पैर को घुटने से मोड़कर दाहिने कूल्हे के नीचे रखें । दाहिने पैर को बायें पैर के ऊपर लेजाकर बायें कूल्हे के नीचे इस प्रकार रखें कि तलुवा ऊपर की ओर रखकर पंजे का अग्रभाग फर्श को छूता रहे । दाहिने हाथ को ऊपर उठाकर और कुहनी से मोड़कर शिर को स्पर्श करते हुए पीठ की ओर ले जायें और बायें हाथ को नीचे से लेजाकर दाहिने हाथ को पकड़ लें । श्वासोच्छ्वास चालू रखें । शिर को तथा शरीर को सीधा रखें । आंखें खुली रखें । छाती को फुला कर रखें पेट के भाग को किंचित् संकुचित रखें । पैरों में भी साधारण खिंचाव रहना चाहिये ।

अग्रभाग

विधि—दाहिने पैर को मोड़कर बायें कूल्हे के नीचे रखें और बायें पैर को

मोड़कर दाहिने पैर के ऊपर से लेजाकर दाहिने कूल्हे पर रखें। तदनन्तर बायें हाथ को शिर की ओर उठाकर और कुहनी से मोड़कर पीठ की ओर ले जायें। दाहिने हाथ को मोड़कर नीचे से पीठ की ओर लेजाकर दाहिने हाथ के पंजे को पकड़ें। शेष क्रिया पहले प्रकार में बताये अनुसार है।

समय

५ दिन तक १ मिनट। ६ से १० दिन तक १॥ मिनट। ११ से २० दिन तक २ मिनट। तदनन्तर शक्ति, आयु और लाभ के अनुसार ५ मिनट तक अभ्यास बढ़ा सकते हैं। यह समय दोनों ओर के लिये पृथक्-पृथक् है।

लाभ

इस आसन के अभ्यास से बगल की मांस युक्त गांठ (कखवार) अच्छी होती है। श्वास-रोग के लिये यह आसन परम हितकारी है। पीठ का दर्द भी इस आसन से मिट जाता है। अरुचि, थकावट और निर्बलता दूर होती है। जानु का भाग मजबूत और बलवान् बनता है। पैर की पिण्डलियों की नस-नाड़ियों में शक्ति बढ़ जाती है। पित्त-प्रकोप से जो जलन उत्पन्न होती है, उसकी शान्ति के लिये भी यह आसन नितान्त अनुकूल है।

विपरीत करणी (उर्ध्व सर्वांगासन)

विधि—जमीन पर चित लेट जायें। दोनों हाथों को कमर के अगल-बगल सीधा रखें। तत्पश्चात् दोनों नासापुटों से श्वास को फेफड़ों में भर कर दोनों पैरों को जमीन से एक साथ शनैः शनैः ऊपर उठाते जायें। जब तक पैर कमर तक उठ न जाय, तब तक हाथों से जमीन का सहारा लेते रहें। तदुपरान्त हाथों को कमर में लगाकर हाथों के आधार पर पीठ के भाग को ऊपर उठायें। पीठ का भाग, कमर का भाग और पेट जब समरेखा में ऊपर की ओर स्थित हो जायें; तब समझना चाहिये कि विपरीत-

करणी का अभ्यास उचित रूप में हो रहा है। उस समय ठुड़ी को कण्ठकूप में लगा कर रखना चाहिये। हाथों की कुहनियों को बहुत दूर न रखें और बहुत समीप भी न रखें। हाथों के पंजों और उंगलियों के सहारे पीठ के भाग को समरेखा में रखने का प्रयास करें। दोनों पैरों को जोड़कर रखें। पैरों के पंजों को तानकर ऊपर की ओर सीधा खींचे रखने का प्रयास करें। आंखों की दृष्टि के सामने पैरों के अंगूठे सीधी रेखा में आयें, इस प्रकार करना चाहिये। इस समय पैर न तो हिलने पायें और न घुटनों से मुड़ने पायें। जिन स्त्री-पुरुषों के नेत्रों की दृष्टि क्षीण (कमजोर) हो और जो लोग अपनी आंखों की दृष्टि को तेजस्वी बनाना चाहते हों, उन्हें चाहिये कि इस आसन की साधना की स्थिति में पैरों के अंगूठों पर अपनी दृष्टि स्थिर करें। आसन के अभ्यास के समय कदाचित् आंखों में पानी आ जाये तो भी घबराना नहीं चाहिये उस समय आंखों को बन्द करके इस आसन को करना चाहिये। थोड़ी-थोड़ी देर में आंखों को बन्द करते और खोलते रहना चाहिये। और निम्नलिखित भावना को वारंवार दुहराते रहना चाहिये—“मेरी आंखों की दृष्टि दिन-प्रतिदिन सतेज होती जा रहा है, आंखों की नस-नाड़ियां सशक्त बनती जा रही हैं। मेरी आंखें बहुत अच्छी और पूर्णतया आरोग्यमय है।” पैरों के सीधे होते ही श्वास-प्रश्वास चालू रखें। इस आसन की साधना में पारंगत हो जाने के बाद हाथों का सहारा लिये बिना भी ‘विपरीतकरणी’ आसन की साधना कर सकते हैं ? विपरीतकरणी आसन को करते समय दोनों हाथों को पैरों के आस-पास सीधा रखना चाहिये। केवल ऊपर उठाते समय और पैरों को नीचे लाते समय हाथों का आधार लिया जा सकता है।

शंकास्पद स्थिति

जिन लोगों का शरीर अधिक स्थूल है, उनके पैर इस आसन को करते समय कमर तक ही उठ सकेंगे। ऐसे लोगों को चाहिये कि वे पवन-मुक्तासन का अभ्यास चालू रखें। इससे पेट की स्थूलता कम होती जायेगी

और पीठ तथा कमर की शक्ति भी बढ़ती रहेगी। विपरीतकरणी के अभ्यास के लिये उनको सहारा मिल जायेगा और इस साधना के सम्बन्ध में जो निराशापूर्ण भावनायें होंगी, वे आशा और विश्वास की भावनाओं में रूपान्तरित हो जायेगी।

समय

६ दिन तक १ मिनट । ७ से १२ दिन तक २ मिनट । १३ से १८ दिन तक ३ मिनट । १९ से २२ दिन तक ४ मिनट । तत्पश्चात् आयु, शक्ति और लाभ के अनुसार ५ से ७ मिनट तक बढ़ा सकते हैं।

लाभ

आंखों की दृष्टि-शक्ति उन्नत होती है। मस्तिष्क की शक्ति बढ़ती है। पैर की सूजन मिटती है और प्रारम्भिक हाथीपद (श्लीपद) रोग दूर होता है। कण्ठमणि के रोग से छुटकारा मिलता है। गले की आवाज मधुर और सुरीली बन जाती है। रक्तविकारजन्य अनेकशः रोग—फोड़े, फुन्सी, खुजली, दाद आदि सदा के लिये पीछा छोड़ देते हैं। शरीर सौंदर्यवान्, आकर्षक, स्फूर्तिवान्, शक्तिमान्, मेघाशक्ति सम्पन्न सर्वांग सुन्दर और सुडील बन जाता है। इन्द्रियां तेजस्वी और सामर्थ्यवान् बनती हैं। इसके सिवा अन्य बहुतेरे रोग भी भाग खड़े होते हैं। शरीरगत कई चक्र—जैसे कि मूलाधार चक्र, स्वाधिष्ठान चक्र, मणिपूर चक्र, विशुद्ध चक्र आदि सजग रहते हैं। मन प्रफुल्ल रहता है। बुद्धि की जड़ता निकल भागती है। अर्थात् इस आसन से बहुतेरे लाभ प्राप्त होते हैं। अतः यह आसन सभी स्त्री पुरुष-आबाल-वृद्धों के लिए पूर्णतया साध्य और लाभप्रद है। कुण्डलिनी शक्ति को जाग्रत करने के लिये अनेक मुद्राओं में से विपरीतकरणी मुद्रा का भी अभ्यास कराया जाता है; उस दशा में इस आसन का आधार लेना पड़ता है।

विपरीतकरणी अवस्था में पद्मासन

प्रथम प्रकार

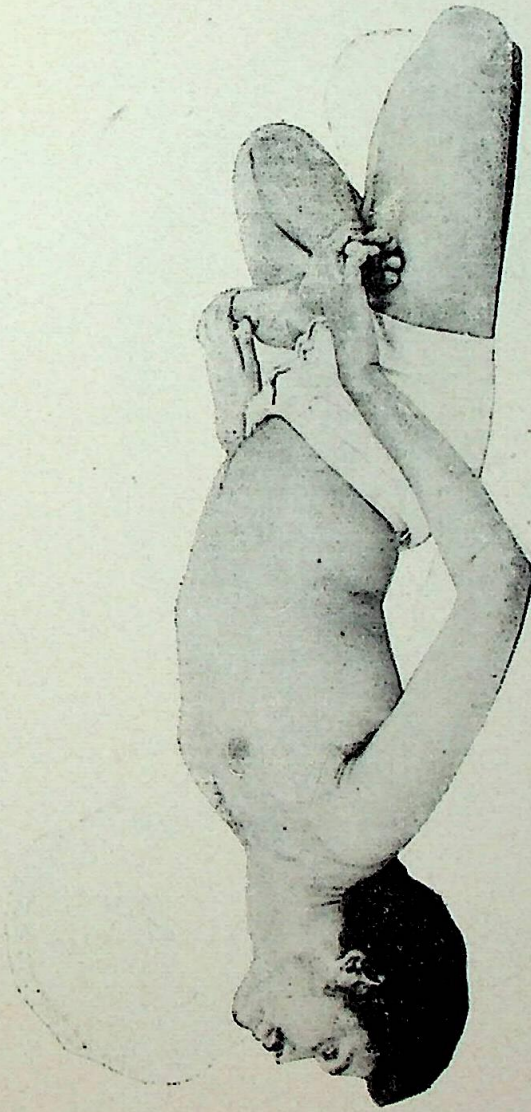
विधि—विपरीतकरणी में बताये अनुसार पहले विपरीतकरणी करें। तत्पश्चात् दोनों पैरों को दोनों जानुओं पर चढ़ाकर पद्मासन लगायें। आंखों की दृष्टि खुली रहे तथा पीठ पर हाथों का सहारा भलीभांति लें, अन्यथा गिर जाने की सम्भावना है। अभ्यास की प्रारंभिक अवस्था पर पहुंच जाने के पश्चात् हाथों का सहारा लिये बिना भी यह आसन और विपरीतकरणी आसन में स्थित पद्मासन कर सकते हैं। श्वास-प्रश्वास की क्रिया चालू रखें। शरीर को तनिक भी हिलने-डुलने न दें। ठुड़ी कण्ठ कूप में लगाकर रखें। घुटनों को सीधा रखने का प्रयत्न करें और यह प्रयत्न भी जारी रखें कि कमर का भाग बिल्कुल सीधा रहे—झुकने न पाये।

समय

८ दिन तक १ मिनट। ९ से १६ तक २ मिनट। १६ दिन के पश्चात् आयु, शक्ति और लाभ के अनुसार ५ मिनट तक बढ़ायें।

लाभ

जिन लोगों को कानों से कम सुनाई देता है; उनके लिये यह आसन अतीव लाभदायक है। कानों के क्रियातन्तुओं और ज्ञान-तन्तुओं की शिथिलता दूर हो कर कानों की श्रवण-शक्ति बढ़ती है। कानों से जो दुर्गन्ध युक्त द्रवपदार्थ निकलता है, वह बन्द हो जाता है। कानों की वेदना भी शान्त होती है। कन्धों में वेदना होती हो तो वह भी मिट जाती है। गले की नसें मजबूत होती हैं। कमर की हड्डियों के सांधों की शक्ति बढ़ती है। अण्ड-कोश और शिशनेन्द्रिय की कमजोरी दूर होती है। कूल्हे का भाग अधिक स्थूल होता है। यह स्थूलता इस आसन के अभ्यास से कम हो जाती है।

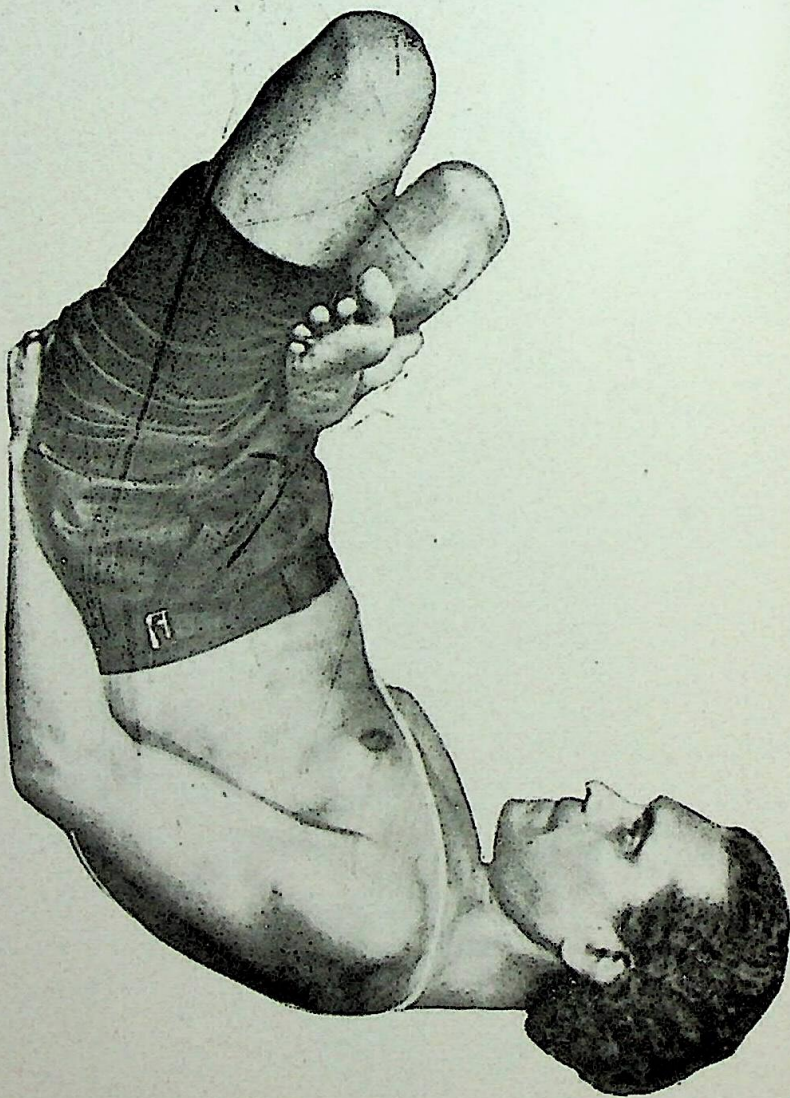


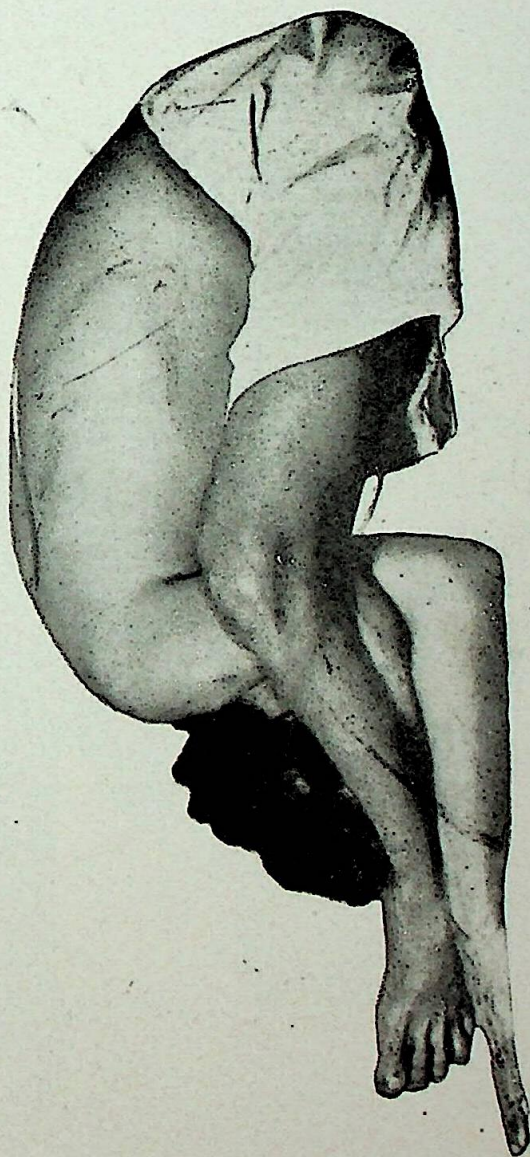
Matsyasana

मत्स्यासन

160

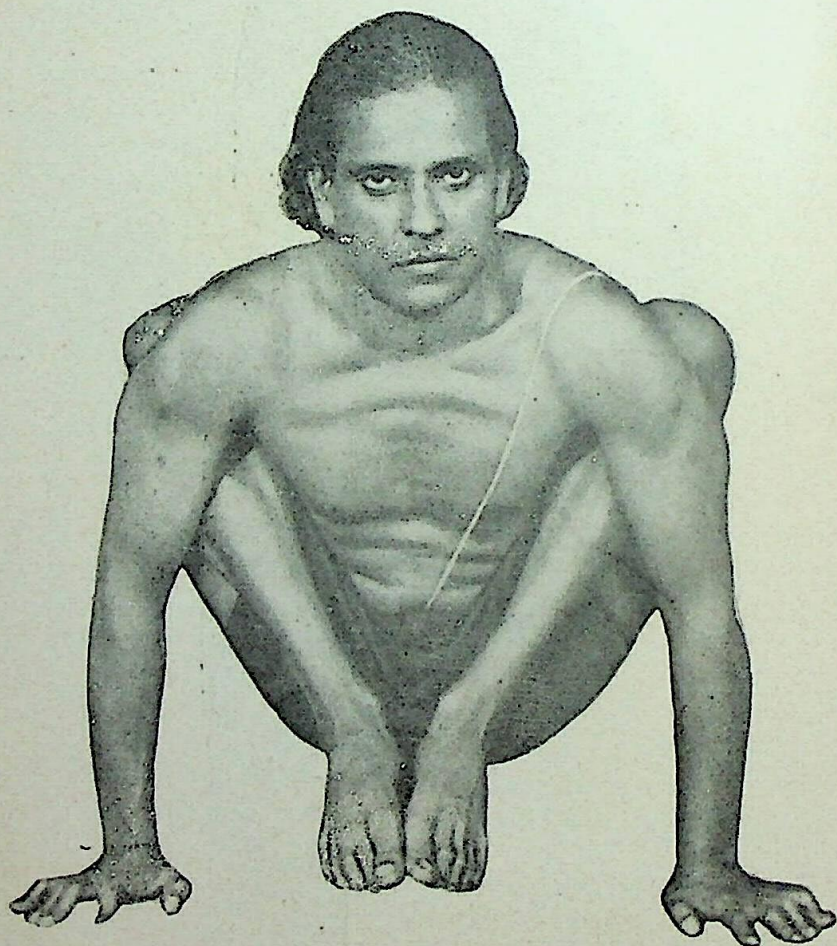
Tolangulasana (Tulasana)
तोलंगुलासन (तुलासन)





Kurmasana
कुर्मासन

162



Bakasana
बकासन

द्वितीय प्रकार

विधि—विपरीतकरणी करने के पश्चात् दोनों पैरों के घुटनों को शिर के अगले भाग के पास ले आने का प्रयास करें और यथासम्भव दोनों घुटनों को शिर के अगल-बगल जमीन में स्पर्श करें। दोनों घुटनों से यदि एक साथ भूमि को स्पर्श करना सम्भव न हो तो प्रथम दाहिने घुटने को भू-स्पर्श करायें और तत्पश्चात् बायें घुटने को करायें। इस अवसर पर यदि कोई एक घुटना भूमि से कुछ अन्तर पर रहे तो भी कोई हर्ज नहीं; इस से भी लाभ अवश्य होगा। इस समय आंखें खुली भी रख सकते हैं और बन्द भी रख सकते हैं। श्वास-प्रश्वास की गति मन्द पड़ जायेगी। पेट के निम्नवर्ती भाग पर दबाव रहेगा। इस समय फेफड़ों पर भी उत्तम प्रभाव पड़ेगा।

समय

८ दिन तक आध मिनट। ९ से १६ दिन तक ४५ सेकण्ड (पौन मिनट)। १७ से २४ दिन तक १॥ मिनट। तदनन्तर आयु, शक्ति और लाभ के अनुसार २ से ३ मिनट तक अभ्यास बढ़ा सकते हैं।

लाभ

इस आसन से विपरीतकरणी के सभी लाभ तो मिलते ही हैं। इसके अतिरिक्त शरीर की अधिक स्थूलता कम हो जाती है। बालों का झड़ना बन्द हो जाता है। बालों की जड़ें मजबूत होती हैं। शिर का गंजापन (बालों का न होना) दूर हो जाता है। भुजाओं में नवीन शक्ति का संचार होता है। हृदयविकार और हाईब्लडप्रेसर के रोगी इस आसन का अभ्यास न करें। इस आसन से महिलाओं का प्रदर रोग मिटता है। गर्भाशय शक्तिशाली बनता है। जिह्वा की शक्ति बढ़ती है और जिह्वा-रोग तुतलाहट, जीभ का रुकना आदि दूर हो जाते हैं। गले का पिछला, ऊपरी और शिर के नीचे का भाग सुदृढ़ होता है। मुख-मण्डल पर ओजस् की अभिवृद्धि होती है।

शरीर में रस, रक्त, मांस, मज्जा, मेद, अस्थि, वीर्य, ओजस् (स्त्रियों का रजस्) आदि सप्तधातु समपरिमाण में संतुलित रहते हैं।

मत्स्यासन

मुक्तपद्मासनं कृत्वा उत्तानशयनं चरेत् ।

कूर्पराभ्यां शिरो वेष्ट्य मत्स्यासनं तु रोगहा ।

—धेरंड संहिता २. २१.

विधि—पद्मासन लगाकर बैठने के उपरान्त पीठ की ओर जमीन पर लेट जायें। लेटते समय हाथों का सहारा ले लें और लेटकर कमर, पीठ घुटनों और शिर के भाग को भूमि से टिका दें। श्वासोच्छ्वास चालू रखें दाहिने पैर की उंगलियों को बायें हाथ की उंगलियों से पकड़ें और बायें पैर की उंगलियों को दाहिने हाथ की उंगलियों से पकड़ें। शरीर में साधारण तनाव रखें, ढीलापन न रहे। कोई भी एक घुटना कदाचित् पृथ्वी से कुछ ऊपर रहे तो हानि नहीं। जान बूझकर ऊपर न रखें और अधिक तनाव से भी घुटनों को जमीन पर रखने का प्रयास करना उचित नहीं। शनैः शनैः अभ्यास करते रहने से थोड़े दिनों के पश्चात् दोनों घुटने स्वतः भूमि से लगने लगेंगे। कभी घुटनों का जमीन से स्पर्श होते समय पीठ के ऊपर उठ जाने की सम्भावना रहेगी। किन्तु ऐसा होने न दें, पीठ को भूमि से लगाये रखें। इस प्रकार के कुछ देर के अभ्यास के पश्चात् पीठ के भाग को जमीन से ऊपर उठा लें और शिर को जमीन पर ही रखे रहें। हाथ की कुहनियों को जमीन से टिका दें। आंखें खुली भी रख सकते हैं और बन्द भी रख सकते हैं। गले के अग्रभाग पर और मुंह पर तनाव पड़े; इस प्रकार शिर को जमीन से जकड़ रखें। इस समय छाती में भी तनाव आने की सम्भावना है।

समय

३ दिन तक १ मिनट। ४ से ६ दिन तक १॥ मिनट। ७ से १०

दिन तक २ मिनट । १० से २० दिन तक ४ मिनट । २० दि. के बाद यथाशक्ति आयु और लाभ के अनुसार ५ से ८ मिनट तक अभ्यास बढ़ायें । सभी स्त्री-पुरुष इस आसन का अभ्यास कर सकते हैं ।

लाभ

जैसे मछलियां जल में तैरती हैं; उसी तरह इस आसन को लगाकर साधक घण्टों जल में पड़ा रह सकता है; तैर सकता है । छाती का भाग विकसित होकर विशाल बनता है । गले के ज्ञानतन्तु, क्रियातन्तु, स्नायु आदि अवश्य मजबूत बनते हैं । मेरुदण्ड (पीठ की रीढ़) के रोग और मेरुदण्ड की कमजोरी दूर होगी । वृद्धावस्था में भी उसमें झुकाव नहीं आयेगा; अर्थात् वह टेढ़ा नहीं होगा; सदैव सीधा तना रहेगा । यदि मेरुदण्ड झुक गया होगा तो इस आसन के प्रभाव से पुनः सीधा तन जायेगा । शिर में और शरीर में ओजस् तत्व बढ़ जायेगा । जो लोग दांतों को मजबूत बनाने की इच्छा रखते हैं, उन्हें चाहिये कि वे इस आसन को करते समय दोनों ओर ऊपर नीचे के दांतों को दबाकर रखें । कर्णशूल के निवारण के लिये यह आसन अनुकूल है और कुछ लोगों का कर्णस्त्राव भी सम्भवतः इस आसन से मिट जायेगा और भी अनेक लाभ इस आसन से मिलते हैं, जिनका अनुभव इसके अभ्यास से ही किया जा सकता है ।

तोलांगुलासन (तुलासन)

विधि—पद्मासन पर बैठने के पश्चात् पीठ के बल जमीन पर लेट जायें । दोनों कूल्हों के नीचे दोनों हाथों की मुष्टिकायें (मुठ्ठियां) रखें । पीठ के भाग को हाथों के आधार पर जमीन से उठावें और पैर तथा शिर के भाग को अधिक उठाकर रखें । इस आसन को करते समय शिर और पैरों को ऐसी आकृति में रखना चाहिये, जैसे तराजू के दोनों पल्ले समान सतह पर रहते हैं । आंखों को खुला रखें । शरीर को ढीला न रखें । श्वासोच्छ्वास चालू रखें । इस दशा में शरीर के हिल उठने की भी सम्भा-

वना है। परन्तु शिर पैर और हाथों के बल पर शरीर को स्थिर रखने का प्रयास करें।

समय

७ दिन तक आध मिनट। ८ से १५ दिन तक १ मिनट। १५ दिन के पश्चात् आयु, बल और लाभ के अनुसार ३ मिनट तक अभ्यास बढ़ायें।

लाभ

इस आसन के अभ्यास से नाभिस्थान में स्थित मणिपूर चक्र सतेज होता है। भूख बढ़ जाती है। वायुरोग प्रशमित होता है। कण्ठमणि मज्ज-बूत होती है। गले के स्वर में सुधार होता है। स्वर की कर्कशता मिटकर उसमें माधुर्य आता है और आंखों की दृष्टि भी अच्छी रहती है और कूल्हे के भाग की सूजन दूर होती है। कमर की शक्ति बढ़ती है। हाथों और कन्धों में नवीन शक्ति का संचार हो उठता है।

कूर्मासन

गुल्फी च वृषणस्याधो व्युत्क्रमेण समाहितौ ।

ऋजुकाय शिरो ग्रीवं कूर्मासनमितीरितम् ॥५॥

—यो. प्र

विधि—दोनों पैरों को घुटनों से कुछ मोड़कर रखें। दाहिने पैर का घुटना बायें कन्धे के पास बाहर की ओर रहे। तदुपरान्त दाहिने हाथ को दाहिने पैर के नीचे से ले जाकर दाहिने पैर के पंजे के पास रखें। बायें हाथ को बायें पैर की पिंडली के नीचे से बाहर ले जाकर बायें पैर के पंजे के पास रखें। तदनन्तर शिर को जमीन पर दोनों पैरों के बीच में लगा दें। तत्पश्चात् समस्त शरीर को स्थिर करें। श्वासोच्छ्वास चालू रखें। आंखों को बन्द रखें।

समय

८ दिन तक आध मिनट । ९ से १६ दिन तक १ मिनट । तदनन्तर शक्ति, आयु, और लाभ के अनुसार ३ मिनट तक बढ़ा सकते हैं ।

लाभ

जैसा इस आसन का नाम है; वैसे ही इसमें गुण भी भरे हैं, अर्थात् कूर्म (कछुवे) की तरह इस आसन का साधक भी अपने शारीरिक अवयवों को स्वेच्छानुसार संकुचित और विकसित कर सकता है—करता रहता है । इस आसन से सभी इन्द्रियों पर नियन्त्रण प्राप्त हो जाता है । कछुवे के अंग-प्रत्यंग के समान साधक अपनी इन्द्रियों का भी संकोचन और प्रसारण करने लगता है । जैसे कूर्म की आयु-सीमा अधिक है उसी तरह की स्थिति इस आसन के साधक की होती है । यह आसन सात्विक गुणों से भरपूर है; अतः अपनी सुरक्षित शारीरिक स्थिति से जितना लाभ कूर्म उठाता है, उससे कई गुना अधिक लाभ सात्विक गुण-सम्पादन की दृष्टि से इस आसन के साधक को उपलब्ध होता है । इन्द्रिय-दमन की अभीप्सा रखने वाले महानुभाव अवश्य ही इस आसन का प्रयोग-परीक्षण कर देखें । अभ्यास का श्रीगणेश करने के कुछ ही दिन बाद पता चलेगा कि रजोगुण और तमोगुण का प्रभाव मिटता जा रहा है और उनके स्थान पर सत्त्व गुण और शुभ भावों की प्रतिष्ठा और सत्ता स्थापित होती जा रही है । व्यसनी गृहस्थ स्त्री-पुरुषों के लिये भी यह आसन अति अनुकूल है; अर्थात् व्यसनों में फसे हुए स्त्री-पुरुषों का मन रजोगुण और तमोगुण प्रधान रहता है । उनमें सत्त्व गुण का आभास बहुत कम होता है, जिससे वे अपनी इच्छा शक्ति को वश में रख नहीं सकते और व्यसनों की हानियों को जानते हुए भी उनमें हमेशा फसे रहते हैं । किन्तु कूर्मासन तथा ऐसे ही अन्य विशिष्ट आसनों तथा प्राणायाम की साधना निरन्तर करते रहने से सभी व्यसनों से अनायास छुटकारा मिल जाता है, उनके छोड़ने में किसी प्रकार का कष्ट नहीं उठाना पड़ता है ।

बकासन

विधि—जमीन पर सीधे बैठ जाये । फिर दाहिने पैर को दाहिनी बगल में और बायें पैर को बाईं बगल में भर लें । पैर के पंजे परस्पर भिड़ रहें अथवा कुछ अन्तर पर रहें । जमीन से ऊपर कुछ उठे भी रहें । तदुपरान्त दोनों हाथों के पंजों को कूल्हों के अगल-बगल जमीन पर स्थापित करें । श्वास को फेफड़ों में भरकर समग्र शरीर को हाथों के आधार पर जमीन से ऊपर उठाय । तदुपरान्त श्वासोच्छ्वास चालू रखें । आंखें खुली रखें । शिर को ऊपर की ओर उठा हुआ रखें । छाती को फुलाकर और समग्र शरीर को तना हुआ रखें । यथाशक्ति ऊपर उठी हुई स्थिति में स्थिर रहने के बाद श्वास को फेफड़ों में भरकर शनैः शनैः शरीर को नीचे जमीन पर ले आयें ।

समय

६ दिन तक २ बार । ७ से १२ दिन तक ३ बार । १३ से २० दिन तक ४ बार । तत्पश्चात् आयु शक्ति और लाभ के अनुसार ५ बार तक बढ़ायें ।

लाभ

इस आसन की साधना करने से शरीर का वजन न कम रहता है और न अधिक रहता है; बल्कि संतुलित परिमाण में रहता है । समस्त शरीर के अगोपांगों में मेद के जितने परिमाण में रहने की आवश्यकता है उतना ही रहता है । पैदल चलने की वेगगामी शक्ति बहुत बढ़ जाती है । प्लूरमी रोग सदा के लिये बिदा हो जाता है । मांस, शिरायें, स्नायु, अस्थि और सन्धि-इन पांच मर्मस्थलों में कभी कुछ वेदना होने लगती है । यह वेदना इस आसन से मिट जाती है । शिर और शरीर को मालिश करने के पश्चात् इस आसन का अभ्यास करने से वायुविकारजन्य विक्षिप्तावस्था का सम्पूर्ण शमन हो जाता है । जैसे बगुला (बक) पक्षी जल में स्थिर रूप से मन को

एकाग्र किये रहता है; वही स्थितप्रज्ञभाव इस आसन के अभ्यासकाल में रखना पड़ता है। मन में चंचलता होने से शरीर हिलेगा और अभ्यास अधिक समय तक सध न सकेगा। जैसे बक पक्षी जल में अपनी सभी इन्द्रियों को स्थिर करके अपनी अभीष्ट-सिद्धि कर लेता है, वैसे ही योगसाधक लोग इस आसन का अभ्यास करके मन को एकाग्र करने के अधिकारी बन जायेंगे। इन्द्रियों की शिथिलता दूर होगी; बुद्धि में स्थिरता आयेगी और साधक कार्यकुशल बन जायेगा।

सिंहासन

विधि-दोनों पैरों को घुटनों से मोड़कर पीछे की ओर ले जायें और उनकी एड़ियों पर बैठ जायें। एड़ियाँ कूल्हों के अगल-बगल रहें। घुटनों को ६ इंच के अन्तर पर रखें। दाहिने हाथ के पंजे को दाहिने पैर के घुटने पर और बायें हाथ के पंजे को बायें पैर के घुटने पर रखें। पेट को दबाकर रखें। छाती को फुलाकर रखें। मुंह को खोलकर जहां तक हो सके जीभ को बाहर निकाल लें, आंखें खुली रखें और भौंहों को ऊपर की ओर चढ़ाने का प्रयत्न करें। श्वास कण्ठ से लें और छोड़ें। पेट का संकोच और विनास करते रहें। हाथों से पैरों के घुटनों को अच्छी तरह से दबाकर रखें। सारे शरीर को तना हुआ रखें। हाथों की उंगलियों को भी यथासंभव आगे की ओर खींच कर रखें। मेरुदण्ड को आगे की ओर दबा रखें। इस आसन के अभ्यासी कुछ दिन तक मुंह को अधिक न फैलायें और जीभ को भी अधिक बाहर न निकालें। आंखों को भी तानकर न खोलें। अभ्यास हो जाने के पश्चात् आंखों को यथाशक्ति खोल सकते हैं। दुराग्रहपूर्वक दांतों के जबड़ों को अधिक खोलने से जबड़ों के खुल जाने की सम्भावना है। सभी स्त्री-पुरुष इस आसन को कर सकते हैं।

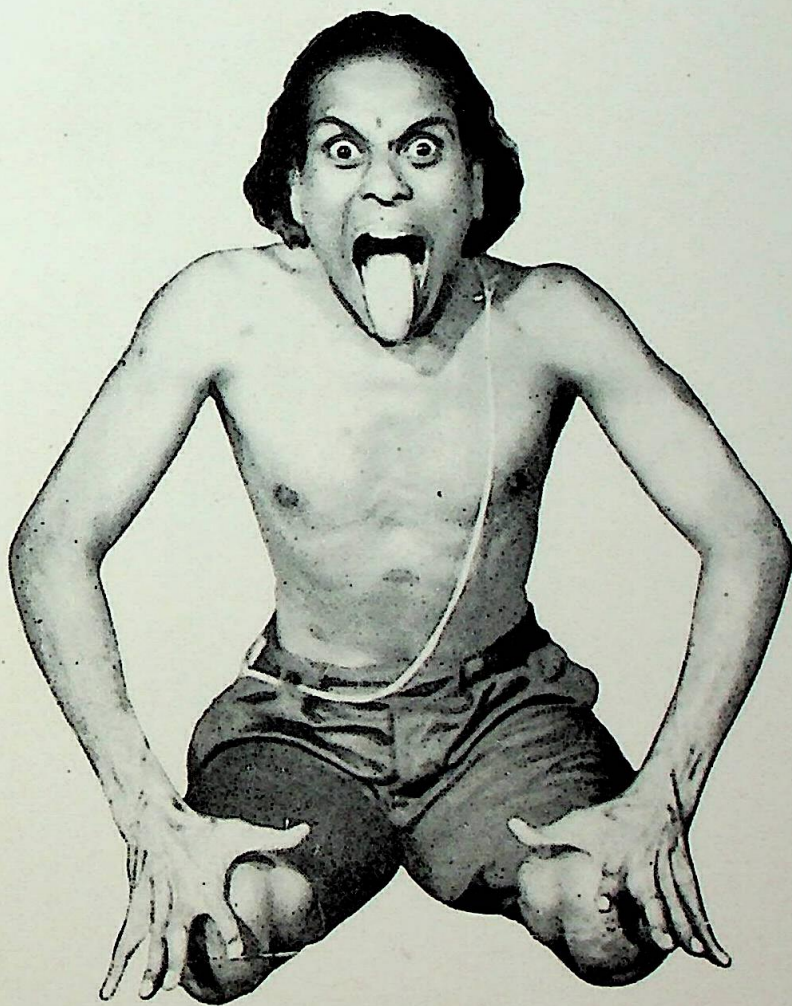
समय

१० दिन तक आध मिनट। ११ से २० दिन तक पौन मिनट। तदु-

परान्त शक्ति, आयु और लाभ के अनुसार १ मिनट तक बढ़ा सकते हैं। किसी कारण वश यदि लगातार १ मिनट तक अभ्यास करना सम्भव न हो तो दो-तीन बार तक कर सकते हैं।

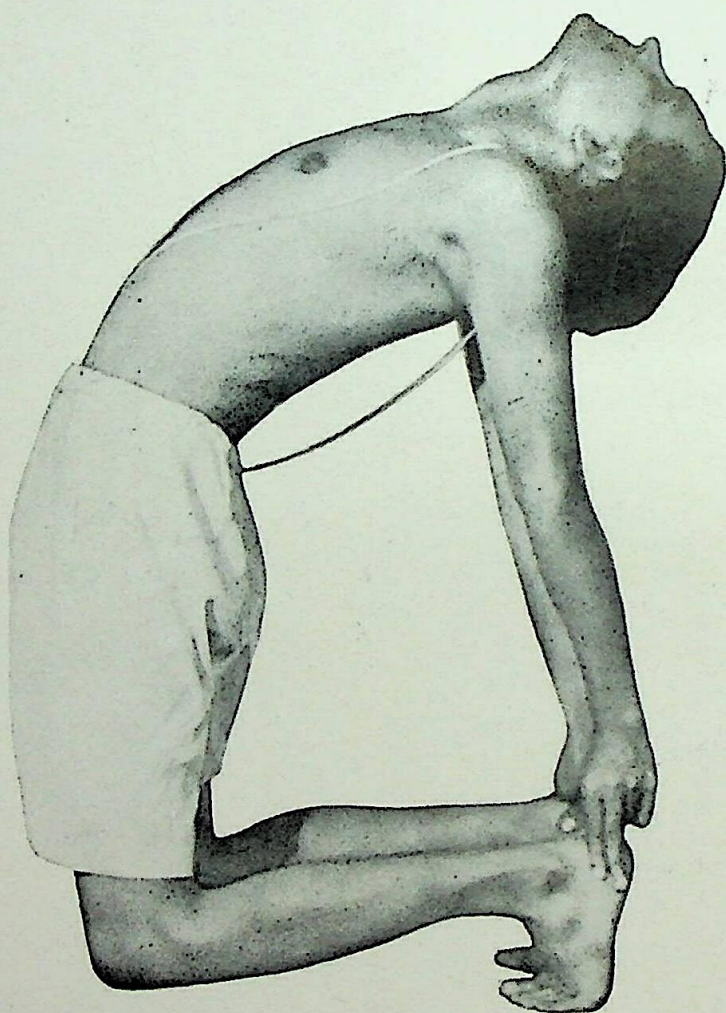
लाभ

जैसे सिंह का कटिस्थान पतला तथा वक्षःस्थल (छाती का भाग) प्रशस्त, उन्नत, शक्तिवान् और विकासोन्मुख रहता है, उसी तरह की शारीरिक गठन इस आसन के साधक की हो जाती है। तन्दुरुस्त शरीर के लक्षण अनेक हैं; उनमें से एक यह भी है कि छाती विशाल होती है और पेट छाती के नीचे दबा, चिपटा और संकुचित रहता है। जैसे इस आसन के चित्र में प्रत्यक्ष रूप में गले के उपर की ज्ञानेन्द्रियों को देखते हैं; वैसे ही इनका गुण सचमुच ही है; अर्थात् जीभ सशक्त बनती है। तोतलापन मिटता है। उप जिह्वा भी सशक्त बनती है। जिन लोगों की जीभ को स्वादका बिलकुल अनुभव नहीं होता, उन्हें यथोचित स्वाद का आनन्द मिलने लगता है। जीभ के चारों ओर अमीरस (लार) उत्पन्न करने वाली रस-ग्रन्थि सशक्त बनकर अपना कार्य सुचारु रूप से करने लगती है। अन्न के समुचित परिपाक के लिये जिस पाचक अमीरस की आवश्यकता होती है, वह उचित मात्रा में उत्पन्न होता है और पाचनशक्ति बढ़ाने में सहायता पहुंचाता है। अधरोष्ठ और गालों पर आरोग्य की तेजस्विता आभासित हो उठती है। वायुविकार से मुंह और ओष्ठों में कम्पन होता है। यह आसन इन सब लक्षणों को मिटा देता है। अर्धांगवायु (लकवा) से पीड़ित रोगी के लिये भी यह आसन हितकर है। मुंह सुन्दर होता है और शरीर की त्वचा युवावस्था की कान्ति से चमक उठती है। वृद्धावस्था के सभी लक्षण दूर भागते फिरते हैं; पास नहीं आने पाते। कानों के पर्दे भी मजबूत बनते हैं। गले के ऊपर की नस-नाड़ियां सशक्त होकर नियन्त्रण में आ जाती हैं। आंखों की ज्योति ठीक रहती है। मस्तिष्क को इससे अच्छा व्यायाम मिलता है। कपाल और सारे शरीर की त्वचा तेजस्वी रहती है। वृद्धावस्था की



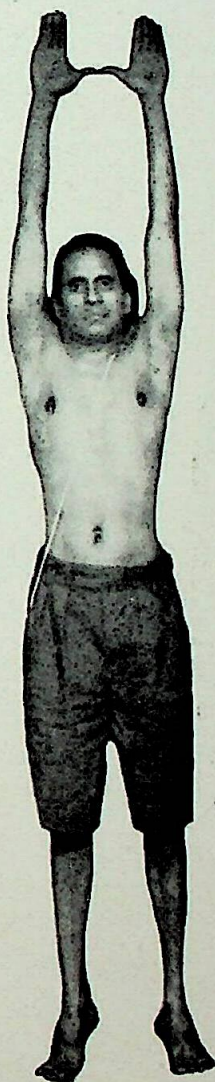
Simhasana
सिंहासन

[172]



Ushtrasana

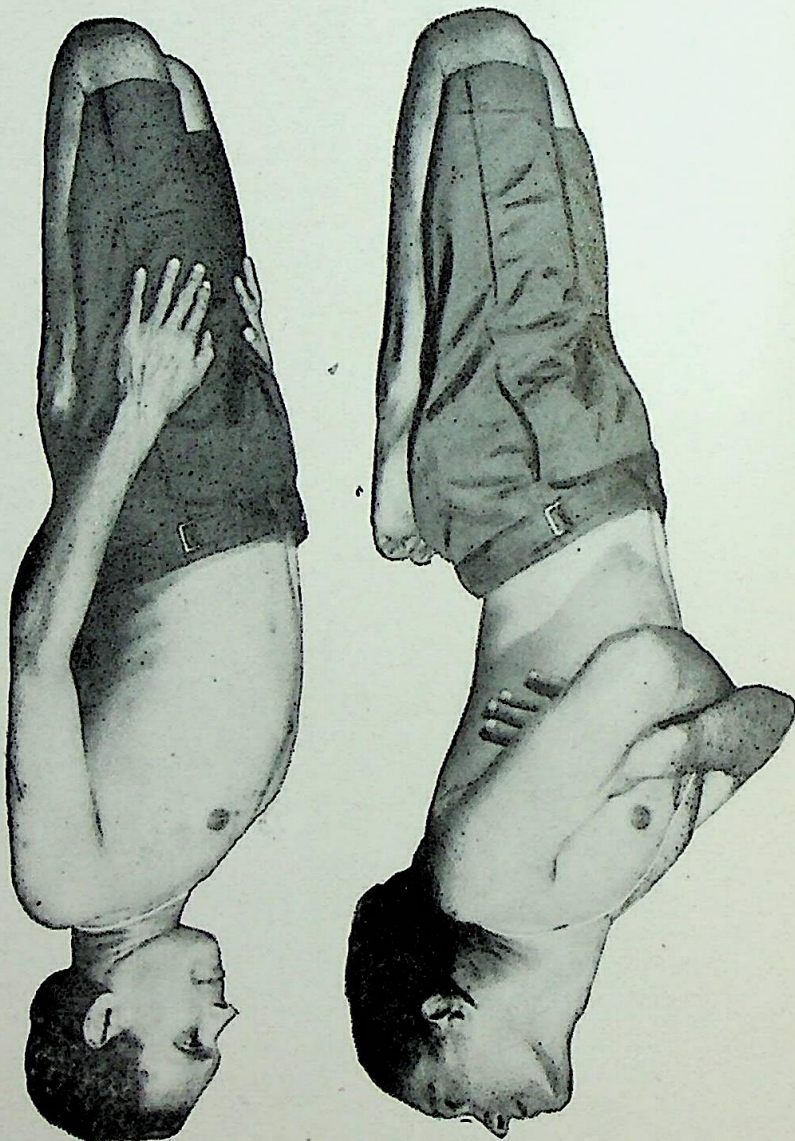
उष्ट्रासन



Tadasana (Vrakshasana)
ताडासन (वृक्षासन)

[174]

Supta Vajrasana
सुप्त वज्रासन



की सिकुड़न त्वचा में आने नहीं पाती । विशेष रूप से गले के सभी अवयव सशक्त और विकासोन्मुख रहते हैं ।

उष्ट्रासन

अधश्च शंते पदयुग्म व्यस्तं पृष्ठे निधायपि धृतं कराभ्याम् ।

आकुंचयेच्चैव हृदास्यमूर्ध्वमुष्ट्रं च पीठं मुनयो वदन्ति ॥१॥

—यो प्र.

वित्रि-पैरों को घुटने से मोड़कर जमीन पर रखें और दोनों पैरों की एड़ियों पर दोनों कूल्हे स्थापित करें । पैरों की एड़ियों को पास-पास रखें । तदुपरान्त दोनों हाथों से दोनों पैरों की एड़ियों की पकड़ लें और फेफड़ों में श्वास भरकर कमर के भाग को ऊपर की ओर उठावें । दोनों हाथों को सीधा रखें और शिर को पीठ की ओर ले जायें । समस्त शरीर का भार पैरों की उँगलियों और घुटनों पर रहे । आंखें बन्द भी रख सकते हैं और खुली भी रख सकते हैं । सारे शरीर को तना हुआ रखें । शरीर को ऊपर ले जाने के पश्चात् श्वासोच्छ्वास चालू रखें । यथाशक्ति आसन करने के पश्चात् श्वास को दोनों नासा पुटों से फेफड़ों में भरकर पैरों की पिण्डलियों पर बैठ जायें और तदुपरान्त श्वासोच्छ्वास चालू रखें ।

समय

१० दिन तक २ बार । ११ से २० दिन तक ३ बार । २० दिन के पश्चात् शक्ति, आयु और लाभ के अनुसार ३ से ५ बार तक अभ्यास बढ़ायें । अधिक समय तक करने का अभ्यास हो जाने पर १ से ३ बार तक कर सकते हैं । चक्रासन और उष्ट्रासन के अभ्यास काल में भगवान् का नाम लेते रहने; ॐकारका जप करते रहने अथवा अपने गुरुदेव का स्मरण करते रहने से अधिक समय तक इस आसन को किया जा सकता है ।

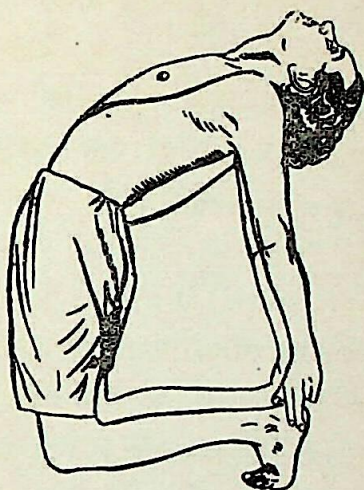
लाभ

कुछ लोगों के शरीर में अशुद्ध रक्त का प्रवाह बढ़ जाता है और मांस तथा धातुओं को भी विकारमय बना देता है, जिसके फलस्वरूप चर्म और मांसगत अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते हैं। यह सब रोग इस आसन से समूल नष्ट हो जाते हैं। अनेकशः वातज, पित्तज और कफज रोगों को मिटाने के लिये यह आसन शुभ फलदायी है। गुदा के समीप दो अंगुल के स्थान में पिङ्कायें (फोड़े-फुन्सियां) हो जाती हैं, फलतः सूजन भी हो जाती है और सूजन के पश्चात् पीड़ा भी होने लगती है। कभी-कभी सूजन बाहर मालूम नहीं होती और कालान्तर में यही रोग भगन्दर के रूप में प्रकट होता है। वैसे तो भगन्दर रोग कई प्रकार के होते हैं और संपूर्ण रूप से यह विश्वास भी दिलाया नहीं जा सकता है कि इस आसन से भगन्दर के यह सभी रूप मिट जायेंगे। फिर भी वातज, पित्तज और कफज भगन्दर से पीछा छूट जाने की सम्भावना है। कभी-कभी इस भगन्दर का लक्षण वृषण और गुदा के बीच में फोड़े के रूप में प्रकट होता है; बाद में यह फोड़ा पककर फूट जाता है। इसी को भगन्दर कहते हैं। यह आसन इन सब व्याधियों के लिये आशीर्वाद के समान है। प्रदर और प्रमेह के रोगियों पर भी इस आसन का शुभ प्रभाव होता है।

वचनमृत

पेड़, और गाय, बैल, भैंस आदि पशुओं का समग्र जीवन परोपकार में ही व्यतीत होता है। पेड़ स्वयं फल नहीं खाते; बल्कि अन्य प्राणी ही उन्हें ग्रहण करते हैं। इसी प्रकार गाय-बैल दूध, श्रमदान आदि से इतर प्राणियों को ही लाभ पहुंचाते हैं। इतना ही नहीं पशुओं का चर्म, अस्थि भी उनकी मृत्यु के पश्चात् काम आते हैं; किन्तु मानव-शरीर मृत्यु के पश्चात् किसी काम में नहीं आता। अतः मानव की उपयोगिता सिद्ध करने के लिये इसी जीवन में दया, दान, सेवा, परोपकार आदि अनेक महत्वपूर्ण कार्य करने चाहियें।

—योगीराज श्री उमेशचन्द्रजी



विशेष श्रमसाध्य आसन

वृक्षासन

विधि—जमीन पर सीधे खड़े हो जायें। दोनों हाथों को शिर के अगल-बगल ऊपर उठावें। पैर की उँगलियों के आधार पर ही खड़े होना चाहिये। पैरों के तलुवे जमीन को छूने न पायें। श्वासोच्छ्वास चालू रखें। आंखें खुली रखें। समग्र शरीर को तानकर ऊपर की ओर खींचकर रखें। यथाशक्ति अभ्यास करने के पश्चात् हाथों को नीचे लाकर कमर के

अगल-बगल रख दें और तलुओं के आधार पर स्थिर खड़े रहें ।

समय

८ दिन तक २० सेकण्ड । ६ से १४ दिन तक ४० सेकण्ड । १५ से २२ दिन तक ६० सेकण्ड (१ मिनट) तत्पश्चात् आयु, शक्ति और लाभ के अनुसार १॥ मिनट तक अभ्यास बढ़ायें ।

लाभ

हाथ-पैरों का कम्प, नाड़ियों की कमजोरी, छाती का दर्द, पसलियों की दुर्बलता, गले की कमजोरी, पैरों के तलुवों का दर्द, पैरों की उंगलियों की अशक्ति आदि अनेक विकारों के निवारण के लिये यह आसन अत्यन्त अनुकूल है । यदि शरीर की ऊँचाई बढ़ाने की इच्छा हो तो २५ वर्ष की आयु तक इस आसन का अभ्यास करते रहें, निस्सन्देह इच्छापूर्ति होगी । ऊँचाई बढ़ाने वाले और भी अनेक आसन हैं । जैसे पश्चिमोत्तानासन, हलासन, भुजंगासन, उर्ध्व सर्वांगासन आदि । वृक्षासन का साधन महिलाओं के लिये भी अनुकूल है ।

सुप्त वज्रासन

प्रथम प्रकार

विधि=अल्प श्रमसाध्य आसनों के अन्तर्गत वज्रासन के अनुसार करने के पश्चात् हाथों का सहारा लेकर पृथ्वी पर लेट जायें । लेटने के समय में पीठ का भाग और शिर का भाग भूमि का स्पर्श करते रहें । दोनों हाथों को दोनों जानुओं पर रखें । हाथों का स्पर्श भूमि के साथ न हो । इस समय घुटनों से पैरों के फैल जाने की भी सम्भावना है । परन्तु पैर फैलने न पायें । अर्थात् दोनों पैरों को परस्पर रखें । इस समय आंखों को बन्द भी रख सकते हैं और खुला भी रख सकते हैं । श्वास-प्रश्वास की गति चलती

रहे। शरीर में अधिक तनाव भी न रहे और अधिक शैथिल्य भी न रहे—संतुलित स्थिति रहे।

द्वितीय प्रकार

विधि—अल्पश्रमसाध्य आसनों में बताए वज्रासन में लेट जाने के पश्चात् पीठ के भाग को भूमि से हाथों के आधार पर उठाये शिरो भाग का स्पर्श भूमि के साथ रहे। तदुपरान्त दोनों हाथों को लपेटकर छाती के नीचे पसलियों पर रखें। पीठ के भाग को यथासम्भव खिंचा हुआ रखें और जहाँ तक हो सके, शिर को कमर के पास लाने का प्रयास करें। शिर भूमि से पूर्ववत् लगा रहे। यह आसन जब ठीक रूप से होने लगता है, तब पैर जानु, पेट, पसलियां, छाती, गला मंह, आंखें शिर आदि शरीर के ऊपरी भाग के अवयवों पर अच्छी तरह तनाव पड़ना है। जितना ही अधिक तनाव होता है, उतना ही अधिक लाभ मिलता है। श्वासोच्छ्वास चालू रखें। आंखों को चाहे बन्द रखें; चाहे खुला रखें।

समय

४ दिन तक आध मिनट। ५ से ८ दिन तक १ मिनट। ९ से १६ दिन तक १॥ मिनट। १७ से २५ दिन तक २ मिनट। तदुपरान्त आयु, शक्ति और लाभ के अनुसार ५ मिनट या इससे भी अधिक समय तक बढ़ा सकते हैं। यह आसन सभी स्त्री-पुरुष कर सकते हैं। गर्भवती स्त्रियां न करें।

विशेष सूचना

सुप्त वज्रासन के अभ्यास के समय पैरों के स्नायुओं में अधिक तनाव आने के कारण बहुतेरे स्त्री-पुरुष इस आसन के अभ्यास को छोड़ भागते हैं। ऐसे लोगों को समझना चाहिये कि जैसे ज्वर कड़वी दवा से दूर होता है, उसी तरह इस आसन का अभ्यास करते समय यदि कुछ दिनों तक कुछ मात्रा में कष्ट उठाना पड़े तो भी घबराना नहीं चाहिये और भविष्य में

आने वाले आरोग्य, सुख और लाभ पर विचार कर इस क्षणिक कष्ट को आशीर्वाद के समान समझना चाहिये और आनन्द तथा निर्भयता के साथ इस आसन का अभ्यास निरन्तर चालू रखना चाहिये ।

लाभ

यह आसन पृष्ठ भाग के दर्द हेतु रामबाण है । पाचन क्रिया बढ़ती है जिससे कब्जीयत दूर हो जाती है । मूर्च्छा का उपचार होता है । पैर मजबूत बनते हैं ।

सुप्त धनुरासन

प्रसार्य पादौ भुवि दण्डरूपौ करो च पृष्ठं धृतपादयुग्मम् ।

कृत्वा धनुस्तुल्यपरिवर्तिताङ्गं निधाय योगी धनुरासनं तत् ।

—वे सं. २.१८

विधि—पेट के बल जमीन पर लेट जायें । दोनों पैरों को घुटनों से मोड़कर बायें हाथ से बायें पैर की पिण्डली और दाहिने हाथ से दाहिने पैर की पिण्डली को पकड़ रखें । श्वास को फेफड़ों में भर लें । शिर, छाती और नाभि के नीचे के भाग (कन्धस्थान) तथा पैरों को जमीन से ऊपर उठा रखें । केवल पेट का भाग जमीन से लगा रहे । तत्पश्चात् श्वासोच्छ्वास चालू रखें । आंखें खूली रखें । शरीर को तानकर रखें । इस समय पैरों के कमर के पास आ जाने की सम्भावना है, किन्तु उन्हें आने न दें और शरीर को धनुष के आकार के समान बना रखें । पैरों में और हाथों में तनाव अच्छी तरह रखें । तत्पश्चात् श्वास को फेफड़ों में भरकर, हाथों से पैरों का छोड़कर सारे शरीर को जमीन पर लिटा दें । आसन का अभ्यास परिपक्व हो जाने के पश्चात् आसन की स्थिति में शरीर के अगले और पिछले भाग को झूले की तरह नीचे और ऊपर ले जा सकते हैं और अगल-बगल घूमा भी सकते हैं ।

समय

१० दिन तक २ बार । ११ से १५ दिन तक ३ बार । १६ से २२ दिन तक ४ बार । तत्पश्चात् शक्ति, आयु और लाभ के अनुसार ६ बार तक बढ़ा सकते हैं ।

लाभ

इस आसन से समग्र शरीर को यथेच्छ रूप में व्यायाम मिल जाता है । विशेषकर गला, मेरुदण्ड और कमर की कमजोरी मिटाने के लिये यह आसन अत्युत्तम है । इससे छाती का भाग विकसित और विशाल होता है । यकृतविकार, मूत्रपिण्ड, मूत्राशय और अण्डकोश का विकार, शिश्नेन्द्रिय की निर्बलता आदि अनेक व्याधियां दूर हो जाती हैं पथरी रोग से मुक्ति दिलाने में यह आसन बड़ी मदद करता है । पेशाब रुक-रुक कर आना, पेशाब में जलन तथा पेशाब के वेग को रोक रखने में असमर्थता आदि व्याधियां पूर्णतया दूर हो जाती हैं । अधिकांश लोगों का शरीर वृद्धावस्था में झुक जाता है, किन्तु इस आसन के अभ्यास से वृद्धावस्था में भी शरीर कसीला और तना हुआ रहता है । युवावस्था के प्रायः सभी लक्षण वृद्धावस्था में भी विद्यमान रहते हैं । बवासीर के रोगियों को भी यह आसन अतीव लाभ पहुंचाता है और वायु प्रकृति प्रधान स्त्री-पुरुषों के लिये तो यह आसन आशीर्वाद के समान है । पसीने और मूंह की दुर्गन्ध, गले का दर्द, भोजन में अरुचि आदि विकार सदा के लिये समाप्त हो जाते हैं । इसके अतिरिक्त और भी अनेक लाभ इस आसन का अभ्यास करते रहने से प्राप्त होते हैं ।

पर्यंकासन

विधि—जमीन पर बैठकर दोनों पैर सामने की ओर फैला दें । फिर दाहिने पैर को घुटने से मोड़कर बाहर की ओर से जांघ से चिटकते हुए रखें । इसी प्रकार बायें पैर को बायें घुटने से मोड़कर बायीं जांघ के समीप

१८२

उमेश योगदर्शन

चिटकते रखें। कूल्हे जमीन को स्पर्श करते रहें। पैर के पंजे सीधे रहें एड़ियाँ कटिप्रदेश का स्पर्श करती रहें। अब पीठ के बल पर हाथों के सहारे जमीन पर लेट जायें। खोपड़ी का अग्र भाग भी जमीन को छूता रहे। छाती के ऊपर हाथों को इस प्रकार रखें कि एक दूसरे हाथ की हथेली एक दूसरे हाथ की बांह पकड़े रहे। श्वास समान रूप से चलता रहे। इस स्थिति को थोड़ी देर तक बनाये रखें, फिर हाथों को छाती पर से हटाकर उनके सहारे से बैठने की स्थिति पर आ जायें और धीरे से मुड़े पैरों को सीधा कर लें।

समय

८ दिन तक ३० सेकंड, ८ से १५ दिन तक १ मिनट, १५ से २५ दिन तक २ मिनट, उसके बाद तीन मिनट तक अभ्यास बढ़ायें।

लाभ

इससे फेफड़े तथा पैरों का अच्छा व्यायाम हो जाता है। जिन लोगों को सुप्त वज्रासन कठिन लगता हो वे इस आसन से सुप्त वज्रासन के लाभ प्राप्त कर सकते हैं।

गरुडासन

विधि-जमीन पर सीधे खड़े हो जायें। बायें पैर को सीधा रखें और दाहिने पैर को घुटने से मोड़कर बायें पैर से लपेट लें और बायें तथा दाहिने हाथ को भी परस्पर लपेट लें। दोनों हाथों के अंगूठों को मिलाकर नासाग्र भाग में लगायें। आंखें खुली रखें। श्वासोच्छ्वास चालू रखें। जहां तक हो सके, शरीर को सीधा रखें। बायां पैर घुटने से मुड़ने न पाये। इसी प्रकार दूसरे अंग से भी करें।

समय

८ दिन तक १५।१५ सेकण्ड। ९ से १६ दिन तक ३०।३० सेकण्ड।

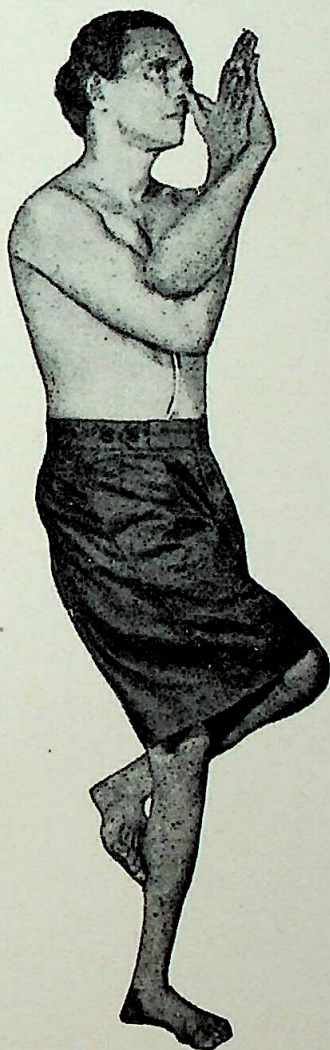


Supta Dhanurasana
सुप्त धनुरासन

[184]

Paivyanakasana
पर्यंकसन

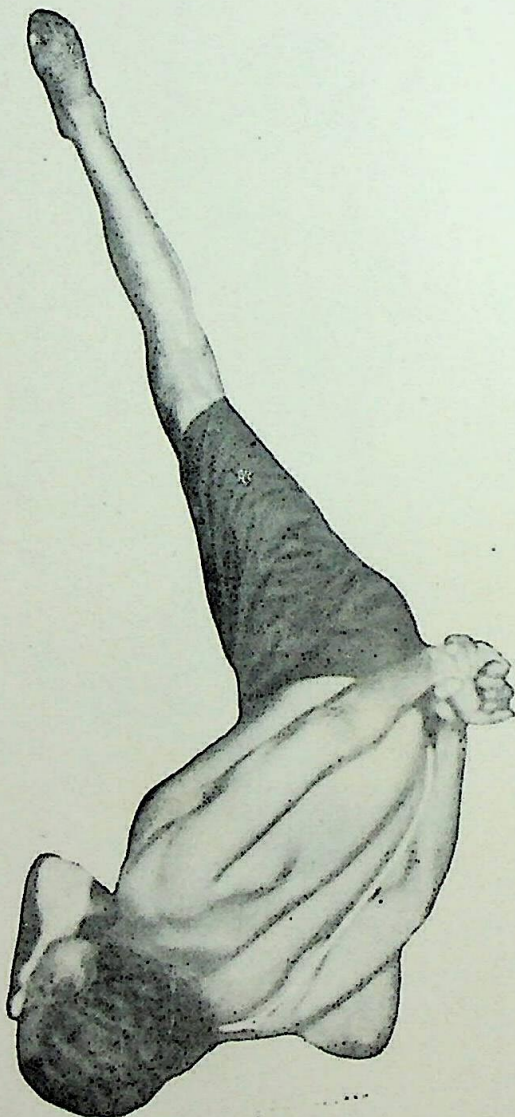




Garudasana
गरुडासन

[186]

Viryastambhanasana
वीर्यस्तम्भनासन



तदुपरान्त आयु, शक्ति और लाभ के अनुसार १।१ मिनट तक बढ़ायें ।

लाभ

सभी स्त्री-पुरुष इस आसन को कर सकते हैं । इसके अभ्यास से पैरों के स्नायु नवीन शक्ति से भरपूर हो जाते हैं । शरीर की गठन संतुलित स्थिति में आ जाती है । जानुओं और पिण्डलियों की पीड़ा मिटती है । हाथों की कमजोरी दूर होती है । मन को एकाग्र बनाने में यह अतीव सहायक होता है । जो लोग चंचल मनोवृत्ति के हैं, उन्हें यह आसन हितैषी मित्र की तरह सहयोग प्रदान करेगा और मन को सुस्थिर बनायेगा । आसन के अभ्यास—काल में मन में शुभ विचार रहने चाहियें । इस आसन से शरीर की निर्बलता दूर हो जायेगी ।

वीर्यस्तम्भनसान

विधि—पहले सीधे जमीन पर खड़े हो जायें । दोनों पैरों को लगभग ३॥ या ४ फीट के अन्तर पर रखें । तत्पश्चात् दोनों हाथों को कमर के पिछले भाग पर ले जाकर बायें हाथ से दाहिने हाथ की कलाई पकड़ लें । श्वास को फेफड़ों में भर लें । तदुपरान्त बायें पैरको घुटने से मोड़कर रखें और उसके अंगूठे से नाक का स्पर्श करें । श्वास-प्रश्वास चालू रखें । यथाशक्ति इस स्थिति में रहने के पश्चात् श्वास को फेफड़ों में भरकर सीधे खड़े हो जायें । पैर के अंगूठे का नाक से स्पर्श कराते समय दाहिने पैर को बिलकुल सीधा रखें; वह घुटने से मुड़ने न पाये । छाती को फुलाकर और समग्र शरीर को तना हुआ रखें । आंखें बन्द रखें । पेट को दबाकर रखें । दोनों पैरों को भली भांति स्थिर रखें; वे हिलने-डुलने न पायें । ऊपर आने के बाद श्वासो-च्छ्वास चालू रखें । यह वीर्य-स्तम्भनसान का बायें अंग का अभ्यास हुआ । इसी विधि से दाहिने अंग का अभ्यास पूरा होने पर ही यह आसन सम्पूर्ण होता है ।

समय

१० दिन तक ६।६ सेकण्ड । ११ से २० दिन तक १०।१० सेकण्ड । २१ से ३० दिन तक २०।२० सेकण्ड । तदुपरान्त आयु, शक्ति और लाभ के अनुसार ३०।३० सेकण्ड तक अभ्यास बढ़ायें ।

लाभ

यह आसन अतीव महत्त्वपूर्ण है । यह वृद्धावस्था को भगा देने वाला और युवावस्था को प्रेमपूर्वक संरक्षण प्रदान करने वाला है । इस आसन से स्थूल और सूक्ष्म इन्द्रियां सतेज होती हैं और ओजस् यथेष्ट रूप में बढ़ता जाता है । धातुक्षय के कारण कुपित वायु से और मिठाई आदि शर्कराप्रधान वस्तुओं के अधिक परिमाण में खाने से जो मधुमेह उत्पन्न हो जाता है, वह मिट जाता है । निद्रानाश, लघुश्वास, देह में दुर्गन्धि, अंगों में ग्लानि, गले में घरघराहट, अकस्मात् श्वास का अवरोध, कभी शरदी और कभी गरमी का अचानक परिवर्तन होते रहना, बिना कारण अतिक्षुधा लगना, शरीर में बेचैनी जैसी मालूम पड़ना, जीर्णज्वर, स्थूल काया, सूखी खांसी, मलबद्धता आदि अनेक विकार इस आसन के अभ्यास से मिट जाते हैं । इसका जैसा नाम है, उसी तरह वीर्य स्तम्भन के लिये यह आसन अप्रतिम है । इसके अतिरिक्त इस आसन के अभ्यासी की सन्तान नीरोग, वीर्यवान्, ओजस्वी, तेजस्वी, और बुद्धि-प्रतिभा से सम्पन्न होती है । प्लीहोदर, बद्धोदर, जलोदर आदि अनेक रोगों को मिटाने के लिये यह आसन अतीव उपयोगी है । अति-निद्रा रोग, उबकाई, अशक्ति, शरीर में रक्ताल्पता, हाथ-पैरों के तलुवे शीतल रहना, वीर्य का पतलापन, अशुद्ध वीर्य आदि अनेक व्याधियां मिट जाती हैं । कुपित हुआ तथा शूल और शोथ उत्पन्न करने वाला अधोगात्री वायु अण्डकोशों में पहुंच कर जानु और शिश्नेन्द्रिय की सन्धि में अण्डकोश-वाहिनी घमनी आदि स्थानों में जाकर और उन्हें दूषित बनाकर अण्डकोश की वृद्धि करता है । यह रोग भी इस आसन से पूर्णतया मिट जाता है तथा

अन्य अनेक लाभ इस आसन से प्राप्त होते हैं। स्त्रियाँ भी इस आसन को निरापद कर सकती हैं। उन्हें भी इससे यथोचित लाभ मिलेगा।

पार्श्वपादासन

प्रथम प्रकार

विधि—जमीन पर पीठ के बल लेट जायें, हाथों को कंधों की सीध में बढ़ाकर कुहनी पर से मोड़कर मुट्ठियाँ बन्द करते हुए कानों के समीप ले जायें। फिर दाहिनी पैर का तलुवा बायें पैर के घुटने पर रखें और दाहिने पैर को बायीं ओर तब तक फिरायें जब तक कि दाहिना घुटना जमीन को न छू ले तथा चेहरे को दाहिनी ओर मोड़ते हुये दाहिनी ओर दृष्टिपात करें। श्वासोच्छ्वास चालू रखें। हाथों को जमीन से न उठायें। बायें पैर को सीधा रखें। इस स्थिति को लगभग १५ सेकन्ड बनाए रखें। फिर इसी प्रकार दूसरी ओर की क्रिया भी सम्पन्न कर लें।

द्वितीय प्रकार

पैरों की स्थिति छोड़कर प्रथम प्रकार की स्थिति में स्थित हो जायें, इसमें पैर घुटनों से मोड़कर पैर के तलुवे भूमि पर टिक जायें। दोनों पैरों के मध्य एक फुट का अन्तर रखें। अब दोनों घुटनों को दाहिनी ओर कर तथा बाईं ओर चेहरा मोड़कर उसी ओर दृष्टि पात करें। ऐसा करते समय बायाँ घुटना दाहिने पैर के तलुवे को स्पर्श करेगा और दाहिना घुटना फर्श को छुवेगा। यह स्थिति कुछ समय तक बनाये रखकर इस क्रिया को दूसरी ओर भी दुहरायें। इस अभ्यास में श्वास-प्रश्वास सामान्य रीति से चालू रहेगा। इस स्थिति में आवश्यक समय तक रहने के बाद दाहिनी ओर मुड़ जायें और चेहरे को दाहिनी ओर कर लें। इस हालत में दाहिना घुटना बायें पैर के तलुवे को स्पर्श करेगा और बायाँ घुटना भूमि पर टिकेगा।

समय

दस दिन तक तीन बार हर ओर ३० सेकंड तक । ११ से २० दिन तक एक मिनट और आयु योग्यता और शक्ति अनुसार अधिकतम डेढ़ मिनट ।

तृतीय प्रकार

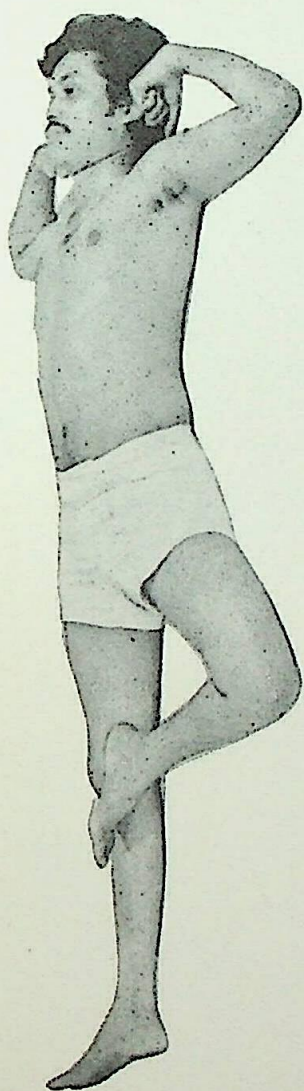
विधि—पावों की स्थिति छोड़कर प्रथम प्रकार की स्थिति में स्थित हो जावें । फिर दोनों पावों को घुटनों से मोड़कर, मुड़ी हालत में पेड़ तक ले आयेँ घाने की पिंडलियां जांघों को स्पर्श करती हों । दोनों पैरों को पास में रखें घुटने एक दूसरे को स्पर्श करते हों फिर बाईं ओर मुड़ जायें और दृष्टि को दाहिनी ओर कर लें । इस स्थिति में बाईं जांघ का बाह्य भाग भूमि को स्पर्श करेगा । इस स्थिति में लगभग १५ सेकंड रहकर उसी प्रक्रिया को दूसरी ओर भी दुहरायें । अभ्यास में श्वास प्रश्वास सामान्य रहे ।

लाभ

इस आसन से पीठ और रीढ़ का अच्छा व्यायाम हो जाता है । इससे कटि प्रदेश, पीठ और कंधों का दर्द दूर हो जाता है । पाचक प्रक्रिया तीव्र बनती है । गैस से छुटकारा मिलता है । पेड़ की चर्बी कम होती है । जिगर; प्लीहा, पेनाक्रीस ग्रंथियाँ तथा पाचन ग्रंथियाँ सक्रिय बनती हैं ।

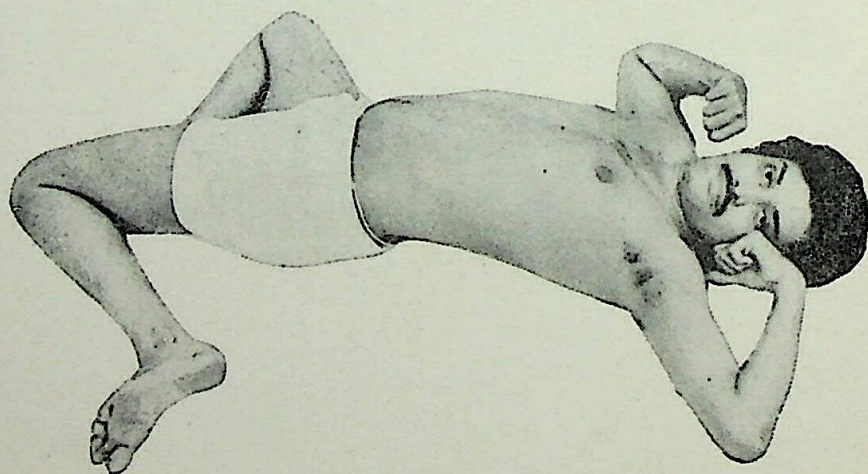
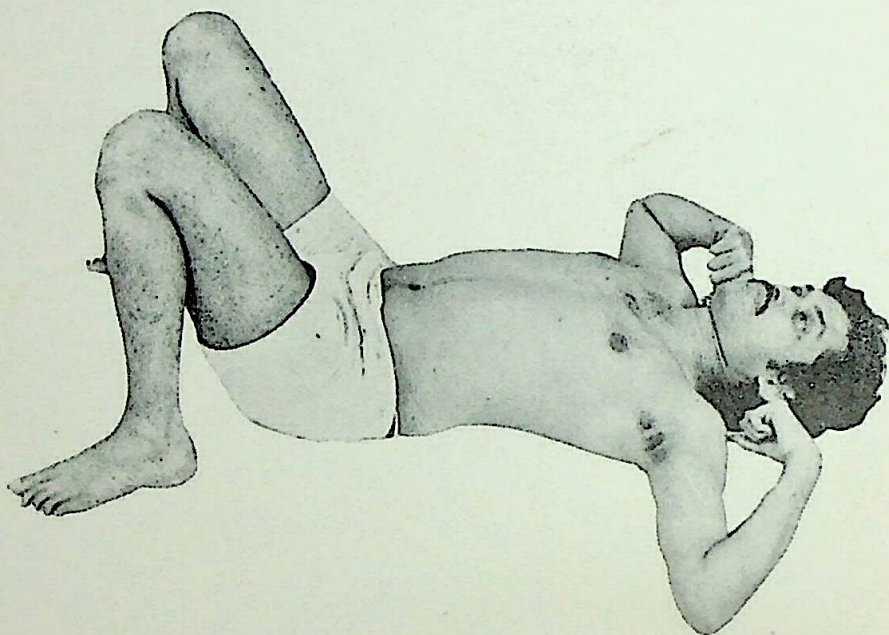
भद्रासन

विधि—भूमि पर सामने की ओर पैर फैलाकर बैठिये, पैरों को घुटनों से मोड़कर पैर के तलुओं को आपस में मिलाकर गुदद्वार की ओर लाइये । इस क्रिया का अभ्यास करते समय यह संभव है कि घुटने जमीन से ऊपर उठें । उनको सम्बन्धित हथेलियों से फर्श पर चटकाने की कोशिश करें ।

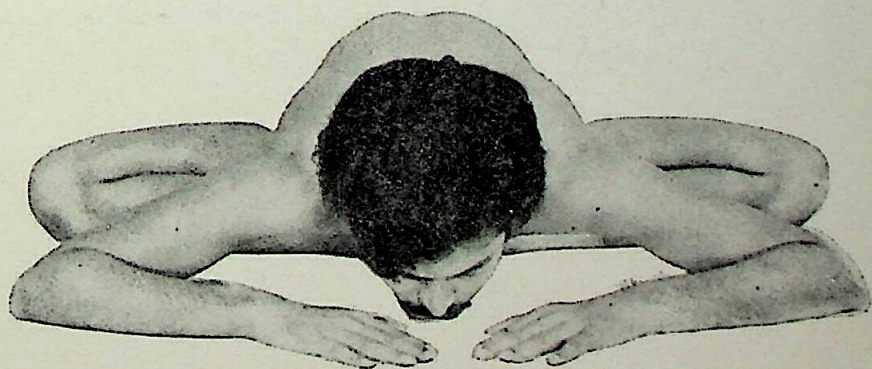
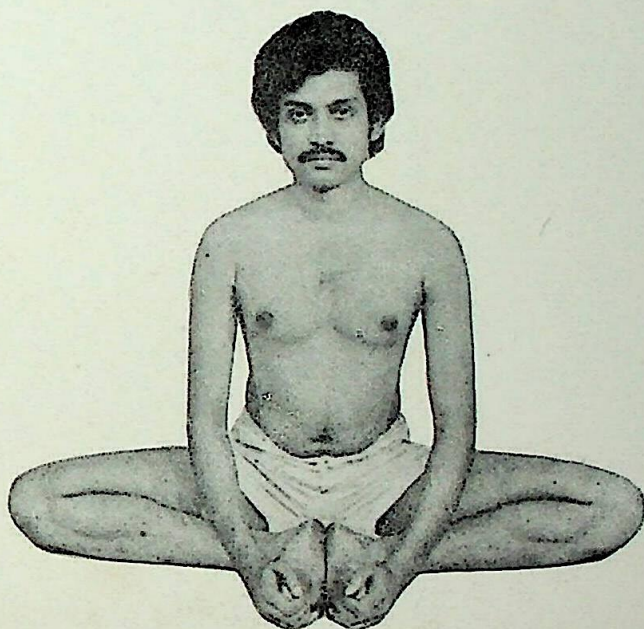


Pada Parshwasana
(Variation : 1)
पाद पार्श्वसन (प्रकार : १)

[190ब]



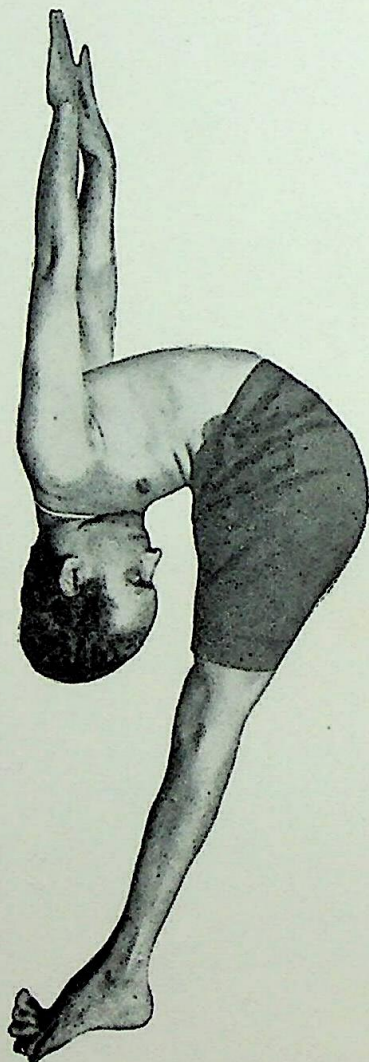
Pada Parshwasana
(Variation : 2)
पाद पार्श्वसन (प्रकार : २)



Bhadrasana

भद्रासन

[190 द]



Halasana
हलासन

प्रथम खंड

१६१

जब घुटने फर्श पर टिक जायें तो दोनों हाथों से पैर के पंजों को पकड़ें। छाती फुलाकर सीधे बैठिये। रेचक कर आगे की ओर झुककर पहले माथे को जमीन पर लगाने का प्रयत्न करें फिर नाक को तथा अन्त में ठुड़ी जमीन पर लगायें। अन्ततः छाती पैरों को छू लेगी। श्वास-प्रश्वास की सामान्य गति रहने दें। लगभग १५-२० सेकंड तक इस स्थिति में रहने के बाद फिर से बैठने की स्थिति में आकर पैरों को स्वतन्त्र कर सुस्था लें।

समय

८ दिन तक १५ सेकंड। ९ से १५ दिन तक ३० सेकंड। १५ से २५ दिन तक एक मिनट। उसके बाद २ मिनट तक समय बढ़ाया जा सकता है।

लाभ

इस आसन के अभ्यास से साइटिका का दर्द तथा पीठ का दर्द दूर हो जाते हैं। इसके नियमित अभ्यास से मूत्र संबंधी सभी रोग दूर हो जाते हैं। स्त्रियाँ भी इस आसन का अभ्यास कर सकती हैं। इससे मासिक धर्म की अनियमितता दूर हो जाती है और गर्भाशय बराबर काम करने लगता है। पेडू के अवयव दृढ़ तथा कार्यरत हो जाते हैं।

हलासन

प्रथम प्रकार

विधि-जमीन पर चित लेट जायें, दोनों पैरों को हाथों के बल पर उठाकर पीछे की ओर ले जायें। पैर सीधे रहें, घुटनों से मुड़ने न पायें। श्वासोच्छ्वास चालू रखें। आंखें बन्द रखें अथवा खुली रखें। हाथों को पीठ की ओर जमीन पर सीधा रखें। मेरुदण्ड को यथासम्भव कमर की ओर खिंचा हुआ रखें। इस अवस्था में ठुड़ी को कण्ठकूप में लगाकर रखें।

द्वितीय प्रकार

विधि—पहले प्रकार में बताये अनुसार करने के पश्चात् हाथों के पंजों को परस्पर भिड़ाकर शिर के ऊपर जमीन का स्पर्श कर के रखें ।

तृतीय प्रकार

विधि—पहले प्रकार में बताये अनुसार हलासन करने के पश्चात् दोनों हाथों को शिर की ओर सीधा करें और जमीन से सटाकर हाथों की उँगलियों को पैरों की उँगलियों के पास रखें । सर्वाङ्गासन का जो पहला प्रकार बताया गया है, उसका अभ्यास अधिक समय तक करें । शेष दूसरे और तीसरे प्रकारों को समयानुसार कम समय तक भी कर सकते हैं । जिन भाई-बहनों को पहले प्रकार की अपेक्षा दूसरा और तीसरा प्रकार अधिक अनुकूल हो, वे दूसरे और तीसरे प्रकार का अभ्यास कर लाभ उठा सकते हैं ।

समय

६ दिन तक १ मिनट । ७ से १२ दिन तक १॥ मिनट । १३ से १८ दिन तक २ मिनट । तदनन्तर शक्ति, आयु और लाभ के अनुसार ५ मिनट तक बढ़ा सकते हैं ।

लाभ

‘यथा नाम तथा गुणाः’ के अनुसार इस आसन के अभ्यास से शरीर के सर्वाङ्ग को लाभ पहुँचता है । मेरुदंड के सभी विकार नष्ट हो जाते हैं और उसमें लाघव (लचीलापन) आ जाता है । गले की शक्ति बढ़ती है । पेट के अनेक विकार नष्ट होते हैं । पैरों के तलुओं के विकार—जैसे कि सूजन, वेदना, जलन आदि—दूर होते हैं । पाण्डुरोगियों के लिये भी यह आसन अतीव लाभकर है । रक्तपित्त के दोषवालों को यह आसन आशीर्वाद के समान है । शिश्नेन्द्रिय और गुदा के रोगों पर यह आसन रामबाण का प्रभाव डालता है । नाक

और कान के ज्ञानतन्तु एवं क्रियातन्तु बलवान होते हैं तथा अशुद्ध रक्त शुद्ध होता है। श्वास-खाँसी वालों को भी यह लाभप्रद है। कन्धों और पसलियों में पीड़ा, हाथ पैरों में जलन आदि व्याधियाँ निर्मूल हो जाती हैं। आरंभ का राजयक्ष्मा आदि अनेक कठिन रोग इस आसन से मिट जाते हैं। अण्डकोश और शिश्न में पीड़ा, मूँथुन में असमर्थता आदि विकारों से पीछा छूट जाता है और शरीर सर्वांग सुन्दर और सुगठित बन जाता है। शरीर का वजन न कम होता है और न अधिक; बल्कि आयु और आकार के अनुसार सम और संतुलित स्थिति में रहता है। बहिर्नों के लिये भी यह आसन लाभदायक है। स्त्रियों के गर्भाशय और योनि-स्कन्ध के विकार पूर्णतया नष्ट हो जाते हैं। पेट के क्रियाशील अवयव सशक्त बनते हैं स्तन-रोगों को मिटाने के लिये भी यह आसन अनुकूल है।

विस्तृतपाद सर्वांगासन

प्रथम प्रकार

विधि—सर्वांगासन के प्रथम प्रकार में बताये अनुसार करने के पश्चात् सर्वांगासन के तीसरे प्रकार में बताये अनुसार दोनों पैरों के पास दोनों हाथों को रखें। तदुपरान्त दोनों पैरों से जमीन का स्पर्श करते हुए जहाँ तक हो सके; दोनों ओर फैलायें। उस समय पैरों के अंगूठों को हाथों से दृढ़तापूर्वक पकड़े रहें। पैर घुटने से तनिक भी मुड़ने न पायें और शरीर को पीछे की ओर जाने न दें। हाथ-पैरों को तना हुआ रखें। आँखें खुली भी रख सकते हैं और बन्द भी रख सकते हैं। श्वासोच्छ्वास चालू रखें। ठुड्डी को कण्ठकूप में लगाकर रखें। शरीर को स्थिर रखें; वह हिलने-डुलने न पाये।

द्वितीय प्रकार

विधि—विस्तृत पाद सर्वांगासन प्रथम प्रकार के समान ही दूसरा

प्रकार है। अन्तर केवल इतना ही है कि पाठकों और साधकों की सुविधा के लिये तथा उन्हें सन्देह मुक्त रखने के लिये इस आसन का अभ्यास करते समय शरीर के सिर, छाती, हाथ, पैर, पीठ, कमर आदि अवयवों की स्थिति कैसी रहती है, यह सब प्रत्यक्ष बताने के लिये ही दो अलग-अलग चित्र दिये गये हैं, आसन एक ही है।

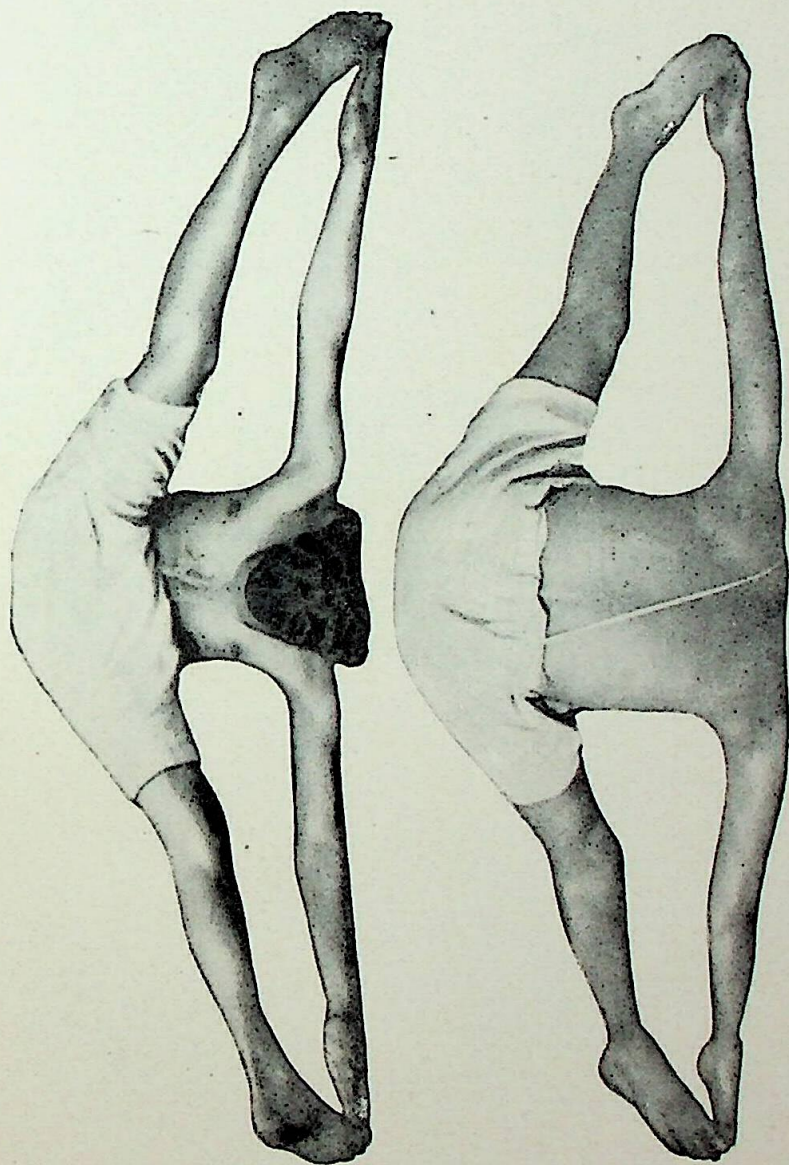
समय

१० दिन तक आध मिनट। ११ से २० दिन तक १ सिनट। तदुपरान्त शक्ति आयु और लाभ के अनुसार २ से ३ मिनट तक बढ़ा सकते हैं।

लाभ

अर्धांग वायु से पीछा छुड़ाने के लिये इस आसन का प्रभाव अप्रतिहत है। इससे पैरों का कम्प रोग मिटता है। शरीर की बेचैनी दूर होती है। मुंह, नाक और आंखों की बीमारी के लिये भी यह आसन अतीव अनुकूल है। इसके अभ्यास से शरीर की कान्ति बढ़ती है। चर्मरोग मिटाने के लिये भी यह आसन हितकर है। इसके अभ्यास से आरम्भ का कैंसर (नासूर) रोग दूर होता है। कण्ठ की सूजन मिट जाती है। और आरम्भ का टान्सिल (गलगंड) भी भाग खड़ा होता है। मुंह के छाले मिट जाते हैं और अन्य मुख-रोगों से भी यह आसन सुरक्षित रखता है। इसके अभ्यास से ढीले दांत भी मजबूत होते हैं। आंखों की दृष्टि बढ़ती है। स्मरण शक्ति अच्छी रहती है। श्वास-नलिका भी मजबूत होती है। बगलों का दर्द दूर होता है। मोतीझाला को दूर करने के लिये यह आसन अनुकूल है। बगल तथा जानुमूल की गांठें नष्ट हो जाती हैं। जठराग्नि तीव्र बनती है। अत्यधिक कामवासना नियन्त्रण में आ जाती है। सप्तधातुओं में एकत्र अधिक परिमाण में वात, पित्त और कफ सम अर्थात् संतुलित स्थिति में आ जाते हैं। घनुर्वात के रोगियों के लिये भी यह आसन परम लाभकर है। स्वरभंग

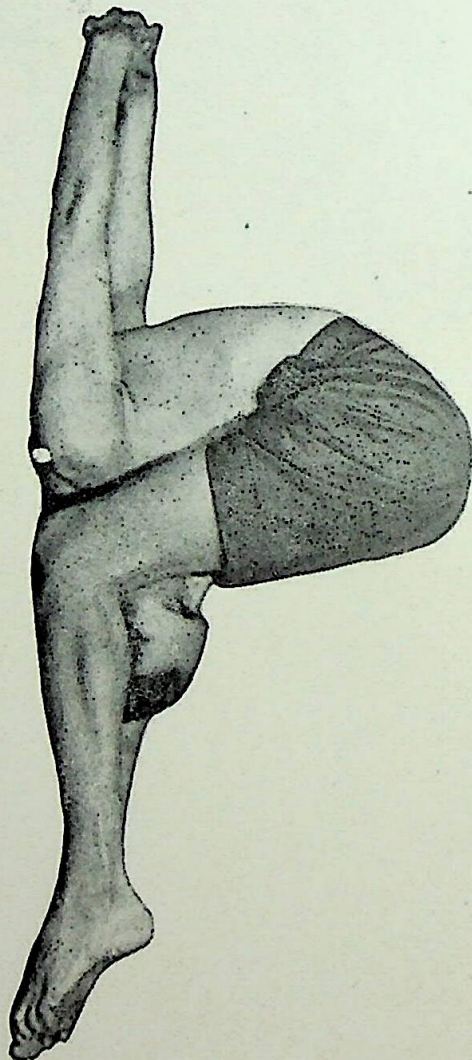
[195]



Vistrutapada Sarvangasana
विस्तृत पाद सर्वांगासन

[196]

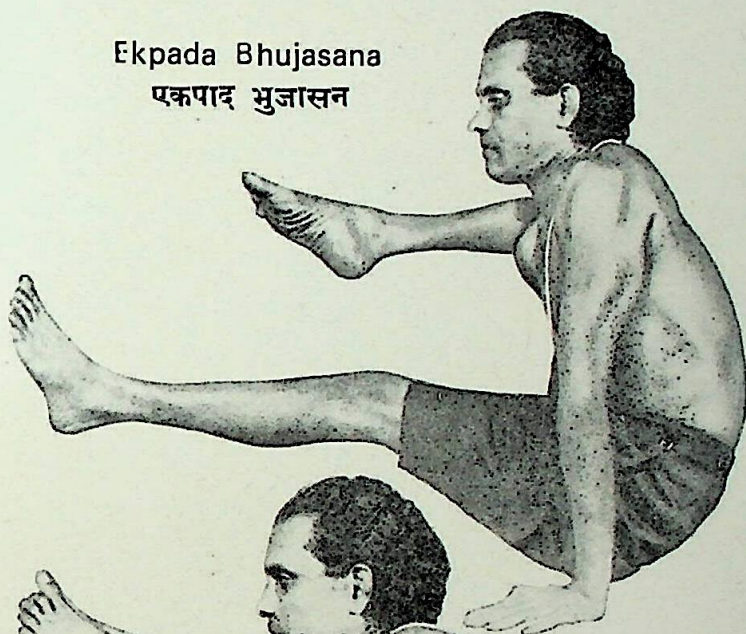
Karna Pidanasana
कर्ण पिङ्गनासन



[197]

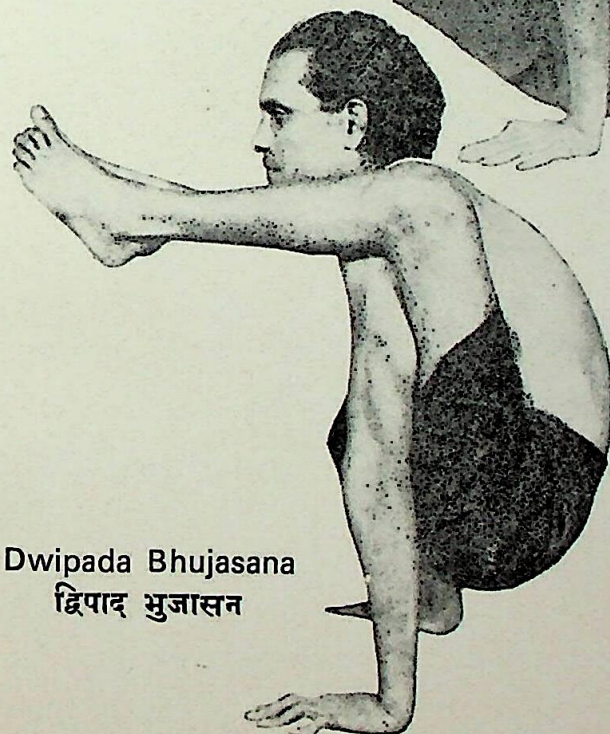
Ekpada Bhujasana

एकपाद भुजासन

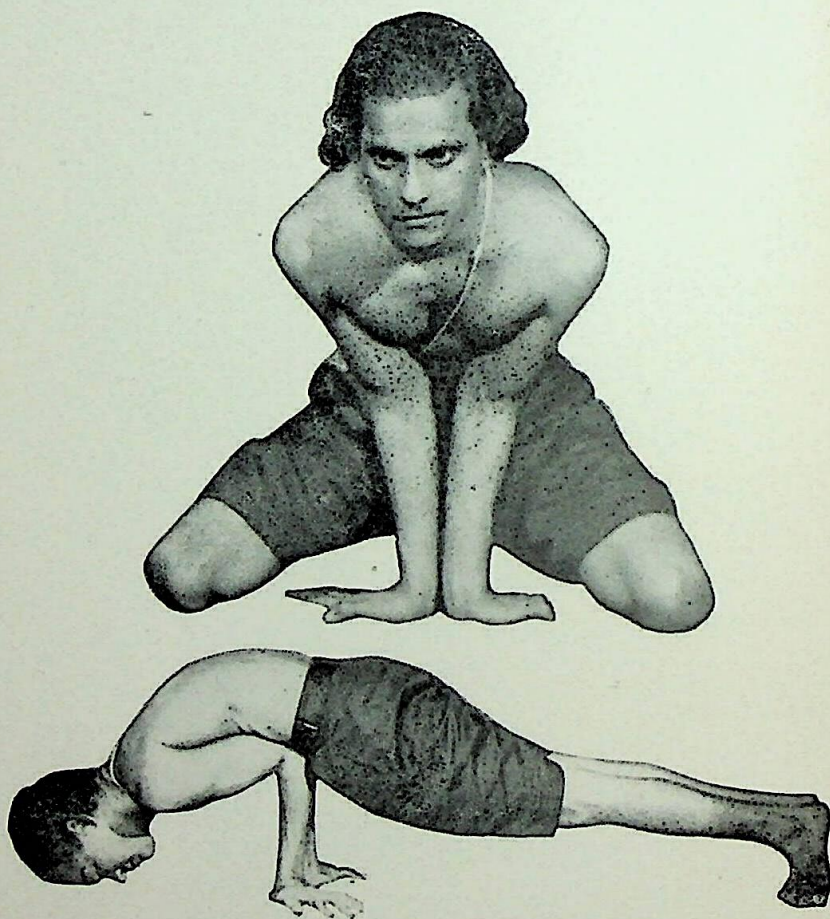


Dwipada Bhujasana

द्विपाद भुजासन



[198]



Hansasana
(First & Second Stage)

हंसासन
(प्रथम स्थिती-द्वितीय स्थिती)

का विकार नष्ट होकर स्वर कोयल के समान मधुर और आकर्षक बन जाता है। इनके अतिरिक्त और भी अनेकशः लाभ इस आसन की साधना से मिलते हैं। यह आसन जितने परिमाण में पुरुषों को लाभ पहुंचाता है, उतने ही परिमाण में स्त्रियों के लिये भी लाभकर है। इसका समुचित अभ्यास करके इसके महत्व, गुण और लाभों से परिचय प्राप्त किया जा सकता है।

कर्णपिडनासन

विधि—जमीन पर चित लेट जायें। दोनों नासा-पुटों से श्वास फेफड़ों में भरकर दोनों पैरों को शनैः शनैः ऊपर उठाते हुए पीछे की ओर ले जाकर रख दें। फिर दाहिनी जानु से दाहिने कान को और बाईं जानु से बायें कान को दबा रखें। आंखें खुली रखें। समग्र शरीर को तना हुआ रखें। दोनों हाथों को पीठ की ओर जमीन पर सीधा तना हुआ रखें। हाथों की उंगलियां परस्पर फंसी रहें। श्वासोच्छ्वास चालू रखें। दोनों घुटनों को जमीन पर लगा दें। आरम्भिक अभ्यासियों के पैर जमीन को छू न सकेंगे, परन्तु अभ्यास निरन्तर चालू रखने से ही कुछ दिनों में पैर जमीन को छूने लगेंगे। इस आसन के अभ्यास के समय ठुड्डी को कंठ-कूप से लगाये रखें। यथाशक्ति अभ्यास करने के पश्चात् श्वास को फेफड़ों में भरकर पैरों को धीरे-धीरे जमीन पर लगाकर रख दें। तदनन्तर श्वासोच्छ्वास चालू रखे। जिन लोगों के पेट में मेद का परिमाण अत्यधिक होगा, उनसे यह आसन प्रारम्भ में हो न सकेगा। परन्तु अभ्यास के सतत जारी रखने पर मेद क्रमशः कम होता जायेगा और आसन आ अभ्यास यथावत् होने लगेगा।

समय

१० दिन तक १० सेकंड। ११ से १८ दिन तक १५ सेकंड। १९ से २५ दिन तक २५ सेकंड। तदुपरान्त शक्ति, आयु और लाभ के अनुसार २ मिनट तक अभ्यास बढ़ायें। महिलाओं के लिये भी यह आसन अनुकूल है।

लाभ

आरम्भिक कर्णशूल और आरम्भिक बधिरत्व पूर्णतया नष्ट हो जाता है। पुराने कर्णशूल और पुराने बधिरत्व (बहिरापन) का निवारण हो जाने की भी सम्भावना है। आमविकार, अजीर्ण, कफ-पित्तादि का आधिक्य, जड़ता, तन्द्रा और कभी-कभी वमन होना, शरीर में ज्वर का भान होना आदि विकारों से पूर्णतया छुटकारा मिल जाता है। हाथ-पैर के तलुवों में शीतलता रहना, शीत स्पर्श का ज्ञान न होना, पैरों में बेदना होना और शून्यता रहना, जानु और उसमें अत्यन्त ग्लानि, शरीर में मेदवृद्धि आदि व्याधियों का पूर्णतया प्रशमन हो जाता है। पसलियों में ऐंठन, पसीने के न निकलने पर अधिक पीड़ा, शराब आदि दुर्व्यसनों से उत्पन्न शिरोवेदना, भ्रम, संज्ञाहीन हो जाना, हृदय में पीड़ा, वातादिजन्य रोग, यकृत, प्लीहा, आंतों, फेफड़ों आदि का विकार मिटाने के लिये यह आसन अत्युत्तम है और भी अनेकशः लाभ इस आसन के अभ्यास से उपलब्ध होते हैं।

एकपाद-भुजासन

विधि—सामने की ओर दोनों पैरों को फैलाकर बैठ जायें। तदुपरान्त दाहिने पैर को जानुमूल और घुटने से मोड़कर कन्धे पर रखें। तदुपरान्त दोनों हाथों को कमर के अगल-बगल दृढ़ स्थापित कर उन्हीं के आधार पर फँसलें हुये बायें पैर सहित समग्र शरीर को जमीन से ऊपर उठाना चाहिये। बायां पैर घुटने से मुड़ने न पाये। दाहिने पैर को भी कन्धे से नीचे उतरने न दें। शरीर को ऊपर ले जाने से पहले श्वास को फेफड़ों में भर लें और शरीर को ऊपर उठावें। तत्पश्चात् श्वासोच्छ्वास चालू रखें। आंखें खुली रखें। समस्त शरीर को तान कर रखें। सिर आगे की ओर झुकने न पाये। दाहिनी ओर का इस प्रकार का अभ्यास पूर्ण हो जाने पर बायें पैर से भी वैसी ही क्रिया करें, अर्थात् बायें पैर को जानुमूल और घुटने से मोड़कर बायें कन्धे पर चढ़ायें और दाहिने पैर को सामने फँसला दें। दोनों हाथों को

जमीन पर दृढ़ स्थापित कर उन्हीं के बल पर फँले हुये दाहिने पैर सहित समग्र शरीर को जमीन से ऊपर उठाये। दाहिना पैर घुटने से मुड़ने न पाये और न बायाँ पैर कन्धे से उतरने पाये। शेष क्रिया पहले प्रकार के समान ही है।

समय

= दिन तक २।२ बार। ६ से १६ दिन तक ३।३ बार। तत्पश्चात् आयु, शक्ति और लाभ के अनुसार ४।४ बार तक बढ़ा सकते हैं।

लाभ

मुद्दी बुखार (टाइफाइड) के पश्चात् शरीर फूल जाता और विकृत हो जाता है। इस आसन के अभ्यास से शरीर अधिक न फूलकर संतुलित और सुडील रहता है। कन्धों का दर्द दूर होता है। कूल्हे और कमर के स्नायु सशक्त बनते हैं। पैरों की पिडलियाँ मजबूत होती हैं। घुटनों की सूजन मिटती है। हार्नियाँ का विकार नष्ट होता है। यकृत विकार से पीड़ित लोगों के लिये भी यह आसन अति अनुकूल है।

द्विपाज भुजासन

विधि—दोनों पैरों को सामने की ओर फैलाकर बैठ जायें। तदुपरान्त एक पादभुजासन के अनुसार दाहिने पैर को घटने से मोड़कर दाहिने कन्धे पर रखें और बायें पैर को घुटने से मोड़कर बायें कन्धे पर रखें। दोनों पैरों के तलुओं को परस्पर मिलाकर मुंह के सामने रखें। दोनों हाथों को जमीन पर दृढ़ स्थापित करें एवं श्वास को फेफड़ों में भरकर हाथों के आधार पर शरीर को ऊपर उठायें। तदुपरान्त श्वासोच्छ्वास चालू रखें। आंखों की दृष्टि को पैरों के अंगूठों के सामने रखे। समग्र शरीर को तना हुआ रखें। हाथों का भी सीधा रखें, कुहनी से मुड़ने न पायें। हाथ तथा शरीर हिलने-डुलने न पायें। अभ्यास पूर्ण हो जाने पर शरीर को शनैः

शनैः नीचे लाकर दोनों कूल्हों को जमीन पर रख दें। इस समय अधिक उतावली या जल्दबाजी करने पर कूल्हों में दर्द होने की सम्भावना है।

समय

१० दिन तक १५ सेकण्ड । ११ से २० दिन तक ३० सेकण्ड । २१ से ३० दिन तक ४५ सेकण्ड । तदुपरान्त शक्ति, आयु और लाभ के अनुसार ४५ से ६० सेकण्ड अथवा इससे भी अधिक समय तक बढ़ायें।

लाभ

जिन लोगों को प्यास अधिक सताती हो, आलस्य रहता हो, अन्न देर से पचता हो; शरीर में भारीपन रहता हो। उनके लिये यह आसन अतीव लाभप्रद है। हाथों में, गले में; कन्धों में शक्ति बहुत बढ़ जाती है। कानों की सनसनाहट मिट जाती है। पसलियों, जानुओं और उनके जोड़ों में यदि पीड़ा होती होगी तो मिट जायेगी। गुदा में कतरनौ-जैसी पीड़ा होना, कभी गाढ़ा और कभी पतला मल निकलना, मल के बाहर निकलते समय गुदा-द्वार में शब्द होना और अपान वायु के विकृत हो जाने से मल-विसर्जन अनियमित रूप से होना आदि विकारों में यह आसन निस्सन्देह नितान्त लाभप्रद सिद्ध होगा। मुंह से यदि अधिक परिमाण में थूक या राल निकलती हो और शरदी से गले की आवाज में भी अन्तर आ गया हो, कभी खट्टी, कभी मीठी और कभी कसैली डकारें आती हों तो इस आसन के अभ्यास से बिल्कुल ठीक हो जाती हैं। कमर की पीड़ा अच्छी होती है और किन्हीं स्त्री-पुरुषों की कमर में मेद अधिक होगा तो वह कम हो जायेगा।

हंसासन

प्रथम प्रकार

विधि-दोनों पैरों को घुटनों से मोड़कर घुटनों को जमीन पर रखें।

छाती और शिर को आगे की ओर झुकाकर रखें। तत्पश्चात् दोनों हाथों को टेढ़ा कर कुहनियों को नाभि स्थान पर रखें।

द्वितीय प्रकार

विधि—प्रथम प्रकार के हंसासन करने के पश्चात् श्वास को फेफड़ों में भर कर पहले दाहिने पैर को पीछे की ओर सीधा फैला दें और तुरन्त ही बायें पैर को भी दाहिने पैर की तरह सीधा फैलाकर रखें। तदुपरान्त शनैः शनैः शिर को नीचे की ओर झुकाकर भूमिका स्पर्श करें। श्वास यथा-शक्ति चालू रखें। इस समय हाथों की कुहनियां नाभि से हटने न पायें। हाथ पंर या शरीर के अन्य किसी अङ्ग को ढीला न होने दें। पैरों के घूटने भी मुड़ने न पायें। आंखें खूली भी रख सकते हैं और बन्द भी रख सकते हैं। यथाशक्ति आसन की साधना करने के पश्चात् पूर्ववत् एक-एक पैर को मोड़कर बैठ जायें। पहले शिर को भूमि से उठावें। तदुपरान्त पैरों को सिकोड़ लें। पैरों के सिकोड़ते समय कुंभक करें; अर्थात् श्वास को फेफड़ों में रोक लें। इस आसन को करते समय शरीर के किसी एक ओर लुढ़क पड़ने की सम्भावना है; किन्तु ऐसा होने न पाये। शरीर का समग्र भार हाथ, पैर और शिर पर रखें। हंसासन में इतना ध्यान रखना चाहिये कि पैरों की उंगलियां और शिर का भाग भूमि का स्पर्श करते रहें। इसी को हंसासन कहा जाता है। किन्तु जब शिर और पैरों की उंगलियां भूमि का स्पर्श नहीं करतीं, अर्थात् ऊपर रहती हैं, उस अवस्था में उस आसन का नाम भी बदल जाता है, अर्थात् उसे मयूरासन के नाम से पुकारा जाता है। आसन के अभ्यास के पश्चात् भूमि पर उतरते समय पहले पैरों को सिकोड़ लें और फिर बैठ जायें।

समय

८ दिन तक २० सेकण्ड। ९ से १६ दिन तक ३० सेकण्ड। १७ से २४ दिन ४५ सेकण्ड। तदुपरान्त शक्ति, आयु और लाभ के अनुसार १ मिनट

से १। मिनट तक अभ्यास बढ़ा सकते हैं ।

लाभ

अरुचि अग्निमान्द्य, खांसी कोष्ठवृद्धि आदि मिट जाते हैं । टान्सिल (तालु में सूजन आ जाना) और तालु के मांस में कुपित हुआ कफ 'तालु-कण्ठक' नामक रोग उत्पन्न करता है । यह रोग भी इस आसन के अभ्यास से मिट जाता है । भूख बढ़ जाती है । यद्यपि कुछ स्त्रियों को इस आसन के अभ्यास की आवश्यकता नहीं है, किन्तु बहुतेरी स्त्रियों के लिये यह लाभ-दायक है ।

मयूरासन

धरामवष्टभ्य करद्वयेन तत्कूपरस्थापितनाभिपार्श्व ।
उच्चासनो दंडवदुत्थितः स्यान्मयूः मेतत्प्रवदन्ति पीठम् ॥१॥
— घे. मं

विधि—हंसासन के प्रथम प्रकार की स्थिति में बताये अनुसार करने के पश्चात् दोनों पैरों को शनैः शनैः सीधा करें । पैर जमीन को छूने न पायें और इसी प्रकार सिर का स्पर्श भी भूमि के साथ होने न पाये । समग्र शरीर का भार हाथों के पंजों पर रहे । आंखें खुली रखें । शरीर को ढीला न रखें सर्वांग तना हुआ रहे । श्वासाच्छ्वास चालू रखें । कदाचित् किसी कारणवश श्वास लेते समय शरीर के भूमि पर गिर जाने की सम्भावना हो तो थोड़ी-थोड़ी देर तक श्वास को रोक भी सकते हैं और चालू भी रख सकते हैं । इसी आसन का नाम 'मयूरासन' है । मयूरासन का अभ्यास करते समय शिर और पैर को समान अवस्था में भी रख सकते हैं और शिर की रेखा से पैरों को कुछ ऊपर भी ले जा सकते हैं ।

समय

१० दिन तक १५ सेकंड । ११ मे २० दिन तक ३० सेकंड । तदु-

परान्त शक्ति, आयु, और लाभ के अनुसार ६० सेकंड अर्थात् १ मिनट तक अभ्यास बढ़ा सकते हैं।

लाभ

जिस प्रकार जहर को मयूर पचा जाता है, उसी तरह इस आसन के करने वाले को लाभ प्राप्त होता है; अर्थात् जैसे प्रज्वलित अग्नि पर किसी वस्तु के गिरने से वह भस्म हो जाती है; उसी तरह पेट में पहुँचा हुआ आहार भी भली-भाँति पचकर विशुद्ध रस, रक्त आदि धातुओं का शरीर में निर्माण होता है। शरीर के सभी विकारों का प्रशमन हो जाता है। इसी प्रकार अशुद्ध स्वर्ण, अशुद्ध लोहा और अन्य वस्तुओं की जैसी स्थिति अग्नि में पड़कर होती है, उसी तरह इस आसन के करने और शुद्ध, सात्विक आहार ग्रहण करते रहने से शरीर में निस्सन्देह अधिकाधिक मात्रा में आरोग्यवर्धक और पोषक तत्त्व तैयार होंगे और मल-मूत्रादि विजातीय द्रव्यों का निर्माण बहुत कम परिमाण में होगा; फलतः रक्तादि शरीर निर्मायक धातुओं की स्वभावतः वृद्धि होगी और शरीर बलवान् तथा परिपुष्ट होगा। अन्य कठोर व्यायाम करने वालों को आहार अधिक परिमाण में चाहिये, परन्तु योगाभ्यास करने वालों को अधिक आहार की आवश्यकता नहीं पड़ती। इसका प्रमुख कारण यह है कि योग-साधना से समस्त शरीरगत इन्द्रियाँ और अङ्ग-प्रत्यङ्ग रजोगुण और तमोगुण प्रधान न रह कर सात्विक गुण से ओतप्रोत हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त सभी इन्द्रियों तथा अवयवों में रोगमूलक सप्तधातुओं की अधिक मात्रा में आवश्यकता नहीं रह जाती। कठोर व्यायाम करने वाले अनेकशः लोग मेद रोग और शारीरिक क्षीणता एवं वात-पित्त-कफादि के प्रकोप से पीड़ित पाये जाते हैं। इतना ही नहीं, और भी अनेक लाभ इस आसन में भरे हुए हैं। सभी रोगों का मूल कारण मलावरोध [कब्ज], अपचन, मन्दाग्नि आदि हैं। इस आसन का अभ्यास प्रारम्भ करते ही उपर्युक्त तीनों रोगोत्पादक विकार नष्ट हो जाते हैं। आँखों की ज्योति भी अच्छी रहती है। पसलियों में, गल में,

हाथों में, उंगलियों में असीम शक्ति बढ़ जाती है। उदर का वैश्वानर अग्नि प्रदीप्त हो उठता है, जिसके प्रभाव से शरीर सम-शीतोष्ण रहता है; अर्थात् जहां जितनी गरमी और शरदी की जरूरत रहती है, वहाँ उतनी मिलती रहती है।

मयूरासन कौन न करें ?

अतिसार के रोगी इस आसन को न करें। हाई ब्लडप्रेसर के रोगियों को भी यह आसन वर्जित है। जिनका शरीर विशेष दुर्बल हो तथा जो खांसी और मूर्छा से पीड़ित हों, वे भी इस आसन को न करें। जिनके नेत्रों में अधिक रक्त का संचार हो, अर्थात् जिनकी आंखें लाल रहती हों, उन्हें भी यह आसन हानिकर हो सकता है। जिन स्त्रियों के योनिस्कन्ध गर्भाशय और रजस्-दोष के कारण सन्तानोत्पत्ति न होती हो, उन्हें अवश्य ही इस आसन का प्रयोग-परीक्षण कर देखना चाहिये। इसी प्रकार जिन पुरुषों में पुरुषत्व कौ हीनता हो तथा वीर्याशय कोश की दुर्बलता तथा शिश्नेन्द्रिय की नसों के शैथिल्य के कारण जो सन्तानोत्पत्ति में नितान्त असमर्थ हैं, वे लोग भी इस आसन को अवश्य करें। हम यह दावा तो नहीं कर सकते कि इस आसन के अभ्यास से शत-प्रतिशत लाभ निस्सन्देह प्राप्त होगा। परंतु २५ से ४० प्रतिशत लाभ पहुंचने की सम्भावना निस्सन्देह है।

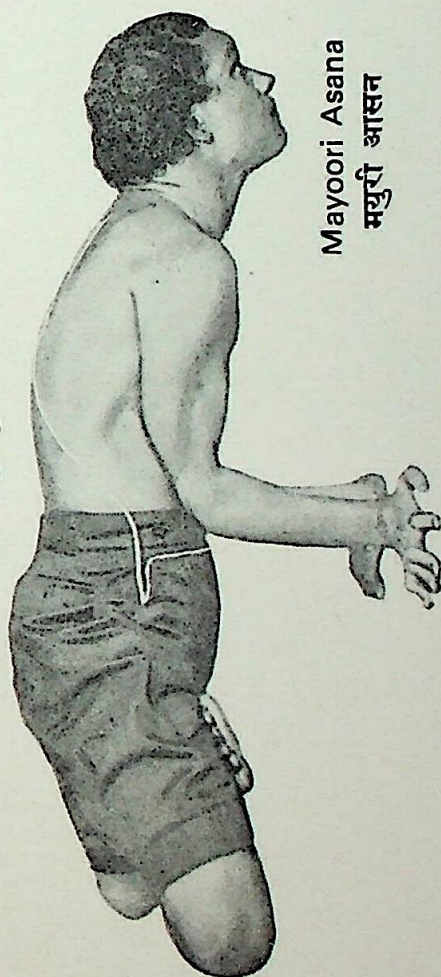
मयूरी आसन

विधि—मयूरासन में बताये अनुसार करने के पश्चात् उसी अवस्था में पद्मासन लगा लें। पद्मासन लगाते समय शरीर के डावांडोल होकर गिर जाने की सम्भावना है। परन्तु जिनकी कलाइयों में अधिक शक्ति होगी और जो शरीर के समग्र अंग-प्रत्यंगों पर नियन्त्रण स्थापित करने में समर्थ होंगे; वही लोग इस आसन की भलीभांति साधना कर समुचित लाभ उठा सकते हैं। पद्मासन की स्थिति में ही शिर को और पैरों को ऊपर उठाने का प्रयास

Mayurasana
मयुरासन

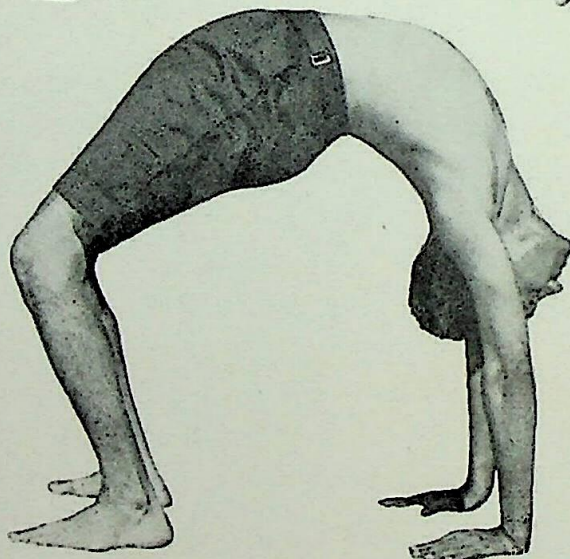
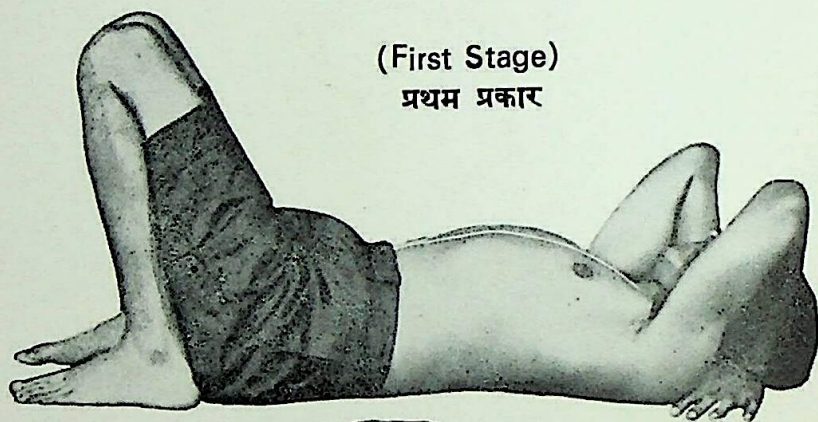


Mayoori Asana
मयूरी आसन



Chakrasana
चक्रासन

(First Stage)
प्रथम प्रकार



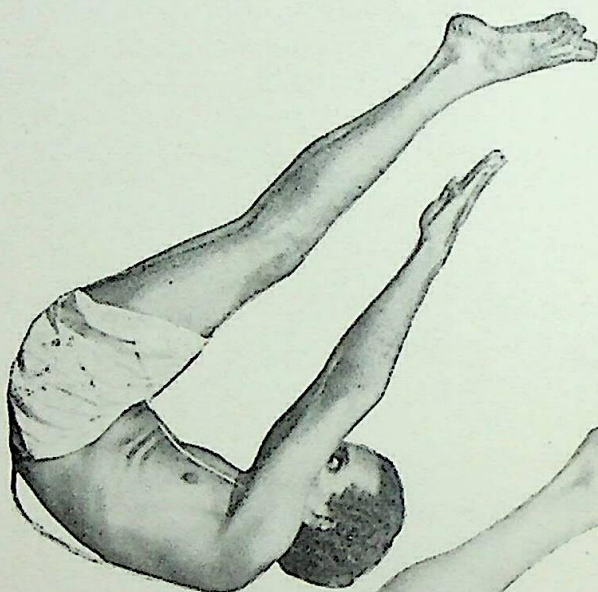
Final Stage
अंतिम प्रकार



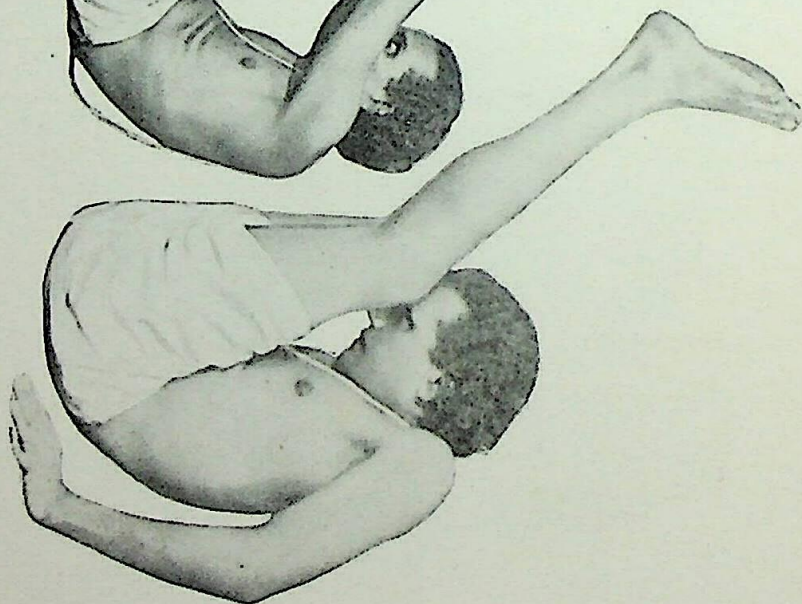
Padangushthasana
पादांगुष्ठसन

[210]

Urdhawapada Hastasana
उर्ध्वपाद हस्तासन



Urdhawapada Shirasana
उर्ध्वपाद शिरासन



करें। इस समय आंखों को अच्छी तरह खोलकर रखें। इस आसन की यथोचित साधना के पश्चात् जमीन में उतरते समय पहले पैरों को सीधा करके सिकोड़ लें और फिर बैठ जायें।

समय

इस आसन का समय वही है, जो मयूरासन का है।

लाभ

मयूरासन के सभी लाभ इस आसन से प्राप्त होते हैं। इसके अतिरिक्त इस आसन के अभ्यास से पैरों के स्नायु मजबूत होते हैं। कमर की नस-नाड़ियां सशक्त होती हैं। गुदाद्वार के संकोच-विकास की शिथिलता दूर होती है, अर्थात् वह शक्तिवान् बनता है। अण्डकोश की बीमारियों के लिये यह आसन अतीव लाभदायक समझा जाता है।

चक्रासन

प्रथम प्रकार

विधि—जमीन पर चित लेट जायें। तदनन्तर दोनों पैरों को घुटनों से मोड़कर नितम्बों के पास जमीन पर रखें। दोनों पैरों के बीच का अन्तर ४ अंगुल से ६ अंगुल तक रहे। दोनों हाथों को कुहनियों से मोड़कर शिर के अगल-बगल भूमि पर रखें।

द्वितीय प्रकार

विधि—चक्रासन प्रथम प्रकार में बताई हुई स्थिति पर आने के अनन्तर श्वास को फेफड़ों में भरकर कमर से शिर तक पिछले भाग को जमीन से ऊपर उठावें और श्वासोच्छ्वास चालू रखें। शिर को यथासम्भव पीठ की ओर ले जायें। दोनों हाथों को जहां तक हो सके, सीधा रखने का

प्रयास करें। आँखें बन्द भी रख सकते हैं और खुली भी रख सकते हैं। समग्र शरीर को स्थिर रखें, हिलने-डुलने न दें। हाथ और पैर अपने स्थान से हटने न पायें। जहाँ तक हो सके, पीठ के भाग को ऊपर ले जाने का प्रयास करें, अर्थात् इस आसन को करते समय शरीर को चक्र के समान गोलाकार बनाना पड़ता है। यथाशक्ति अभ्यास करने के पश्चात् उतरने से पहले श्वास को फेफड़ों में भरकर नीचे आने का प्रयास करें और नीचे आने के बाद श्वास-प्रश्वास चालू रहें।

समय

८ दिन तक २ बार। ९ से १६ दिन तक ३ बार। १६ दिन के पश्चात् शक्ति, आयु और लाभ के अनुसार इसे ५ बार तक कर सकते हैं। अभ्यास के प्रथम समय में ही यदि अधिक समय तक कर सकते हों तो १ से २ अथवा ३ बार भी करना चाहिये। यह आसन स्त्रियों के लिये भी अनुकूल है।

लाभ

योगाभ्यास के अन्तर्गत कुछ आसन ऐसे हैं, जिनकी साधना निरन्तर करते रहने से बुढ़ापा जल्दी नहीं आता और युवावस्था दीर्घकाल तक स्थिर रहती है। ऐसे ही आसनों में यह भी एक आसन है। पीठ की रीढ़ (मेरुदण्ड) और समग्र शरीर के सांधों (जोड़ों) में लचीलापन (लाघव) होना चाहिये। यही युवकत्वका लक्षण है। मेरुदण्ड और सांधों में जब नितान्त कठोरता आ जाती है, तब लचीलापन नष्ट हो जाता है और युवावस्था में ही वृद्धत्व के चिह्न प्रकट होने लगते हैं। योगाभ्यास इन सभी स्थितियों को रोकने वाला और युवावस्था को चिरन्तन बना देने का शुभ परिणाम प्रकट करता है। अस्तु, इस आसन से आँखों की दृष्टि तीव्र होती है, गले की आवाज में मधुरता, सुरीलापन और स्पष्टता आ जाती है। कफमिश्रित वायुविकार होने से जानु की सन्धियों में, गले में और गले के पृष्ठभाग में, कन्धों में और

बगल में छोटे बेर के आकार की गांठें हो जाती हैं। कभी-कभी इन गांठों में पीड़ा होती है और कभी नहीं होती। कभी-कभी यह गांठें बड़ी मालूम पड़ती हैं और कभी छोटी। यह रोग जब अधिक पुराना हो जाता है, तब कुछ गांठें पकने लगती हैं। यह सब विकार इस आसन से पूर्णतया मिट जाते हैं। त्वचा में सिकुड़न आ गई हो तो वह मिट जाती है और शरीर भरावदार बन जाता है। त्वचा युवावस्था के समान सतेज और कसीली बन जाती है। गुल्म रोग के निवारण के लिये भी यह आसन परमोत्तम है। मूत्र में रुकावट और कभी-कभी वमन की इच्छा होना, पेट का फूल जाना, कमर की पीड़ा और दमा आदि अनेक व्याधियों से पीड़ित लोग इस आसन के प्रभाव से आगम पाते हैं। कभी-कभी हाथ-पैरों में चीटियों के काटने के समान पीड़ा होती है, कभी-कभी दाह का अनुभव होता है और कभी-कभी बिच्छू के डंक मारने जैसी पीड़ा होती है, फलतः बठने-उठने में शान्ति नहीं मिलती अर्थात् जीवन अशान्तिमय बन जाता है। यह सब विकार भी इस आसन से मिट जाते हैं। बचपन में या अधिक उम्र में बुखार या अन्य किसी रोग के पश्चात् किसी भी कारण से अशक्ति आ जाती है, वह भी इस आसन से दूर हो जाती है। इस आसन के अभ्यास के साथ तेल-मालिश कराना भी आवश्यक होगा। भूख अच्छी लगती है। हाथ-पैरों के स्नायु बहुत मजबूत होते हैं। अष्टम धातु में परिगणित ओजसू-तत्त्व यथेष्ट परिमाण में मस्तिष्क में प्रवेश करता है। कर्णरोगियों के लिये भी यह आसन परमोत्तम फलदायक है।

पादाङ्गुष्ठामन

विधि=पैरों की उंगलियों के आधार पर जमीन पर बैठ जायें। पैरों के तलुवों और एड़ियों को उठा कर रखें। दाहिने हाथ की उँगलियों को दाहिने पैर के पंजे के पास और बायें हाथ की उँगलियों को बायें पैर के पंजे के पास रखें। दाहिने पैर को बायें पैर के घुटने पर रखें, और बायें पैर को सिवनी

स्थान पर रखें। श्वासोच्छ्वास चालू रखें। कमर, पैर और शिर को समान रेखा में सीधा रखें। दोनों हाथों की उँगलियों को जमीन के ऊपर उठाते रहें। जब शरीर समतोल स्थिति में आ जाये, तब दोनों हाथों को कमर पर रखें। इस आसन को करते समय शरीर के हिलने-डुलने की सम्भावना है। जब मन स्थिर होगा, तब शरीर के समग्र अवयव स्वतः स्थिर हो जायेंगे, बुद्धि भी स्थितप्रज्ञ होगी, तब इस आसन की साधना भलीभाँति की जा सकेगी। यह आसन जितना देखने में आसान जान पड़ता है, उतना करने में आसान नहीं है क्योंकि समग्र शरीर का भार पैर की उँगलियों और तलुवों के अग्रभाग पर तथा सिवनी (अण्डकोश और मल-द्वार के बीच) पर रहता है। आंखें खुली रखें। शरीर को साधारण तना हुआ रखें। यह बायें अंग का अभ्यास है। इसी प्रकार दाहिने अंग से भी अभ्यास किया जाय, तब आसन का अभ्यास पूरा माना जाता है। अन्तर इतना ही है कि ऊपर के पैर को नीचे ले जाना पड़ता है और नीचे के पैर को ऊपर। पैरों के हेर फेर करते समय हाथों से भूमि का सहारा लेना पड़ता है।

समय

१० दिन तक १५।१५ सेकण्ड। ११ से २० दिन तक ३०।३० सेकण्ड। तदुपरान्त आयु, शक्ति और लाभ के अनुसार २।२ मिनट तक अभ्यास बढ़ायें।

लाभ

मन को स्थिर रखने के लिये यह आसन अत्युत्तम है। इसकी साधना से पैरों की उँगलियां बहुत मजबूत होती हैं। वीर्यवाहिनी नाड़ी और मूत्र मार्ग में मजबूती आती है। गृहस्थाश्रमी लोगों को १ मिनट से अधिक यह आसन नहीं करना चाहिये।

उर्ध्वपाद-हस्तासन

विधि—जमीन पर चित लेट जायें। दोनों पैरों के जानु तक का भाग भूमि से ऊपर उठावें और फिर हाथों को शिर के साथ उठाते हुये पैरों के अंगूठों के पास हाथों को ले जाकर स्थिर करें। श्वासोच्छ्वास चालू रखें। शरीर के सर्वांग को तना हुआ रखें। हाथ-पैरों को स्थिर करें।

समय

१० दिन तक आधा मिनट। १० से १५ दिन तक पौन मिनट। तदनन्तर १ मिनट तक अभ्यास बढ़ायें।

लाभ

इस आसन के अभ्यास से उर्ध्वपाद-शिरासन के सभी लाभ तो मिलते ही हैं, साथ ही जिनके हृदय की नाड़ी की गति अनियमित रहती है, अर्थात् ११ से १४ वर्ष तक ७५ से ८५ बार प्रति मिनट नाड़ी की गति चलनी चाहिये। किन्तु नाड़ी की गति इस प्रकार उचित न रहकर अनियमित हो जाती है। यह अवस्था भी एक प्रकार की व्याधि ही है। यह व्याधि इस आसन से मिट जाती है। हृदय की घड़कन समुचित और संतुलित गति से चलने लगती है। हृदय रोग से पीड़ित लोग इस आसन का अभ्यास अवश्यमेव करें। निस्सन्देह लाभ होगा।

उर्ध्वपाद-शिरासन

विधि—जमीन पर सीधे बैठ जायें। फिर दोनों पैरों को सामने की ओर फैला दें। दोनों हाथों के पंजों को कमर के अगल-बगल जमीन पर रखें। तदनन्तर श्वास को बाहर निकाल कर अथवा श्वास को अन्दर भर कर पैरों को जमीन से ऊपर उठावें। शिर को आगे की ओर बढ़ाकर उससे दोनों पैरों के घुटनों के बीच में स्पर्श करें। श्वासोच्छ्वास चालू रखें।

२१६

उमेश योगदर्शन

आंखों बन्द रखें। पैर घुटनों से मुड़ने न पायें। सार शरीर को तना हुआ रखें। इस आसन के अभ्यास काल में केवल कूल्हे का भाग और हाथ के पंजे हं। भूमि का स्पर्श करें। शरीर के शेष सभी भाग जमीन से ऊपर उठे रहें।

समय

८ दिन तक आधा मिनट। ९ से १६ दिन तक पौन मिनट। १७ से २५ दिन तक १ मिनट। तत्पश्चात् १ से २ मिनट तक अभ्यास बढ़ायें।

लाभ

इस आसन के अभ्यास से बद्धोदर रोग मिटता है, अर्थात् जिस रोग से मल बाहर फेंकने की स्वाभाविक गाति अवच्छेद हो जाती है, मल वहीं रुककर सड़ने लगता है, फलतः गैस उत्पन्न होकर आध्मान उत्पन्न करती है। ऐसी सड़ी हुई वस्तु के आन्त की दीवार में लीन होने से विषमूलक लक्षण उत्पन्न होते हैं। जैसे कि मूर्छा, नाड़ियों में अशक्ति, शीतकाय, वमन, विद्रधि आदि लक्षण दिखाई देते हैं। यह सभी विकार और लक्षण इस आसन से मिट जाते हैं। पौरों के स्नायुओं में रक्ताभिसरण अच्छा रहता है। पीठ और हाथों को भी अच्छा लाभ मिलता है।

कुक्कुटासन

पद्मासनं समासाद्य जानूर्वोरंतरे करी।

कूर्पराभ्यां समासिनो मंचस्थः कुक्कुटासनम् ॥ १ ॥

—यो प्र.

विधि— प्रथम जमीन पर पद्मासन लगाकर बैठ जायें। फिर दाहिने हाथ को दाहिने पैर की जानु और पिण्डली के बीच में कुहनी तक ले जायें। इसी प्रकार बायें हाथ को बाईं जानु और पिण्डली के बीच में कुहनी

तक ले जायें। श्वास को फेफड़ों में भर लें। दोनों हाथों के पंजों को जमीन पर रखें और फिर हाथों के आधार पर समग्र शरीर को भूमि से ऊपर उठावें। शरीर को जमीन से ऊपर उठा लेने के बाद श्वासोच्छ्वास चालू रखें। आंखें खुली रखें। शरीर को भली भांति स्थिर रखें; वह हिलने-डुलने न पाये। छाती और शिरोभाग को ऊपर ले जायें। दोनों पैरों को हाथों की कुहनी तक ले जाने का प्रयास करें। शरीर को यथाशक्ति भूमि से उठाकर ऊपर स्थिर रखने के पश्चात् दोनों नासापुटों से श्वास को फेफड़ों में भरकर शनैः शनैः शरीर को जमीन पर रख दें।

समय

१० दिन तक १० सेकण्ड। ११ से २० दिन तक २० सेकण्ड। २१ से ३० दिन तक ३० सेकण्ड। तदुपरान्त आयु, शक्ति और लाभ के अनुसार १ मिनट तक अभ्यास बढ़ायें।

लाभ

सभी स्त्री-पुरुषों के लिये यह आसन अनुकूल। जिन लोगों के पेट में कृमियों का संग्रह हो गया हो, उनके लिये इस आसन का अभ्यास बहुत लाभ कर है। इससे अतिरिक्त स्त्रियों के मासिक रजोदशन में गड़बड़ी, जानुओं में कठोरता और भारीपन आदि इस आसन का अभ्यास करते रहने से दूर होते हैं। पैरों की कुरूपता और कमजोरी मिटती है, हाथों की शक्ति बढ़ती है। पेट के छोटे-बड़े सभी अवयवों पर बहुत ही शुभ प्रभाव पड़ता है और वे निर्विकार एवं सशक्त होते हैं। शरीर गठीला, स्नायुबद्ध, सुन्दर, सुडौल और आकर्षक बन जाता है। इस आसन का निरन्तर अभ्यास करते रहने से युवावस्था के सभी लक्षण यथावत् स्थिर रहते हैं। शरीर की नस-नाड़ियों की निबलता के कारण जिन लोगों में क्रोध और मोह का विकार विशेष रूप में रहता है, उनके लिये इस आसन का अभ्यास अत्यावश्यक और लाभदायक है, क्योंकि इससे शरीर की नस-नाड़ियाँ मजबूत होती हैं और मन शक्ति-

शाली, शान्त एवं आत्मवशी होता है। महिलाओं के स्तन-रोग को दूर करने में यह आसन सहायभूत होता है। दोनों बाहुओं और गले में नवीन शक्ति का संचार होता है। स्नायु-शूल की व्याधि का प्रशमन होता है।

गर्भासन

विधि—कुक्कुटासन की स्थिति में बताये अनुसार दोनों पैरों की पिण्डलियों और जानुओं के बीच में से दोनों हाथों को ले आने के पश्चात् हाथों को कुहनियों से मोड़कर दाहिने हाथ की उँगलियों से दाहिने कान को और बायें हाथ की उँगलियों से बायें कान को पकड़ रखें। आंखें खुली रखें। श्वासोच्छ्वास चालू रखें। शरीर को तना हुआ और स्थिर रखें। शरीर हिलने-डुलने न पाये। शिर को ऊपर की ओर रखने का प्रयास करें। शरीर का समग्र भार कूल्हों पर रहे। इस आसन के आरम्भिक अभ्यासियों के शरीर के जमीन पर लुढ़क पड़ने की सम्भावना है। परन्तु कुछ दिन तक जमीन का सहारा लेकर करने से यथोचित अभ्यास हो जायेगा और फिर गिर जाने की आशंका बिल्कुल नहीं रहेगी। दीवार का सहारा आरम्भिक साधक लोग ही ले सकते हैं। हमेशा दीवार का सहारा लेते रहना उचित नहीं।

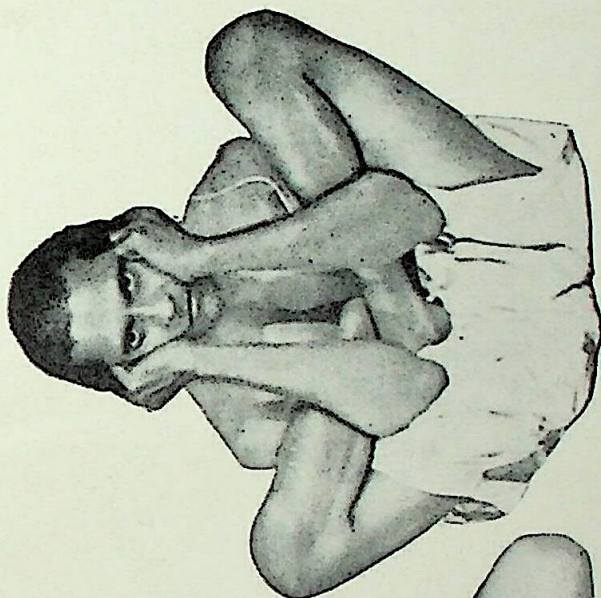
समय

१० दिन तक ८ सेकंड। ११ से २० दिन तक १५ सेकंड। २१ से ३० दिन तक २० सेकंड। तदुपरान्त आयु, शक्ति और लाभ के अनुसार १ मिनट तक अभ्यास बढ़ायें।

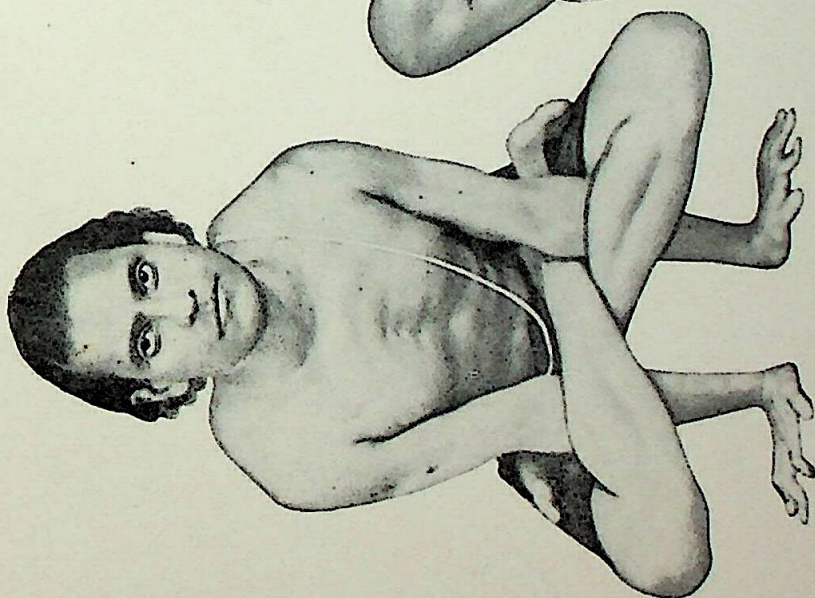
लाभ

जब बालक माता के गर्भाशय में रहता है, उस समय उसकी स्थिति वैसी ही रहती है, जैसी की इस आसन को करते समय इस आसन के साधक की होती है। इसलिये इस आसन को गर्भासन के नाम से पुकारा

Garbhasana
गर्भासन



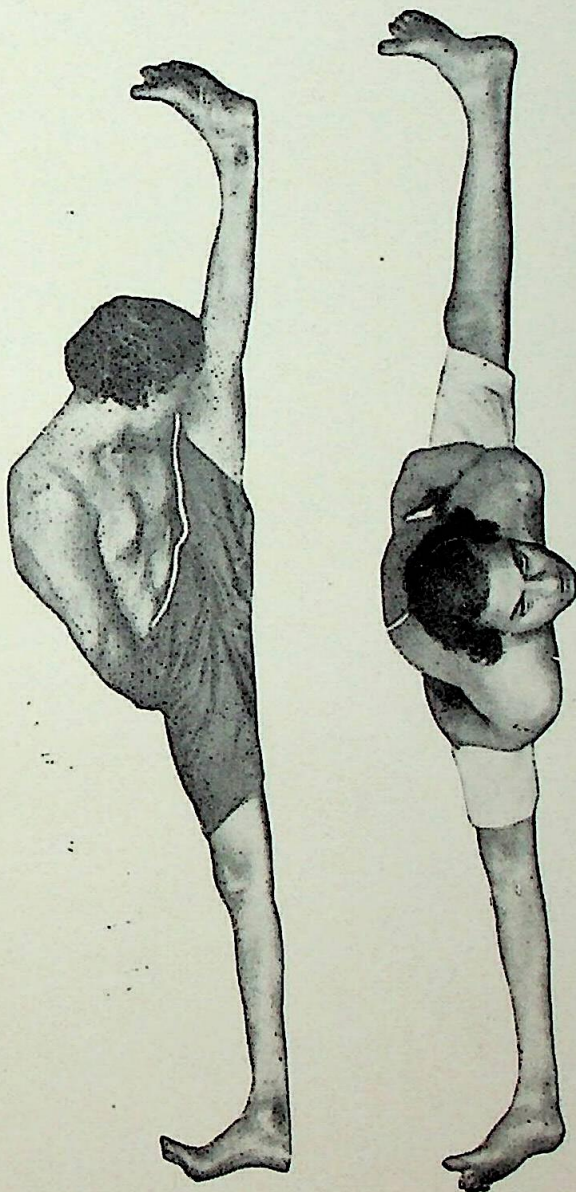
Kukkutasana
कुक्कुटासन



[218ब]

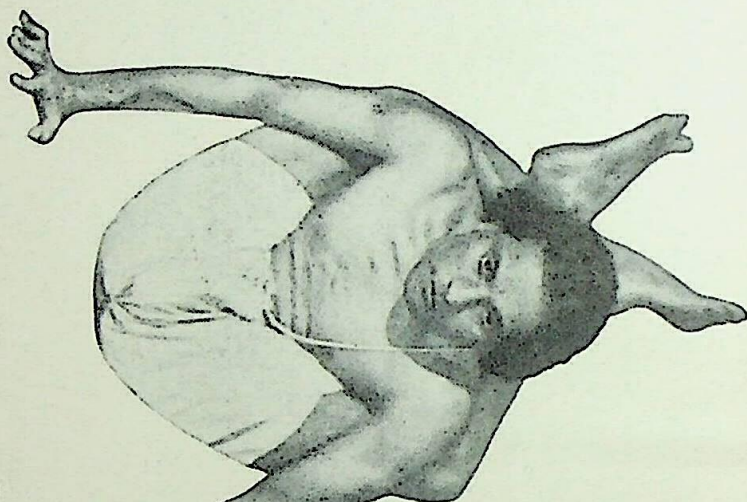


Paschimottasana
पश्चिमोत्तानासन

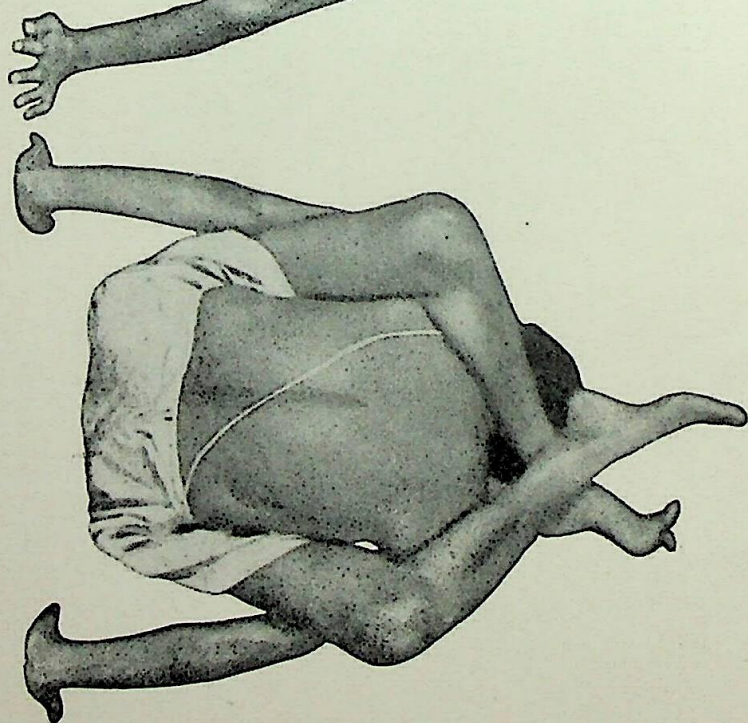


Vistrutapada Vaksha
Bhumisparshasana
विस्तृतपाद वक्ष भूमिस्पर्शसन

[218८]



Front Pose
अग्रभाग



Dwipada Shirasana
द्विपाद शिरासन

Back Pose
पृष्ठ भाग

जाता है। अन्तर केवल इतना ही रहता है कि दोनों पैरों के बीच में गर्भस्थ बालक के हाथ नहीं रहते हैं। जैसे बालक का शरीर सुकोमल और लचीला रहता है, उसी तरह का आकर्षक शरीर इस आसन के साधक का हो जाता है। वायु विकार से बहुतेरी व्याधियां शरीर में घर बनाकर बैठ जाती हैं और जीभ के ऊपर कांटे से निकल आते हैं। कभी-कभी जीभ में जलन होने लगती है और जीभ स्थूल हो जाती है। कभी-कभी मांस के अंकुर भी जीभ पर उभर आते हैं। इन सब विकारों को पूर्णतया मिटा देने में यह आसन पूरी मदद करेगा। ओठों के रोगों के लिये भी यह आसन अतीव अनुकूल है। ओष्ठों के रोगों से पीड़ित स्त्री-पुरुषों को मुंह में हवा भरकर मुंह का संकोचन-प्रसारण करते रहना चाहिये। कफ और वायु प्रधान शरीर वालों के लिये यह आसन अतीव लाभप्रद है। जिन युवा स्त्री-पुरुषों के मुंह पर फुंसियां निकल आती हैं, वे इस आसन का अभ्यास अवश्य करें, निस्सन्देह लाभ होगा। आन्त्रपुच्छ रोग और कोलाइटीज रोग से ग्रस्त लोगों के लिये यह आसन रामबाण इलाज है। इससे पाचन शक्ति बहुत बढ़ जाती है। उदरगत वायु विकार मिट जाता है। स्त्रियों के मासिक रजोदर्शन के समय में पेट के निचले भाग में जो पीड़ा होती है, वह मिट जाती है। सूत्रमार्ग स्वच्छ और शुद्ध होता है।

पश्चिमोत्तानासन

प्रसार्य पादौ भुवि दण्डरूपी संन्यस्तभालश्चिति युग्ममध्ये ।
यत्नेन पादौ च धृतौ कराभ्यां योगिन्द्रपीठं पश्चिमोत्तानमाहुः ॥

—घे. सं. २२२

प्रसार्य पादौ भुवि दण्डरूपौ दोभ्यां पदाग्रद्वयं गृहीत्वा ।
जानूषरि न्यस्तललाटदेशो वसेदीदं पश्चिमोत्तानमाहुः ॥

—शिवसंहिता

बिधि—सीधे बैठकर दोनों पैरों को सामने की ओर फैला दें। घुटनों से सारा पैर जमीन से सटा रहे। तदुपरान्त तर्जनी, मध्यमा और अंगूठे से पैर के अंगूठे को पकड़ कर शिर को घुटनों पर रख दें। श्वासोच्छ्वास चालू रखें। छाती के भाग को जानु के पास ले जाने का प्रयास करें।

पश्चिमोत्तानासन की सरल पद्धति

जिन लोगों का पेट बड़ा हो। कुरसी, सोफा या पलंग पर ही बैठने की जिनकी आदत हो, जो जमीन पर बिल्कुल ही बैठ न सकते हों और जो तामसिक एवं व्यसन (धूम्रपान, मदिरा, मांस, अधिक मिर्च-मसाला, अफीम, गांजा-भांग) में पड़ गये हों, जिनका शरीर जड़ हो और जिनके सांधों में लचीलापन नहीं है; वे लोग नीचे लिखे अनुसार सरल पद्धति का अभ्यास करते रहें। कोई भी एक हाथ आगे की ओर बढ़ायें और दूसरा हाथ शरीर के पीछे की ओर ले जायें। शिर को यथासम्भव घुटनों के पास ले जाने का प्रयास करें। श्वासोच्छ्वास चालू रखें। पेट बड़ा हो तो श्वास बाहर निकाल कर अभ्यास करें। जिस हाथ को आगे की ओर ले गये हैं; उसे तुरन्त पीछे की ओर ले जायें और जो हाथ पीछे है, उसे आगे का ओर ले आयें। इस तरह बारंवार करते रहने से सांधों [जोड़ों] की कठोरता या अकड़ दूर हो जायेगी और उनमें लचीलापन आ जायेगा। इस का अभ्यास करते-करते जब शिर घुटनों से लगने लगे; तब हाथों की हलचल को बन्द कर दें और पैरों के अंगूठों को पकड़ कर शरीर को स्थिर रखें। घुटनों को तनिक भी ऊपर उठने न दें। श्वास-प्रश्वास चालू रखें। कुछ समय तक कमर में सामान्य वेदना होने की सम्भावना है और पैरों के स्नायुओं में खिंचाव होते समय पैरों में भी वेदना हो सकती है। किन्तु इससे चिन्ता, भय तथा शंका न करें और न घबरायें; अभ्यास चालू रखें। कुछ दिनों तक प्रातःकाल हाथ-पैर, पीठ, कमर, पेट, छाती, गला शिर आदि शरीर के सर्वांग की किसी उत्तम तेल [बादाम का तेल, तिल का तेल, खोपरे का तेल, सरसों का तेल, नारायण तेल, रामतीर्थ ब्राह्मीतेल आदि] से मालिश करें अथवा करायें। मालिश

के पश्चात् स्नान करें और स्नानानन्तर आसनों का अभ्यास प्रारम्भ कर दें। व्यसन में फँसे हों और उन्हें एक साथ छोड़ने में कष्ट या कठिनाई मालूम पड़े तो शनैः शनैः छोड़ दें। आसनों का समुचित लाभ उठाने के लिये व्यसनहीन रहना अनिवार्य कर्तव्य है।

समय

६ दिन तक २ मिनट। ७ से १२ दिन तक ३ मिनट। १३ से १८ दिन तक ४ मिनट। जब तक सम्पूर्ण आसन का अभ्यास नहीं हो जाता, तब तक सरल पद्धति का अभ्यास चालू रखें।

सम्पूर्ण पश्चिमोत्तानासन का समय

५ दिन तक आध मिनट। ६ से १० दिन तक १ मिनट। ११ से २० दिन तक १½ मिनट। २१ से ३० दिन तक २ मिनट। तदुपरान्त आयु, शक्ति और लाभ के अनुसार ५ मिनट तक अभ्यास बढ़ा सकते हैं।

पश्चिमोत्तानासनका अभ्यास सरल हो जाने पर इस आसन की सरल पद्धति के अभ्यास को करते रहने की जरूरत नहीं। सुविधा के लिये सरल पद्धति का अभ्यास कर लेने के पश्चात् सम्पूर्ण आसन का अभ्यास करें तो भी कोई हानि नहीं। गर्भवती स्त्रियां इस आसन का अभ्यास न करें, अन्य सभी स्त्री-पुरुष निस्सन्देह कर सकते हैं।

लाभ

पेट का अधिक मेद कम हो जाता है। जोड़ों (सन्धियों) में लचीलापन आ जाता है। कमर की वेदना और अन्य व्याधियां मिट जाती हैं। शरीर का आकार सुडौल और गठीला बन जाता है। पैरों के स्नायु मजबूत बनते हैं। उर्ध्वश्वास (ह्रिक्रा श्वास) का रोग नष्ट होता है।

विस्तृतपाद वक्ष (छाती) भूमि-स्पर्शासन

प्रथम प्रकार

विधि—जमीन पर सीधे बैठ जायें। दोनों पैरों को जहां तक हो सके, दाहिने-बायें दोनों ओर फैला दें। दोनों हाथों को पीछे की ओर ले जाकर बायें हाथ से दाहिने हाथ की कलाई पकड़ लें। इस समय दाहिने हाथ की मुट्ठी बंधी रहे। तदुपरान्त श्वास को फेफड़ों में भरकर दाहिने घुटने को मुंह से स्पर्श करें। श्वासोच्छ्वास चालू रहे। जिन लोगों के पेट में चरबी अधिक हो, उन्हें पहले से ही श्वास को बाहर निकालकर अभ्यास करना चाहिये। मुंह यदि घुटने तक पहुंच न पाये तो जहाँ तक आसानी से पहुंच सके, वहाँ तक ले जायें मुंह को घुटने तक पहुंचाने का प्रयत्न निरन्तर करते रहें। ऐसा करते रहने से मुंह एक दिन घुटने को छूने लगेगा। इस आसन को करते समय पैरों के घुटनों के ऊपर उठ जाने की सम्भावना है। परन्तु उस समय घुटनों को मली-भांति दबाकर रखना चाहिये; जिससे वे ऊपर उठ न सकें।

द्वितीय प्रकार

विधि—विस्तृतपाद वक्ष-स्पर्शासन के प्रथम प्रकार में बताये अनुसार करने के पश्चात् मुंह को बायें घुटने से लगा रखें। कदाचित् ऐसा सम्भव न हो तो प्रथम प्रकार के निर्देशानुसार प्रयत्न करते रहना चाहिये।

समय

१० दिन तक आध-आध मिनट। ११ से २० दिन तक पौन-पौन मिनट। २० दिन के पश्चात् १ से १॥ मिनट तक अभ्यास बढ़ायें।

तृतीय प्रकार

विधि—विस्तृत पाद वक्ष भूमि स्पर्शासन के प्रथम और द्वितीय प्रकार

का अभ्यास पूरा हो जाने के पश्चात् ठुड़ी, छाती और पेट के भाग को सामने की ओर जमीन पर लायें। आरम्भ में कदाचित् कुछ दिन तक छाती और पेट का भाग जमीन का स्पर्श कर न सकेंगे। फिर भी अभ्यास को छोड़ना न चाहिये। जहाँ तक हो सके, मुंह, छाती और पेट के भाग को जमीन के समीप ले जाने का प्रयास करें। श्वासोच्छ्वास चालू रखें। आंखें खुली रखें। हाथों को पीछे की ओर ले जाकर कमर पर मुठी बांधकर पकड़ लें। सारे शरीर को तना हुआ रखें, ढीला न रखें।

समय

१५ दिन तक २० सेकण्ड। १५ दिन से १ महीने तक ४० सेकण्ड। तदनन्तर शक्ति, आयु और लाभ के अनुसार १ मिनट या इससे भी अधिक अभ्यास बढ़ा सकते हैं। यह आसन सभी स्त्री-पुरुषों के लिये अनुकूल है।

लाभ

इस आसन से शरीर के सर्वाङ्ग को यथेष्ट परिमाण में व्यायाम मिल जाता है। कभी-कभी अधिक मार्ग चलने से, अधिक मैथुन से, नमक; खटाई, इमली, लालमिर्च, मसाला अधिक खाने से, कड़ी धूप में अधिक घूमने से, शोकाघात और अधिक चिन्ता, अधिक कठोर व्यायाम या कठोर श्रम करने से पित्त प्रकुपित हो उठता है। यह कुपित हुआ पित्त शरीर से बाहर निकलने के लिये दो मार्ग अपनाता है। एक तो कान, नाक, मुंह, आंख आदि उपरिवर्ती मार्ग से अथवा गुदा, लिङ्ग, योनि आदि अधोमुखी मार्ग से वह बाहर निकलने का प्रयास करता है। पित्त का अधिक प्रकोप होने से भी पित्त रुधिर के साथ मिश्रित होकर रोम कूपों के द्वार से बाहर निकलता है। इसी को रक्त पित्त रोग भी कहते हैं। इस आसन के समय में यकृत, प्लीहा, अन्नाशय कोश, गुर्दे आदि सभी अवयवों पर यथोचित रूप में शुभ प्रभाव पड़ता है और यह सब अङ्ग अपने-अपने कार्य को योग्यतापूर्वक सुचारु रूप से सम्पादित करने में समर्थ होते हैं। फलतः उपर्युक्त सभी

रोगों का पूर्णतया निवारण हो जाता है और यकृत; प्लीहा आदि अनेक नाजुक तथा महत्वपूर्ण अवयव निरोग होते हैं। पैर, कमर, हाथ आदि शरीर के प्रत्येक सांधे (जोड़) में लचिलापन आ जाता है। रुधिराभिसरण का ढङ्ग ऐसा उत्तम होता है, जैसा कि बालक के शरीर का होता है। वृद्धावस्था की व्याधि से सुरक्षित रखने वाले अनेक आसनों में से यह भी एक महत्वपूर्ण आसन है। इस आसन के सम्बन्ध में इतना और बता देना आवश्यक तथा पाठकों को प्रेरणा तथा प्रोत्साहन प्रदायक है कि श्री रामतीर्थ योगाश्रम में भूतकाल में योगाभ्यास की अभीप्सा को लेकर आये हुए श्रद्धालु और विश्वासु साधक स्त्री-पुरुषों में से जिन साधकों ने मानसिक दृढ़ता और बौद्धिक स्थिरता के साथ यथोचित विधि पूर्वक अभ्यास किया है, उन्होंने इस आसन से बहुत लाभ उठाया है। वर्तमान समय में भी अद्वालु साधक यथावत् लाभ उठा रहे हैं। ब्रह्मचारियों, वानप्रस्थों और ऋषि-मुनि, सन्यासियों को इस आसन से जितना लाभ प्राप्त होता है; उतने परिमाण में गृहस्थ लोगों ने भी इस आसन से अपने स्थूल और सूक्ष्म शरीर का परिष्कार किया है।

एकपाद-शिरासन

विधि—बायें पैर को सीधे सामने फैला दें और बायें पैर को कन्धे के ऊपर ले जाकर गले के पीछे के भाग पर स्थापित करें। तत्पश्चात् दोनों हाथों को जोड़कर छाती के सामने रखें। छाती और शिर के भाग को फुलाकर रखें। बायें पैर को बिलकुल सीधा रखें। श्वासोच्छ्वास चालू रखें। आंखें खुली रखें। सारे शरीर को तना हुआ रखें। यह एकांगी साधन है। इसके बाद इसी प्रकार दूसरे अंग से भी करना चाहिये, अर्थात् दाहिने अंग को फैला देना चाहिये और बायें पैर को कन्धे के ऊपर से ले जाकर गर्दन के पिछले भाग पर रखना चाहिये। शेष समग्र क्रिया पूर्ववत् है।

समय

८ दिन तक १५।१५ सेकण्ड । ९ से १६ दिन तक ३०।३० सेकण्ड ।

तदुपरान्त आयुशक्ति और लाभ के अनुसार १।१ मिनट तक अभ्यास बढ़ायें ।

लाभ

जिन महिलाओं को वारंवार गर्भस्राव होता है और जिनका गर्भाश्रय अशक्त है, उनके लिये यह आसन नितान्त अनुकूल है । अण्डकोशों का सूज जाना और उनमें पीड़ा होना तथा बवासीर (मूलव्याधि) के रोग भी इस आसन के अभ्यास से दूर होते हैं । भोजन में अरुचि, हाथ-पैरों में शोथ (सूजन) और श्वासनलिकाकी निर्बलता आदि रोगों से पीड़ित लोगों के लिये भी यह आसन अत्युत्तम फलदायक है ।

द्विपाद शिरासन

विधि—दाहिने पैर को पीछे की ओर ले जाकर बायें कन्धे पर (शिर के पिछले भाग पर) स्थापित करें । दोनों हाथों को सामने की ओर भूमि पर दृढ़ स्थापित करें और हाथों के आधार पर ही समस्त शरीर को जमीन से ऊपर उठावें । आंखें खुली रखें । शिर और छाती के भागको यथासम्भव ऊँचा रखें । श्वास को फेफड़ों में भरकर शरीर को ऊपर उठावें और शरीर के ऊपर उठ जाने के बाद श्वासोच्छ्वास चालू रखने का प्रयास करें । समग्र शरीर को तना हुआ रखें । तत्पश्चात् श्वास को फेफड़ों में भरकर शनैः शनैः जमीन पर बैठ जायें ।

समय

१० दिन तक १० सेकंड । ११ से २० दिन तक १५ सेकंड २१ । से ३० दिन तक ३० सेकंड । तदनन्तर शक्ति, आयु और लाभ के अनुसार १ मिनट तक अभ्यास बढ़ायें ।

लाभ

हाथों के स्नायु बलवान् होते हैं । पीठ की रीढ़ (मेरुदण्ड) की कम-

जोरी दूर होती है। कन्धों की शक्ति बढ़ जाती है। पैरों की पिण्डलियों में बल बढ़ता है। दोनों ओर की पसलियों का विकार दूर होता है। शरीर की कृशता, कठोरता, कभी-कभी अंगों का फड़कना, बलकी कमी आदि समग्र विकार और निर्बलता दूर होती है। शरीर में स्फूर्ति बढ़ती है। इन्द्रियां नवीन शक्ति से भरपूर हो जाती हैं। गुर्दे का भाग मजबूत होकर उसके सभी विकार नष्ट होते हैं। मलमूत्र मार्ग शुद्ध होता और शरीर का भारी-पन मिट जाता है।

सुप्त द्विपाद शिरासन

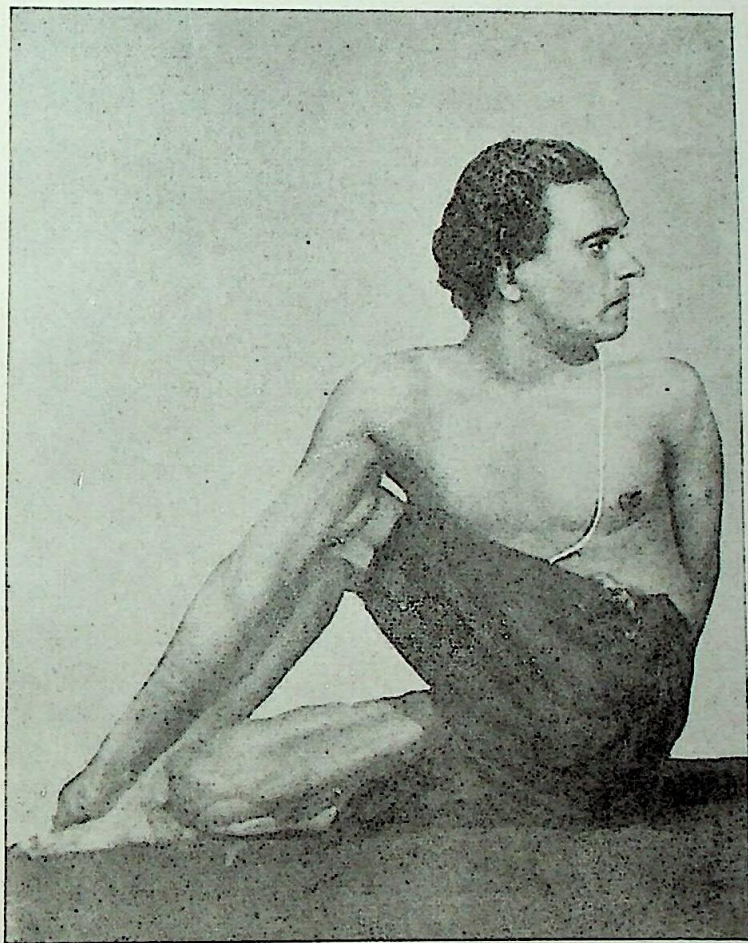
विधि - प्रथम जमीन पर लेट जायें। तदुपरान्त द्विपाद शिरासन में बताये अनुसार पैरों को शिर के पिछले भाग पर रखें। फिर दोनों हाथों की उंगलियों को परस्पर फँसाकर कमर के नीचे के भाग पर रखें। इस समय छाती के नीचे शिर के दब जाने की सम्भावना है। किन्तु ऐसा होने न पाये और शिर से पैरों को दवाने का प्रयत्न करें। आंखें खुली रखें। श्वासोच्छ्वास चालू रखें। जिन स्त्री-पुरुषों के पेट में मेद अधिक परिमाण में होगा, वे इस आसन को भली-भाँति कर न सकेंगे। परन्तु ऐसे लोग भी एक-एक पंर को शिर पर चढ़ाने का प्रयास करेंगे तो महीने-दो महीने में यह आसन उन्हें सम्पूर्णतया सिद्ध हो जायेगा।

समय

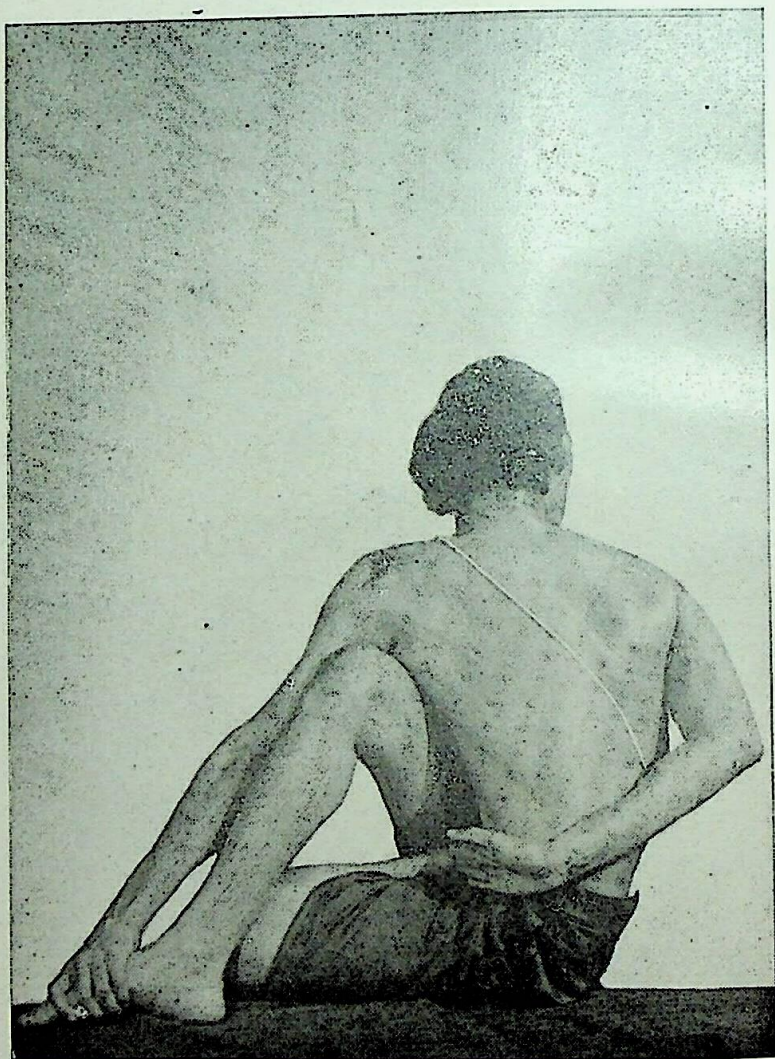
८ दिन तक १० सेकण्ड। ९ से १६ दिन तक २० सेकण्ड। १७ से ३० दिन तक ६० सेकण्ड, अर्थात् १ मिनट। तदुपरान्त आयु, शक्ति और लाभ के अनुसार १॥ मिनट तक अभ्यास बढ़ायें।

लाभ

द्विपाद शिरासन के सभी लाभ यह आसन प्रदान करता है। इसके अतिरिक्त यह भी लाभ है कि इस आसन की साधना करने से पीठ का दर्द



PURNA MATSYENDRASANA (Front Pose)
पूर्ण मत्स्येन्द्रासन (अग्रभाग)



PURNA MATSYENDRASANA (Back Pose)
पूर्ण मत्स्येन्द्रासन (पृष्ठ भाग)

और मेद का आधिक्य दूर होता है। शिर के पिछले भाग को सुदृढ़ और सशक्त बनाने के लिये यह आसन अत्युत्तम है। इससे गहरी और शान्त निद्रा आती है। शारीरिक स्फूर्ति बढ़ जाती है। मलावरोध (कब्ज) से पीड़ित लोग इस आसन का अभ्यास अवश्य करें, इससे उन्हें अत्यधिक लाभ होगा। कमर, उरु और जानु-संधि की पीड़ा मिटती है। इनके अतिरिक्त और भी अनेकशः लाभ इस आसन से प्राप्त होते हैं।

पूर्ण मत्स्येन्द्रासन

प्रथम प्रकार

वामोरुमूलापित दक्षपादं जानोवंहिर्वेष्टित वामपादम्।

प्रगृह्य तिष्ठेत्परिवर्तितांगः श्रीमत्स्यनाथोदितमासनं स्यात् ॥

—घेरंडसंहिता २.३८.

विधि—दाहिने पैर को घुटने से मोड़कर उसी पैर की एड़ी को बायें पैर के जानुमूल पर स्थापित करें। इस अवस्था में पैर की एड़ी नाभि के नीचे भाग में रहनी चाहिये। बायें पैर को दाहिने पैर के घुटने की दाहिनी ओर रखें। पैर का तलुवा जमीन का स्पर्श करता रहे। दाहिनी बगल में बायें घुटने को भरकर दाहिने हाथ से ही बायें पैर के पंजे को पकड़ रखें। बायें हाथ को पीठ की ओर ले जाकर कमर पर रखें और यदि सम्भव हो तो दाहिने पैर को पकड़ रखें। श्वासोच्छ्वास चालू रखें। ठुड़ी को बाईं ओर के कन्धे पर रखें। आंखें खुली रखें। समग्र शरीर को तना हुआ रखें। शरीर हिलने-डुलने न पाये। इस प्रकार पूर्णमत्स्येन्द्रासन का बायें अंग का अभ्यास पूरा होता है।

द्वितीय प्रकार

विधि—बायें पैर को घुटने से मोड़कर उसी पैर की एड़ी को दाहिने पैर के जानुमूल पर रखें। उस समय पैर की एड़ी को नाभि के नीचे के

भाग में स्थापित करें। दाहिने पैर को बायें पैर के घुटने की बाईं ओर रखें। पैर का तलुवा जमीन का स्पर्श करता रहे। बाईं बगल में दाहिने घुटने को भरकर बायें हाथ से ही दाहिने पैर के पंजे को पकड़ रखें। फिर दाहिने हाथ को पीठ की ओर ले जाकर कमर पर रखें और हो सके तो बायें पैर को पकड़ रखें। श्वासोच्छ्वास चालू रखें। छाती को फुलाकर रखें। आंखें खुली रखें। समग्र शरीर को तना हुआ रखें। शरीर हिलने-डुलने न पाये। यह पूर्णमत्स्येन्द्रासन के दाहिने अंग का अभ्यास पूरा हुआ।

समय

१ दिन तक आध-आध मिनट। ६ से १० दिन तक १।१ मिनट। ११ से २० दिन तक २।२ मिनट। तदुपरान्त शक्ति, आयु और लाभ के अनुसार ५।५ मिनट तक अभ्यास बढ़ायें।

लाभ

इस आसन के अभ्यास से भूख बढ़ती है। शुक्र-दोष दूर होते हैं। शरीर के सभी अंग सुदृढ़ और सक्षम बनते हैं। व्यसनों से उत्पन्न हुए कई रोग इस आसन के अभ्यास के पश्चात् जब शरीर से भागने लगते हैं, तब स्वयं अनुभव होता है कि दुर्व्यसनों से बचते रहना कितना जरूरी है। मन बुद्धि, चित्त और अहंकार जैसे-जैसे शुद्ध होते जाते हैं, वैसे-वैसे शरीर को हानि पहुंचाने वाले पदार्थों के प्रति अरुचि उत्पन्न होती जाती है। अनीतिमय मार्ग को ओर ले जाने वाले इष्टमित्र भी दूर भागने लगते हैं तथा सदाचारी सत्संगप्रिय और सद्बिचारशील शुभचिन्तक इष्टमित्र समीप में आने लगते हैं। शरीर में बीमारी की जो निशानी मालूम पड़ती थी; वह भी शनैः शनैः दूर होती जायेगी। इस आसन से पेट सिंह के पेट के समान सुडौल संकुचित स्थिति पर पहुंच जाता है और वक्षःस्थल भी सिंह के समान प्रशस्त और ऊंचा बन जाता है—निरन्तर विकासोन्मुख रहता है। शरीर की निरर्थक गरमी निकल जाती है। मूलाधार चक्र और मणिपूर चक्र मजबूत होते हैं।

अन्य बहुतेरे लाभ भी इस आसन से उपलब्ध होते हैं। अनेक उत्कृष्ट आसनों में इस आसन का भी अग्रस्थान है। मत्स्येन्द्र ऋषि इस आसन के प्रभाव से ब्रह्मपद पर पहुँचने के लिये समर्थ हुए तब व्यावहारिक कार्यकुशल स्त्री-पुरुषों को इस आसन के अभ्यास से कितना लाभ होगा, यह स्वयं विचार कर सकते हैं।

वातायनासन

विधि—भूमि पर पैरों को सामने की ओर फैलाकर बैठिये। दाहिने पैर को घुटने से मोड़कर दाहिने पैर के पंजे को बायीं जाँघ की जड़ पर स्थापित करें। कमर को फर्श से उपर उठाकर दाहिने घुटने के माथे को जमीन पर रखें। बायें पैर को दाहिने घुटने के साथ बराबरी में आने दें। रीढ़ को सीधी रखकर छाती को फुलायें। शरीर का संतुलन दाहिने पैर के घुटने तथा बायें पैर पर स्थापित करें। दोनों हाथों को नमस्ते की स्थिति में छाती पर रखें। श्वास-प्रश्वास की गति सामान्य रहे। सिर सीधा रख कर सीधे सामने की ओर देखें। दस पन्द्रह सेकंड तक इस स्थिति में रहने के बाद हाथ और पैरों को पूर्व स्थिति में आने दें।

इसी प्रक्रिया को दूसरी ओर बायें पैर को घुटने से मोड़कर बायें पैर का पंजा दाहिनी जाँघ की जड़ पर तथा बायाँ घुटना जमीन पर टिका कर दाहिने पैर को उसके बराबर स्थापित करें आगे की क्रिया पूर्ववत्। साधक घुटने के दर्द से बचने के लिये घुटने के नीचे कपड़े की गादी बनाकर रख लें।

समय

१५ दिन तक १० सेकंड, २० दिन तक २० सेकंड, उसके बाद शनैः शनैः एक मिनट तक अभ्यास का समय बढ़ायें।

लाभ

इससे कटि प्रदेश दृढ़ होता है और घुटने के जोड़ मजबूत बनते हैं ।
कटि प्रदेश के दर्द दूर करता है । ध्यान की रुचि बढ़ती है ।

गोरक्षासन

जानुर्वोरंतरे पादौ उत्तानाव्यक्त संस्थितौ ।

गुल्फी चाच्छाद्य हस्ताभ्यामुत्तानाभ्यां प्रयत्नतः ।

कंठ संकोचनं कृत्वा नासाग्रमवलोकयेत् ।

गोरक्षासनमित्याहुर्योगिनां सिद्धिकारणम् ॥

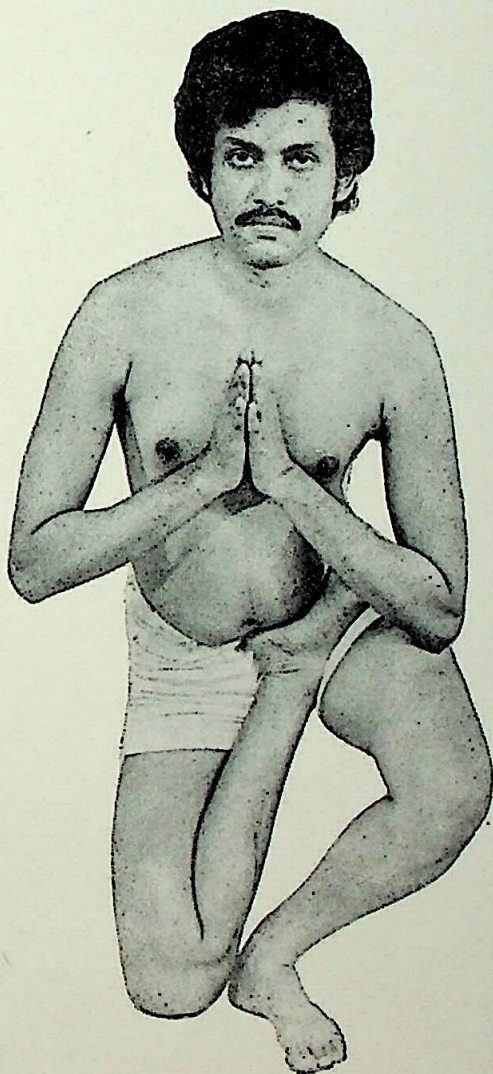
—घेरंडसंहिता

प्रथम प्रकार

विधि—दोनों पैरों के तलुओं को परस्पर भिड़ाकर सामने रखें ।
एड़ियों को अण्डकोश के नीचे जमा दें । दोनों पैरों के घुटनों से अथवा उनके
नीचे के भाग से जमीन का स्पर्श करें । यदि कुछ दिनों तक घुटने जमीन
का स्पर्श करने में सफल न हों तो धीरे-धीरे घुटनों सहित दोनों पैरों को
ऊपर-नीचे करते रहना चाहिये । ऐसा करने से कमर के भाग में लचीला-
पन आ जायेगा और दोनों घटने आसानी से जमीन को छूने लगेंगे । श्वा-
सोच्छ्वास चालू रखें । समग्र शरीर को समरेखा में रखें । आंखों को
खुला रखें ।

समय

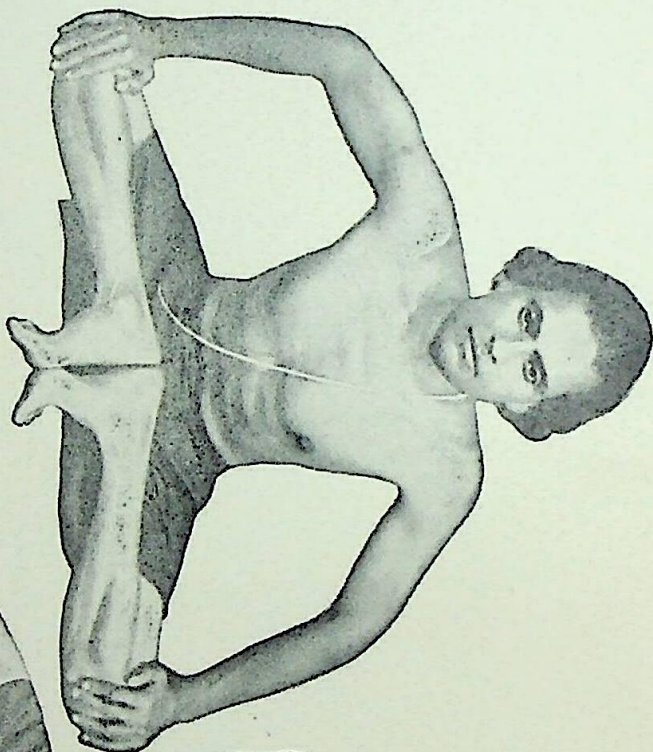
८ दिन तक १ मिनट । ९ से १६ दिन तक १॥ मिनट । १७ से २५
दिन तक २ मिनट । तदनन्तर ३ मिनट तक अभ्यास बढ़ायें ।



Vatayanasana
वातायनासन

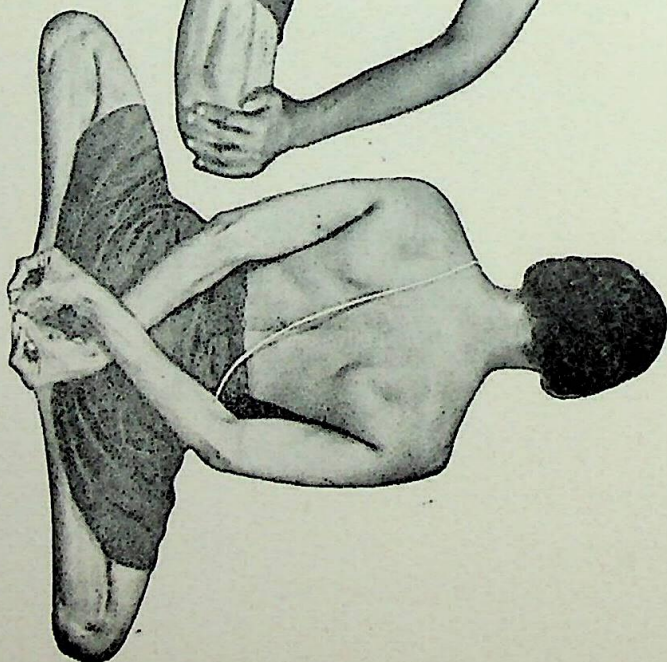
Front Pose

अग्रभांग



Gorkshasana

गोरक्षआसन



Back Pose

पृष्ठभांग

द्वितीय प्रकार

विधि—गोरक्षासन प्रथम प्रकार की स्थिति में बताये अनुसार करने के पश्चात् बायें हाथ से बायें पैर के पंजे को और दाहिने हाथ से दाहिने पैर के पंजे को पकड़ कर दोनों पैरों की एड़ियों के तल भाग को मिलाकर लिङ्ग मूल पर स्थापित करें। उंगलियाँ जमीन पर रहें। तत्पश्चात् बायें घुटने पर बायाँ और दाहिने घुटने पर दाहिना हाथ रखें। छाती को फुलाकर रखें। पेट को दबाकर रखें। आंखों को खुला रखें। श्वास-प्रश्वास चालू रखें।

समय

६ दिन तक आध मिनट। ७ से १२ दिन तक १ मिनट। तत्पश्चात् दो मिनट तक अभ्यास बढ़ा सकते हैं।

अग्रभाग

विधि—गोरक्षासन द्वितीय प्रकार में बताये अनुसार करने के पश्चात् दाहिने हाथ को कमर के पास जमीन पर रखें। बायें हाथ को सामने पैर के पास जमीन पर रखें। पैर की एड़ियों को लिङ्ग मूल से हटाये बिना शरीर को हाथों के आधार पर शनैः शनैः ऊपर उठाकर और भिड़े हुए पंजे को उलटाकर उन्हीं पर बैठ जायें। पैर की एड़ियों का भाग शिश्नेन्द्रिय के मूल पर ही रहना चाहिये और शिश्नेन्द्रिय तथा अण्डकोश पर भी साधारण दबाव रहना चाहिये। दाहिने हाथ की उंगलियों से बायें पैर के अंगूठे की और बायें हाथ की उंगलियों से दाहिने पैर के अंगूठे को पकड़ लेना चाहिये। श्वासोच्छ्वास चालू रखना चाहिये। इस आसन को करते समय दोनों पैरों के एक दूसरे के निकट आ जाने की सम्भावना है किन्तु ऐसा होने न पाये। पैरों को विकासोन्मुख बनाना चाहिये। समग्र शरीर का भार दोनों घुटनों से लेकर पैरों के पंजों तक ही रहेगा। छाती को फुलाकर

रखना चाहिये । कमर, पीठ और शिर को समान रेखा में रखना चाहिये । कमर के ऊपर के भाग को साधारण तना हुआ रखना चाहिये ।

समय

१० दिन तक १५ सेकण्ड । ११ से २० दिन तक ३० सेकण्ड । २१ से ३० दिन तक ४५ सेकण्ड । ३१ से ० दिन तक १ मिनट । तदनन्तर आयु, शक्ति और लाभ के अनुसार २ से ५ मिनट तक अभ्यास बढ़ा सकते हैं ।

पृष्ठ भाग

विधि-गोरक्षासन द्वितीय प्रकार में बताये अनुसार इस आसन की सब विधि समय और लाभ वही हैं; किन्तु पाठकों के सन्देह का निवारण करने के लिये पृष्ठ और अग्र (पीछे और आगे के) भाग दिखाये गये हैं और यह भी बताया गया है कि इस आसन के अभ्यास काल में शरीर के पीछे का भाग किस प्रकार रहना चाहिये और पैरों के पिछले भाग किस प्रकार जमीन पर रहें । पैरों के अंगूठों को हाथों की उँगलियों से किस प्रकार पकड़ रखा जाये तथा शरीर की स्वाभाविक स्थिति कैसी रहे । चित्रों को देखकर यह सब समझ में आ जाता है ।

लाभ

यद्यपि ऐसी सम्भावना बहुत कम है कि सर्वसाधारण स्त्री-पुरुषों को सरलता से यह आसन तत्काल साध्य हो जाये । फिर भी, 'प्रयत्नान्ते परमेश्वर' की कहावत के अनुसार अभ्यास के सतत चालू रखने से दीर्घ-कालीन साधना के पश्चात् इस आसन का अभ्यास सरल हो जाता है । यही एक नहीं; योगाभ्यास के ऐसे अनेक आसन हैं, जिनके यथोचित साधन-स्तर पर पहुँचने के लिये कुछ समय लग जाता है । इसी कारण महर्षि पतंजलि ने अपने योगदर्शन ग्रन्थ में लिखा है—'स तु दीर्घकाल नैरन्तर्यं सत्कारासेविता दृढ़-

भूमिः ।” अर्थात् दीर्घकाल तक निरन्तर विश्वासपूर्वक कर्तव्य-तत्पर रहने से साधना में दृढ़ स्थिति प्राप्त होती है । इस आसन को गोरक्ष मुनि ने सिद्ध किया था । इससे इसका नाम ‘गोरक्षासन’ पड़ा है । सचमुच गोरक्ष मुनि का श्रम सार्थक हुआ है । यह आसन निस्सन्दह अनेक उत्कृष्ट लाभों से साधक को पुरस्कृत करता है । रस, रक्त, मांस, मज्जा मेद, अस्थि, वीर्य और ओजस् जितने ही शुद्ध होंगे और उनका परिमाण जितना ही उचित होगा; उतना ही शरीर तथा मन का आरोग्य बढ़ेगा और पवित्रता, सद्भावना तथा चिन्तन शक्ति बढ़ेगी । जीवन सुखी, स्वस्थ, आनन्दमय तथा उल्लसित रहेगा । वीर्य अण्डकोश में उत्पन्न होता है और वहां से वीर्याशय में चढ़ जाता है । वीर्याशय-कोश से वीर्य के व्यय के दो मार्ग हैं :—एक तो यह कि वीर्य ओजस् में रूपान्तरित होकर समग्र शरीर में फैल जाता है और मेरुदण्ड के मार्ग से मस्तिष्क में व्याप्त होकर उसके सभी विभागों को विकसित और परिपुष्ट बनाता है । दूसरा मार्ग है शिश्नेन्द्रिय, जिसके द्वारा वीर्य बाहर निकल जाता है । वीर्य को शुद्ध और सुयोग्य बनाये रखने का उचित मार्ग यही है कि गृहस्थाश्रम में केवल सन्तानोत्पत्ति के लिये नियमानुसार वीर्य का अधोगामी उपयोग किया जाये । यह वीर्य और रजस् जितने पतले होंगे, उतने ही अशुद्ध बनाकर आधोगामी बनेंगे । स्वप्नदोष, इन्द्रिय-स्पर्श और पसीने के साथ भी वह निकल जाया करेगा । फलतः हानि पहुंचती है और दुर्बलता, मन्दाग्नि, वायु-विकार, शिरोवेदना, चिन्ता, भय, क्रोध आदि मनोविकार, जीर्णज्वर, क्षय आदि अनेक रोग उत्पन्न हो जाते हैं और जीवन नीरस बन जाता है । किन्तु वही वीर्य जब गाढ़ा होकर शरीर के अणु-परमाणु में व्याप्त हो जाता है; तब पंचज्ञानेन्द्रियां सदैव सशक्त और कार्यक्षम बनी रहती हैं । जो लोग अखण्ड योगाभ्यासी हैं और तदनुसार अलौकिक आचरण में अहर्निश लगे हुए हैं; उनके दर्शनमात्र से जनगण पवित्र हो जाते हैं, तृप्त हो जाते हैं । इन योगासनों का अभ्यास गृहस्थाश्रमी भी कर सकते हैं । इससे उनका वीर्य परिपुष्ट और सशक्त होगा और उनकी सन्तान सम्पूर्ण नीरोग,

सबल, बुद्धिमान तथा दैदीष्यमान् रहेगी। यह लाभ केवल पुरुषों को ही नहीं मिलते। पुत्र-सन्तान न होने में पुरुषों का ही दोष कारणभूत नहीं होता, स्त्रियों में भी दोष हो सकता है। ऐसे स्त्री-पुरुषों को यह आसन अवश्य करना चाहिये। इसके अभ्यास से समग्र शरीर के सांधों की वृद्धा-वस्थाजन्य कठोरता मिट जायेगी और उनमें लचीलापन आ जायेगा। पैरों की सूजन मिट जायेगी और भी अनेकशः लाभ इस आसन से प्राप्त होते हैं।

वचनामृत

जीव ही जीव का जीवन है अर्थात् अन्य जीव के आधार पर ही जीव का जीवन चलता है। बलवान् जीवों को निर्बल जीवों की रक्षा करनी चाहिये, किन्तु सर्व सामान्य जीवों के नियमों से पता चलता है कि जीव जीव का रक्षक नहीं; भक्षक है। बड़ी मछलियां छोटी मछलियों को खा जाती हैं। सर्पिणी अपने अपने अण्डों को और सिंहिनी अपने बच्चों को खा जाती है। यह हिंसक पशुओं और जीवों का स्वभाव है और इस दृष्टि से 'जीवो जीवस्य भक्षणम्' की उक्ति को अतिशयोक्ति नहीं कहा जा सकता। किन्तु मानव-स्वभाव इससे भिन्न है। मानव में कोई हिंसावादी हैं, कोई अहिंसावादी पशुओं में भी हिंसा और अहिंसा के पालक हैं। किन्तु मानव प्राणी की विचित्रता यह है कि संरक्षक की भावना और कर्म में अत्यन्त न्यूनता आ गई है। संहारक भावना और कर्म ही आज प्राय दिखाई दे रहे हैं, फलतः दुःख का कोई पार नहीं रहा। सुख का आभास मात्र दिखता है। आज के सुख की व्याख्या मृगतृष्णा से अधिक और कुछ नहीं मध्याह्न काल में भरभूमि (रेत) में सूर्य-किरणों की चमक जलाशय का जो काल्पनिक दृश्य उपस्थित करती है, आज का सुख उसी तरह का है। निष्काम कर्म, उपासना, योगाभ्यास और। ज्ञान से ही सच्चा सुख प्राप्त होता है।

—योगिराज उमेशचन्द्रजी

रोग निवारणार्थ योगिक, मनोवैज्ञानिक एवं प्राकृतिक चिकित्सा

नीरोग होने पर भी
शरीर और मन को
यथावत् बनाये रखने के लिये
निम्न आसन और मलशोधन-कर्म,
अपेक्षित हैं ।

प्रतिदिन प्रातःकाल अथवा सायंकाल निम्नलिखित-योगाभ्यास करते रहने से भविष्य में आप सभी रोगों से सुरक्षित रहेंगे । कोई भी रोग कभी पास आ न सकेगा । शक्ति, आयु, ऋतु और लाभ के अनुसार निरंतर अभ्यास करते रहें । रोगियों के लिये इसी ग्रन्थ में अन्यत्र नियम-संयम समझाये गये हैं ।

२४०

उमेश योगदर्शन

आसन

मिनट से मिनट तक

१. शीर्षासन	१०	३०
२. शवासन	५	०
३. सर्वाङ्गासन	५	१०
४. हलासन	२	५
५. मत्स्यासन	१	२
६. एकपाद उत्थान पादासन	१	२
७. द्विपाद उत्थान पादासन	१	२
८. एकपाद पवन मुक्तासन	१	२
९. द्विपाद पवन मुक्तासन	१	२
१०. भुजङ्गासन	१	२
११. शलभासन	१	२
१२. सुप्त धनुरासन	१	२
१३. अधोमत्स्येन्द्रासन	१	३
१४. पश्चिमोत्तानासन	१	२
१५. जानुशिरासन	१	३
१६. सुप्त वज्रासन	१	३
१७. चक्रासन	१	२
१८. शवासन	५	०

अन्य आनुषंगिक अभ्यास

अभ्यास-क्रम	मिनट से	मिनट तक
नवलि-कर्म	१ से	२
अनुलोम-विलोम प्राणायाम	३ से	६ बार
कभी-कभी नेति और धौति कर्म भी करें।		
नवलि-कर्म		३ बार
नेति-धौतिका समय निश्चित नहीं।		

उपर्युक्त सभी आसनों और आनुषंगिक कर्मों का अभ्यास सर्वसाधारण स्त्री-पुरुषों के शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य के लिये बताया गया है। यदि समयाभाव से उक्त सभी आसनों और कर्मों का अभ्यास सम्भव न हो तो जितना भी अभ्यास हो सके; लाभदायक होगा।

रोग-निवारण के लिये प्रकृति, आयु और शक्ति के अनुसार निम्न-लिखित योगभ्यास और प्राकृतिक चिकित्सा निस्सन्देह लाभप्रद हैं :—

१ शिरोवेदना

(पित्तविकार, अनिद्रा, अनुचित आहार, वीर्यदोष, रजसुदोष, क्रोध और मानसिक चिन्ता के कारण हो तो) शीतल जल में स्नान, जल नेति और चन्द्रभेदन प्राणायाम।

आहार व्यवस्था

गरम मसाला वर्ज्य। नीबू, आदि के शर्बत लेने चाहिये। टमाटर, खट्टी छाछ, दही, तेल आदि अग्राह्य।

आसन व्यवस्था

उत्थानपादासन ३ मिनट। अर्धमत्स्येन्द्रासन २ मिनट। मत्स्यासन २ मिनट। उर्ध्व सर्वांगासन ५ मिनट।

तैलाभ्यंग

कम से कम सप्ताह में एकबार रामतीर्थ ब्राह्मी तेल से समग्र शरीर की मालिश करें अथवा करायें और १५ मिनट के बाद स्नान करें।

शिरोवेदना—(चिन्ता, शरदी, मलबद्धता, नासापुटों का संकोचन अथवा अन्य कारणों से उत्पन्न हो तो) सूत्रनेति, कपालभाति, सूर्यभेदन प्राणायाम, उमेश योगदर्शन के द्वितीय खण्ड में प्राणायाम की विधि विस्तार

पूर्वक बताई गई है] और कूर्मसिन भी इस रोग में लाभप्रद हैं ।

आहार व्यवस्था

प्रातःकाल दन्तधावन के पश्चात् १४ औंस जल में एक छोटे चम्मच भर शहद मिलाकर पी लें । शरदी के दिन हों तो जल को साधारण गरम कर लें और गरमी के दिनों में शीतल जल का उपयोग करें । भोजन में हाथ से कूटे हुए चावलों का भात, चोकरयुक्त आटे की रोटी और हरी शाक-भाजी उपादेय हैं । भोजन के बाद पपीता ग्रहण करें । ७ दिनों तक रात में केवल भूने हुए चनों और काली द्राक्षका उपयोग आवश्यक है । सायंकाल दूध को पानी मिलाकर पतला बना लें और ६ बजे तक पी लें ।

२ मलबद्धता (कब्ज)

साधारण मलबद्धता हो तो प्रातःकाल दन्तधावनादि से निवृत्त होकर १२ औंस जल (अधिक शरदी हो तो साधारण गरम जल और गरमी के दिनों में शीतल जल) का सेवन करें । जल मिट्टी के बर्तन का ही होना चाहिये । तांबे के बर्तन के जल से पित्तप्रकृति-धान मानव-शरीर में तापमान बढ़ जाने की आशंका है । अपनी वात-पित्त-कफप्रधान प्रकृति का ज्ञान और अनुभव सर्वसाधारण को न होने से तांबे के बर्तन का पानी व्यक्तिगत रूप में भले ही किसी को अनुकूल हो, परन्तु सर्वसाधारण के अनुकूल नहीं होता । मृत्तिका पात्र (मिट्टी के घड़े) का जल सर्वसाधारण के लिये अतीव हितावह है । उत्तम गुणप्रदायक जल—जैसे कि सूर्य की किरणों में तापायमान एवं प्रवहमान नदी का जल, अथवा जहां की मिट्टी शुद्ध हो, ऐसे स्थान पर निर्मित कुएँ का जल, अथवा पर्वतों से निर्झरित झरनों का स्वच्छ पवित्र जल अत्यन्त उपादेय होगा । यदि उपर्युक्त किसी भी प्रकार के जल को प्राप्त करने की सुविधा न हो तो एतदर्थ अन्य उपाय भी बताये गये हैं । बड़े-बड़े नगरों के भाग्य में तो नलका जल ही अनिवार्य कर दिया गया है । स्वास्थ्य-रक्षा के लिये यह जल अनुकूल नहीं । कारण यह है कि लोहे के पाइपों में

होकर यह जल कई मीलों के अन्तर से नगरों में पहुँचता है। लोहे के यह विशाल पाइप प्रचण्ड सूर्य-किरणों से उत्पन्न होकर जल के जीवनतत्त्वों को परिवर्तित कर देते हैं। जल में संनिहित जीवनतत्त्वों को यथावत् सुरक्षित रखने और जल को विशुद्ध बनाने के लिये उसमें क्लोराइन नामक औषधि डाली जाती है। एक दृष्टि से देखा जाये, तो सर्वसाधारण जनता की स्वास्थ्य-रक्षा के लिये नगरपालिका (म्युनिसिपैलिटी) अथवा पंचायत-राज्य की ओर से उत्तम प्रबन्ध किया जाता है। परन्तु इस जल के उपयोग से रक्त-विकार, मलबद्धता, खुजली आदि विकारों के उत्पन्न होने की सम्भावना रहती है। अतः उक्त सभी खतरों से मुक्त रहने के लिये हमें प्रयत्नशील रहना ही पड़ेगा। वह प्रयत्न यह है कि जल के द्वारा हमें विशेष लाभ भले उपलब्ध न हो; किन्तु उससे हानि भी होनी न चाहिये। अतएव नीचे लिखे तरीके से जल को शुद्ध बना लेना चाहिये। जैसे कि अग्नि में भली-भाँति उबल जाने के पश्चात् जल को छानकर मिट्टी के बर्तन में भर रखें और ठण्डा हो जाने के पश्चात् उसे पीने में उपयोग करें।

जल को उपादेय बनाने की पद्धति

शहर में पाइप द्वारा उपलब्ध जल को भी जीवन तत्व युक्त बनाकर उसका सेवन कर सकते हैं। जल को गरम करने की विधि को सम्पन्न करने के बाद रेत और लकड़ी के कोयले से उसे शुद्ध करना पड़ेगा। मिट्टी के तीन बर्तन लेकर एक के ऊपर एक-इस प्रकार तीनों बर्तन रखें। सबसे ऊपर के घड़े में छिद्र करें और घड़े का आधा भाग रेती से भर दें। बीच के घड़े में भी वैसा ही छोटा-सा छिद्र करे और आधे घड़े में लकड़ी का कोयला भर दें। सबसे नीचे के घड़े का मुँह श्वेत स्वच्छ वस्त्र से बांध दें। जिस घड़े के अर्ध भाग में रेत भरी गई है और जो सबसे ऊपर है; उसमें गरम किये हुये जल को भर दें। वही जल छिद्रों द्वारा कोयले वाले घड़े में बूँद-बूँद टपकेगा और वही जल कोयले में शुद्ध होता हुआ घड़े के छेद से सबसे नीचे के घड़े में टपकेगा, जिसका मुँह कपड़े से बाँधा हुआ है। कम

से कम १० से १५ दिन और अधिक से अधिक ३० दिन के बाद रेत और कोयले को बदलना पड़ेगा। यह जल अत्यन्त पवित्र गङ्गाजल के समान गुणकारी और लाभदायक बन जायेगा।

अनेक अल्प कष्ट दायक और अति कष्ट दायक रोगों का मूल कारण मलबद्धता है

मलावरोध की दुष्ट व्याधि से मुक्त होने के लिये ऊपर जो प्रयोग बताया गया है; वह अनुभव सिद्ध है। श्रीरामतीर्थ योगाश्रम में आने वाले अनेकशः रोगी और निरोगी स्त्री-पुरुष इस प्रयोग से लाभान्वित हुए हैं। इसके अतिरिक्त उक्त योगाश्रम में शनिवार को सायंकाल और रविवार को प्रातःकाल आयोजित प्राकृतिक चिकित्सा-सम्बन्धी भाषणों को सुनकर बहुतेरे लोगों ने इन प्राकृतिक उपायों का अपने घर में अभ्यास किया और उन्हें इससे समुचित लाभ पहुंचा है। इसका पहला प्रयोग जल बताया गया है और यथोचित रूप से समझाया गया है कि नगरों के अप्राकृतिक उपकरणों को किस प्रकार प्राकृतिक रूप देकर उनसे समुचित लाभ उठाया जाये।

द्वितीय प्रयोग

रात में एक मुठ्ठी भर चनों को (चने किसी भी जाति के हों) धोकर साफ कर लेने के बाद किसी बर्तन में पानी में भिगो दें। प्रातःकाल उन्हीं चनों को अच्छी तरह चाब-चाबकर-यहां तक कि वे रसरूप में परिणत हो जायें, पेट के अन्दर ले जायें। सम्भव है कि वायु प्रधान प्रकृति के व्यक्ति को वायु के लक्षण मालूम हों, अतः ऐसे लोग केवल वायु प्रकृति के लोग चने के साथ पिसे हुए जीरे का उपयोग करें। कफ-प्रधान प्रकृति के लोगों को इन चनों के साथ जीरे की जगह सोंठ के चूर्ण का उपयोग करना चाहिये। यदि पित्त प्रधान प्रकृति हो तो जीरा, सोंठ आदि कुछ भी न लेकर केवल चने खा लें। क्योंकि चना पित्तशामक होता है। जिस पानी

में चने भिगोये गये हों, उस पानी को फेंकना नहीं चाहिये, बल्कि पी लेना चाहिये। एक मुठ्ठी चनों का प्रयोग यदि मलबद्धता पर लाभकर न हो तो थोड़ी-थोड़ी मात्रा में बढ़ाकर चनों को दो मुठ्ठी कर देना चाहिये। यह भी सम्भव है कि एक मुठ्ठी में ही कुछ स्त्री-पुरुषों या बालकों को अधिक पतले दस्त होने लगें। ऐसे लोग आधो मुठ्ठी चना से ही प्रारम्भ करें और लाभ के अनुसार धीरे-धीरे बढ़ाते जायें ऊपर बताये। गये जल-प्रयोग के साथ-साथ चने का प्रयोग भी किया जा सकता है। लेकिन दोनों प्रयोगों के बीच एक या डेढ़ घण्टे का अन्तर अवश्य रहना चाहिये। यदि जल प्रयोग से यथोचित लाभ मिल रहा हो तो चने के प्रयोग की आवश्यकता नहीं। ये दोनों ही प्रयोग लाभदायक हैं। प्रयोग में हरे चनों का उपयोग भी लाभदायक होगा। आयु, प्रकृति और लाभ के अनुसार इन चनों को उचित मात्रा में ग्रहण करना चाहिये।

तीसरा उपाय कटिस्नान

टीन के एक टब में आधा पानी भर कर उस टब में आराम कुरसी की तरह बैठ जायें। पैर टब से बाहर रहें। जल का स्पर्श नाभि और जानु तक होता रहे। दाहिने हाथ को नाभि के चतुर्दिक गोलाकार घुमाते रहें। पहले दिन ५ मिनट। दूसरे दिन ६ मिनट। इस प्रकार प्रतिदिन १।१ मिनट बढ़ाते हुए २० मिनट तक बढ़ायें। तदुपरान्त गरमी के दिनों में शीतल जल से और शरदी के दिनों में गरम जल से स्नान करें। यदि प्रकृति के अनुकूल हो तो शीतल जल अधिक लाभ पहुंचाता है।

चौथा प्रयोग मालिश

जमीन पर चित लेटकर और पैरों को मुड़ा रखकर पेट में तेल की मालिश करें। अपनी प्रकृति, देश तथा ऋतु के अनुसार खोपरा, तिल, एरण्डी, सरसों आदि के तेलों में से किसी भी तेल को मालिश करने के उपयोग में लाया जा सकता है। पहले दिन १ मिनट। दूसरे दिन २ मिनट तक बढ़ायें।

पेट में तनाव या वेदना होने न पाये । दाहिनी ओर से ऊपर की ओर ले जाते हुए हाथ को चारों ओर घुमाते रहें ।

पाँचवां उपाय आहार

भोजन के समय प्रतिदिन कच्चे आहार का उपयोग विशेष रूप से करें । जैसे पत्ता-गोभी, टमाटर, प्याज (कांदा), गाजर, मूली, मूली के पत्ते, भिण्डी, नारियल आदि वस्तुओं को कच्चे रूप में ही और उनमें हरी धनिया की पत्तियाँ (कोथमीर) मिलाकर उन्हें भोजन के साथ लेना चाहिये । भोजन के समय में प्रत्येक ग्रास को २०।२५ बार अच्छी तरह चाबकर गले के नीचे उतारना चाहिये अर्थात् चाबने के समय नैसर्गिक औषधिरूप अमीरस (लार) ग्रास के साथ मिलकर पेट में पहुँचता है और उदरगत अन्नादि वस्तुओं को भलीभाँति पचाकर मलबद्धता के निवारण में सहायता पहुँचाता है । भोजन के समय में अन्नाशय कोश को ठूस-ठूसकर भर न देना चाहिये । नैसर्गिक नियमानुसार भोजन के समय डकार के आते ही समझ लेना चाहिये कि अन्नाशय-कोश को जितना आहार आवश्यक है, उतना पहुँच गया है । शेष स्थान को जल तथा वायु-संचार की सुविधा के लिये खाली रखना चाहिये । भोजन के साथ जल पीना लाभकर नहीं । जल पीने की विशेष इच्छा होने पर ही २।४ घूंट पी सकते हैं । भोजन के एक घण्टे के पश्चात् पानी पीना चाहिये । दिन भर में ६ गिलास पानी पीना आवश्यक है । भोजन के पश्चात् कुछ फल भी लेने चाहिये । यदि पपीता पेड़ पर पका न हो तो उसकी छाल को ग्रहण न करें । सन्तरा (नारंगी) भीठा हो, खट्टा न हो । कफप्रधान प्रकृति के व्यक्ति खट्टा सन्तरा भी ले सकते हैं । किन्तु वायु और पित्तप्रकृति-वालों के लिये खट्टी नारंगी वर्ज्य है । नारंगी और उसकी छाल पाचनशक्ति बढ़ाने, षट्‌रसों को शुद्ध करने और उन्हें प्रभावपूर्ण बनाये रखने, मलावरोध मिटाने और विकारयुक्त वायु को पेट से निकालने के लिये अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं । नारंगी न मिलने पर मोसम्बी का उपयोग करें । मोसम्बी को रेशेसहित ही ग्रहण करना चाहिये, अन्यथा उसके उचित लाभ से वंचित

रहना पड़ेगा। केवल जीभ के स्वाद के लिये इन वस्तुओं का उपयोग अनुचित है। चीकू भी फिलके सहित खाना चाहिये। जिस ऋतु में जो फल उपलब्ध हों, उस ऋतु में वे फल प्रकृति के अनुसार पर्याप्त मात्रा में लेने चाहियें। वास्तविक जीवनतत्त्व फलों में, पानी में, मिट्टी में, वायु में और कच्चे अन्नादि पदार्थों में भग्न रहता है। हम लोग कितने अज्ञानान्धकार में पड़े हुए हैं, इसके दृष्टान्त रूप में हम किसी अच्छे से अच्छे बोज को भून करके उत्तम से उत्तम उर्बरा (उपजाऊ मिट्टी में डाल दें और उसमें अच्छी से अच्छी खाद डालें तथा उस पर शुद्ध वायु एवं मुक्त सूर्यप्रकाश भी पड़ने दें। फिर भी वे बोज क्या कभी अंकुरित हो सकते हैं? यह तो सर्वसामान्य बात है और शिक्षित-अशिक्षित सबकी समझ में भी आ सकती है फिर भी, आश्चर्य की बात तो यह है कि महान् विद्वान् और डिग्रीधारी महानुभाव भी स्वाद का रस लेने के लिये इन्द्रियों के वशीभूत होकर शरीर और मन को विकृत कर रहे हैं।

अस्तु, जिस प्रकार यह भूना हुआ बीज उपजाऊ जमीन में भी उग नहीं सकता, उसी तरह संस्कार किया हुआ या पकाया हुआ अन्न भी शरीर को समुचित जीवन तत्त्व प्रदान करने में असमर्थ होता है। क्योंकि भूनने, तलने या अधिक समय तक उबालते रहने से आहार के अधिकांश प्राकृतिक जीवन दायक तत्त्व नष्ट हो जाते हैं। इन्द्रियों की तृप्ति अथवा रूढ़ि के वश होकर ही प्रायः लोग ऐसा करते हैं; परन्तु यह अनुचित है और ऐसा करने से शरीर को समुचित जीवन तत्त्वों से वंचित रह जाना पड़ता है। इतना ही नहीं; यह अन्य रूप में भी हानिप्रद है। जैसे कोई निर्जीव पदार्थ किसी स्थान पर पड़ा हो तो उसमें यह शक्ति नहीं रहती कि वह स्वयं प्रवृत्तिशील रहे और दूसरे को भी प्रवृत्तिशील बना सके। यही हालत भूने, तले और पकाये हुये पदार्थों की भी है। वे जहां कहीं भी होंगे, मृतवत् पड़े रहेंगे। इन पदार्थों में जीवनी शक्ति बहुत कम होती है, अतः शरीर में किसी-न किसी रूप में विकार उत्पन्न होते रहते हैं। उदाहरण

स्वरूप गावों में रहने वाले लोग खेतों, बागों और अन्य मुक्त वायुमण्डल में घूमते-फिरते और प्रसन्नता पूर्वक काम करते हैं। वे उत्तम स्वादिष्ट हरे ऋतुफल, गन्ना, मूगफली, हरे शाक एवं तरकारियां, आम, तरबूज, जामुन आदि स्वादिष्ट एवं प्राकृतिक आहार का सेवन करते हैं, फलतः वे दीर्घायु होते हैं। उनका मुखमण्डल तेजस्वी होता है। उनके अङ्ग-प्रत्यङ्ग हृष्ट-पुष्ट और सुदृढ़ होते हैं। शारीरिक वजन भी सम-प्रमाण में रहता है, अर्थात् वे सर्वाङ्ग रूप में सुडौल, सुगठित और सौन्दर्य से भरपूर रहते हैं। गावों में रहने वाले मानव मात्र ही नहीं, अपितु पशु-पक्षी भी प्राकृतिक जीवन-व्यवहार करते हैं। इसके विपरीत नागरिक जीवन नाना प्रकार की व्याधियों से पीड़ित देखा जाता है। सच्चा प्राकृतिक जीवन व्यतीत करने वाले स्वस्थ व्यक्ति इन लोगों को देखकर आश्चर्य-चकित हो उठते हैं। भारत के नागरिकों को अपनी इस दयनीय दशा पर विचार करना चाहिये।

शरीर और मन का विकार ही वस्तुतः रोग है और जैसा कि मैं पहले बता चुका हूँ, सभी रोगों का मूल कारण इसी विकार से प्रारम्भ होता है। भोजन के लिये जीना व्यर्थ है। जीवन के लिये उचित भोजन का उपयोग करना मानव मात्र का आवश्यक कर्तव्य है। रात का भोजन अल्प मात्रा में हो। भोजन के दो घण्टे के बाद ही सोना उचित होगा। आहार में गाय अथवा बकरी का दूध उपादेय होगा।

छठा उपाय गणेश-क्रिया

मल-विसर्जन के समय अधिकांश स्त्री-पुरुषों के मल का अग्रभाग कठिन होकर मलद्वार में उसी तरह रुक जाता है, जैसे शीशी के मुँह पर बुच डटा रहता है। यह मल कठोर होने के कारण बाहर निकल नहीं पाता। अपान वायु के साथ मल को बाहर निकालना चाहिये, वह वायु भी अन्दर ही रुका रहता है। वायु प्रकृति, कड़ी शरदी की ऋतु, पित्त प्रधान प्रकृति वाले व्यक्ति को भी यह लक्षण प्रतीत होते हैं, जिससे वह मूल व्याधि

(बवासीर) में रूपान्तरित हो जाता है। अपवाद रूप में कफ प्रधान प्रकृति के व्यक्ति को भी यह व्याधि उत्पन्न हो जाती है। किन्तु गणेश क्रिया के प्रयोग से मलावरोध का निवारण निस्सन्देह हो जायेगा।

गणेश-क्रिया की विधि

मल-विसर्जन के लिये बैठने के बाद बायें हाथ की तर्जनी अथवा मध्यमा उँगली में कोई तेल अथवा पानी लगाकर उँगली को मलद्वार में प्रवेश करायें और जो मल कठोर है, उस उँगली से बाहर निकाल दें। तुरन्त ही शेष मल अपान वायु के साथ बाहर निकल आयेगा और पेट हलका मालूम पड़ेगा। ऐसा कोई अनिवार्य नियम नहीं है कि यह प्रयोग प्रतिदिन करना ही चाहिये। जब कभी शंका हो कि मल अनायास नहीं निकलेगा, तभी यह क्रिया करनी चाहिये। सम्भव है कि मल विसर्जन के पश्चात् भी कुछ मल मलद्वार के पास रह जाये ऐसे मल को भी इसी प्रकार निकाल देना चाहिये। यह प्रयोग कुछ स्त्री-पुरुषों को लजास्पद और प्रतिकूल मालूम हो सकता है। उन्हें इस क्रिया का महत्व समझाना मेरा कर्तव्य है। हमारे श्रीरामतीर्थ योगाश्रम में रोग निवारण के लिये आने वाले कुछ स्त्री-पुरुषों को कई वर्षों तक २।३ दिन के पश्चात् मल-विसर्जन होता था। वे सदैव उग्रतम जुलाब लेते रहते थे। फिर भी, दस्त साफ नहीं होता था। इन लोगों को यह प्रयोग बताने के पश्चात् पर्याप्त लाभ पहुंचा। मल को मलाशयकोश में रखकर सड़ाने और दुर्गन्धयुक्त बनाने की अपेक्षा यदि हम अपने मल को अपनी उँगली से निकाल लेते हैं तो इसमें किसी प्रकार की लज्जा और ग्लानि की बात कहां रही? योगविद्या के मतानुसार मलद्वार में गणेशजी विराजमान हैं अर्थात् गण (समग्र इन्द्रियों) के ईश अर्थात् स्वामी गणेशजी का निवास मलद्वार में रहता है। अतः इस स्थान को सदैव स्वच्छ और शुद्ध रखने का प्रयास यदि हम नहीं करते तो यह मानव-बुद्धि की विडम्बना करते हैं। भोजन के ८ घण्टे के पश्चात् भोजन का कुछ अंश जो मल रूप में परिवर्तित हो जाता है उसे दस्तके रास्ते बाहर

निकाल देना चाहिये, अर्थात् दो बार भोजन करने वालों को दो बार मलविसर्जन भी करना चाहिये। आरोग्य के नियमों में मल का यथासमय और यथाविधि विसर्जन भी एक अनिवार्य नियम है।

शहरों में प्राकृतिक जीवन बिताने की कला

आरोग्य की सम्पूर्ण सुरक्षा की दृष्टि से नागरिकों का कर्तव्य है कि वे पका हुआ अन्न कम से कम सेवन करें और मिर्च, मसाला, इमली आदि का उपयोग भी बहुत कम मात्रा में करना उचित होगा। वनस्पति तेल (कथित घी) सम्पूर्ण वर्ज्य है। शाक-भाजी आदि में तिल और नारियल का तेल अधिक लाभदायक होगा। गाय और बकरी का दूध अच्छा लाभ पहुंचाता है। भैंस का दूध चरबी बढ़ाता है और बुद्धि को मन्द कर देता है। रंग-बिरंगे आकर्षक वस्त्र-परिधान से सदैव बचते रहें। शुद्ध खादी का वस्त्र ही आबाल-वृद्ध स्त्री-पुरुषों के लिये अनुकूल है। नीतिशास्त्र, अर्थ-शास्त्र, शरीर-स्वास्थ्यशास्त्र, मानसशास्त्र, वेदान्त, महात्माओं के जीवन-चरित्र और नैतिक उध्वगमन की स्थिति पर पहुंचाने वाले ग्रन्थों के पठन का अनिवार्य नियम बना लें। रात में जल्दी सो जाना चाहिये और प्रातः-काल जल्दी शय्या-त्याग कर देना चाहिये। कम से कम ८ घण्टे की निद्रा लेना चाहिये। नित्य प्रातःकाल तैलाभ्यंग अवश्य करें। यदि नित्य सम्भव न हो तो सप्ताह में एकवार तैलाभ्यंग अवश्य ही करें। प्रतिदिन कम से कम आध घण्टे और सम्भव हो, तो २ से ३ घण्टे तक योगाभ्यास करें। पेशाब करना, मल-विसर्जन आदि जैसे दैनिक अनिवार्य कर्म हैं, उसी तरह योगाभ्यास भी अनिवार्य कर्तव्य है। घर को देव-मन्दिर के समान स्वच्छ रखें। दीवारों पर देवताओं और महात्माओं के चित्र लगा रखें, जिससे जीवन को उन्नत सतह पर पहुंचाने की प्रेरणा प्राप्त हो। धूपबत्ती, चन्दन आदि सुगन्धित पदार्थों का उपयोग प्रसन्न वातावरण उत्पन्न करेगा। प्रातः-सायं-दोनों समय मल-विसर्जन के नियम का पालन यथोचित रूप से करें। पारिवारिक जनों और इष्ट-मित्रों के साथ शुद्ध, सात्विक भावना से मिलन

सार स्वभाव रखें। प्रातःकाल विस्तर से उठते ही ५१ बार विचार करें कि “मेरा आज का समस्त दिन शुभ, सद्भावनापूर्ण और अनुकूल रहे। मैं जीवन को शुभ, शुद्ध विचार और आध्यात्मिक एवं व्यावहारिक पथ पर अग्रसर करूंगा, पवित्र बनाऊंगा। व्यवहार और परमार्थ में निपुण रहूंगा। आत्मोन्नति की ओर मेरा अभियान निरन्तर गतिशील रहेगा।” मध्याह्न काल में निम्नलिखित विचारों में तल्लीन हों—“मेरा जीवन पवित्रता से भर-पूर हो रहा है—क्रमशः उन्नत बनता जा रहा है। शारीरिक और मानसिक शक्तियां यथेष्ट रूप में संचित और सुस्थिर हो रही हैं। मेरे आचार और विचार शुद्ध और उन्नत स्थिति पर पहुंच रहे हैं।” रात में सोते समय स्वच्छ होकर, हाथ पैरों को भलीभांति धोकर अथवा स्नान करके बिछौने पर बैठ जायें। पास में अगरबत्ती आदि सुगन्धित पदार्थ जला लें और सुखासन पर बैठ जायें। कपालभाति—क्रिया के समान १० बार गहरे श्वास—प्रश्वास खींचें और छोड़ें, साथ ही सोचें कि—“समग्र दिन में जो कुछ सारासार विचारों के साथ कर्म हुआ है, उनसे मैं परिचित हुआ हूं। अब मैं असार कर्मों से मुक्त रहूंगा और शुभ कर्मों में अहर्निश लगा रहूंगा। दैवी सम्पत्ति के रूप में व्यय करने और उदर-पूर्ति, परिवार-पालन, समाज सेवा और सुपात्रों को दान देने के लिये हमारे पास लक्ष्मी का शुभागमन हो रहा है—हमारे घर में लक्ष्मी का स्थिर निवास हो रहा है। मैं सर्वदा ऐश्वर्य से भर-पूर हूं। मेरी बुद्धि निरन्तर उन्नत और प्रकाशमान होती रहेगी। शुद्ध, सात्विक गुण मेरे जीवन में ओतप्रोत बन रहे हैं। मानसिक शान्ति यथोचित रूप में प्राप्त हो रही है। मेरा जीवन पवित्र बनता जा रहा है। मैं सफलता की ओर निरन्तर आगे बढ़ रहा हूं और सत् चित्—आनन्द स्वरूप परमात्मा में प्रवेश कर रहा हूं।” मानसिक पवित्रता और विश्वास के साथ उक्त भावनाओं को ५१ बार दुहराकर सो जायें। मन यदि स्थिर नहीं है और इधर—उधर भटक रहा है तो अपने को सुनाई दे, इतने उच्च स्वर से उप-र्युक्त संकल्प को कम से कम ५१ बार कहें। मनके आधार पर ही सारा संसार सुख-दुःखमय भाषित हो रहा है; इसलिये जब तक मानसिक विचारों

को उच्च सतह पर प्रतिष्ठित किया नहीं जायेगा; तब तक शान्ति नहीं मिलेगी और धन-सम्पत्ति अभीष्ट मात्रा में उपलब्ध होने पर भी (किसी विशेष कारणवशात्) वह दुःखमय होगी। ऐश्वर्य का वास्तविक सुखोप-भोग आप बिलकुल कर न सकेंगे।

बस्ति-कर्म

मलशोधन-कर्म के अन्तर्गत बस्ति-कर्म भी एक प्रमुख कर्म है। बस्ति-कर्म नित्य-कर्म नहीं है। जब कभी आवश्यकता हो, तभी इसे करना चाहिये। आज कल लोग एनिमा का भी प्रयोग करते हैं। लेकिन बस्ति-कर्म की तुलना में इसका अधिक महत्व नहीं। बस्ति-कर्म का विस्तृत विवरण जानने के लिये इसी ग्रन्थ में अन्यत्र मलशोधन-कर्म के अन्तर्गत बस्ति-कर्म का विधान पढ़ें। बस्ति-कर्म मलावरोध (कब्ज) को मिटाने में पर्याप्त सहयोग प्रदान करता है।

नवलि-कर्म

मलशोधन-कर्म के अन्तर्गत नवलि-कर्म का भी विस्तार पूर्वक वर्णन किया गया है अतः उसे पढ़कर यथोचित लाभ उठायें। जहाँ वायु प्रवाह मुक्त रूप से आ रहा हो, ऐसे प्रशस्त मैदान अथवा उच्च स्थान पर्वतादि की मुक्त वायु में टहलने जाने में दौड़ने से, भगवान् की मूर्ति की प्रदक्षिणा करने से, सूर्य-नमस्कार से, हाथ से पेट पर तेल की मालिश करने से कब्ज से सम्पूर्ण सुरक्षा प्राप्त होगी।

आसन-प्रयोग

पूर्ण पद्मासन २ मिनट। शलभासन २ मिनट। पवन मुक्तासन २ मिनट। मत्स्यासन २ मिनट करें।

३ कामला

पानी में भीगे हुए आधी मुठ्ठी चने प्रातःकाल और सायंकाल खायें।

दिन में ११ बजे गन्ना चूसें। यदि गन्ना चूसना सम्भव न हो तो गन्ने का रस-पान करें। गाय का धारोष्ण दुग्ध-पान करें। यदि सबेरे दुग्ध-पान करें तो चना का उपयोग सायंकाल करें। ऐसे प्रयोग निरन्तर चालू रखें, जिससे कब्ज होने न पाये। गरम मसाला, लहसुन, हींग, तेल और घी अथवा तेल में तले हुये पदार्थ पूर्णतया वर्ज्य हैं।

आसन-प्रयोग

भुजङ्गासन २ मिनट। उत्थानपादासन १ मिनट। जानु-शिरासन २ मिनट। विपरीतकरणी ३ मिनट। अनुलोम-विलोम प्राणायाम प्रातः काल ६ बार। यदि समयाभाव से प्रातःकाल सम्भव न हो तो सायंकाल करें।

आहार-व्यवस्था

भोजन में हाथ से कूटा हुआ चावल, मक्खन निकाला हुआ मीठा तक्र, मूंग की दाल, गाजर, हरी तरकारियां आदि का खूब उपयोग करें। भोजन के पश्चात् आम, अंजीर, मुनक्का आदि ग्राह्य हैं।

४ मुख में दुर्गन्ध

अजीर्ण और कब्ज से यह रोग होता है। दांतों को भली-भांति स्वच्छ न रखना भी इस रोग की उत्पत्ति का एक प्रमुख कारण हो सकता है।

धौति-कर्म

इस रोग में धौतिकर्म एक सफल प्रयोग है। इसकी क्रिया विधि मल-शोधन-कर्म के प्रकरण में विस्तार के साथ समझाई गई है। नवलि-कर्म भी २ बार करें। उड्डियान बन्ध १ मिनट करें। सप्ताह में दो बार ऋतु के अनुसार किसी लाभदायक तेल से समग्र शरीर की मालिश करें

अथवा करायें । ठण्डे अथवा साधारण गरम जल से कटि-स्नान ५ से २० मिनट तक करें ।

आसन-व्यवस्था

पश्चिमोत्तानासन १ मिनट । सुप्तधनुरासन १ मिनट । अर्धमत्स्येन्द्रासन २ मिनट । सिंहासन १ मिनट । मयूरासन आधा मिनट । लोलासन आधा मिनट । वकासन १ मिनट । त्रिकोणासन १ मिनट ।

आहार-व्यवस्था

प्रातःकाल १ गिलास शीतल जल पियें । सवेरे ६ बजे गाय के ६ औंस धारोष्ण दूध में ३ औंस जल और १० मुनक्के डालकर अच्छी तरह उबालकर पी लें । दूध में शक्कर डालने की जरूरत नहीं है । हाथों से कूटे हुये चावल का भात; चोकर (थूला) सहित आटे की रोटी, कचुम्बर आदि का उपयोग लाभप्रद है । रात का भोजन हलका हो और सोने से ३ घण्टे पहले भोजन कर लें । भोजन में मूंग या तुवर की दाल की खिचड़ी अथवा चावल की कांजी आदि का उपयोग अनुकूल होगा ।

(५) अग्निमान्द्य

अग्निमाद्य का रोग हो जाने पर पाचक रस अर्थात् आमाशय रस का निर्माण यथोचित परिमाण में नहीं होता । आमाशय-रस के उत्पादन में दो पाचक अवयव विशेष काम करते हैं । एक है लवणाज्ज अर्थात् हायड्रोक्लोरिक और दूसरा पाचकाज्ज है पैप्सीन । पैप्सीन हायड्रोक्लोरिक की उपस्थिति में ही काम कर सकता है । इसके अभाव में पैप्सीन का होना न होना बराबर है, अतः पाचक रस के निर्माण में हायड्रोक्लोरिक एसिड (लवणाज्ज, ह्लास या अभाव ही सदा आमाशय-रस के ह्लास या अभाव को प्रदर्शित करता है । भय, शोक, क्लेश, निन्दा, घृणा; ईर्ष्या, द्वेष आदि विकारों से प्रभावित अवस्था में पाचक रस अत्यल्प परिमाण में बनता है ।

आसन-चिकित्सा

अर्धमत्स्येन्द्रासन २ मिनट । पूर्णमत्स्येन्द्रासन १ मिनट । सुप्तधनुरासन १ मिनट । विपरीतकरणी २ मिनट । मयूरासन आधा मिनट । सूर्य-भेदन प्राणायाम ४ से ६ बार करें ।

आहार-व्यवस्था

गरिष्ठ आहार या पचने में अति भारी आहार कुछ दिनों तक न ल । दूध, शाक-भाजी, फल, मूंग की दाल और जौ की रोटी ले सकते हैं । छाछ का उपयोग नित्य प्रति करते रहें ।

तेल-मालिश

तिल का तेल, खोपरे का तेल; सरसों का तेल (शीतकाल में), वादाम का तेल, रामतीर्थ ब्राह्मी तेल आदि में से किसी भी एक तेल से नित्यप्रति मालिश करें अथवा करायें । प्रातःकाल खुली हवा में दूर-दूर तक टहलने जाना भी लाभदायक है । ऊँचे स्थानों, टेकरियों और पहाड़ों पर चढ़ने से भी जठराग्नि प्रज्वलित होती है । नवलिर्कर्म भी अग्नि-मांछ से मुक्ति दिलाता है ।

६ क्षय (T. B.)

क्षय रोग को राजरोग भी कहते हैं । इसके कई प्रकार हैं । अस्थि-क्षय, फेफड़े का क्षय, मांसक्षय, रक्तक्षय, ओजक्षय आदि इसके अनेक लक्षण हैं । यह शरीर के किसी भी संचालक अंग में लग जाता है । इसके प्रभाव से ज्वर का लक्षण उत्पन्न होकर शरीर का वजन घटने लगता है । कफ के साथ मिश्रित कुछ रक्तांश भी दिखाई देता है । शरीर में बेहद बेचैनी मालूम होती है । अशक्ति के कारण रोगी शय्याशायी होने लगता है । शरीर

और मन किसी काम के लिये उत्साहित नहीं होते; सिर्फ शय्या में पड़े रहने की इच्छा होती है।

कुछ आवश्यक नियम

गीली, गन्दी और अशुद्ध वायु से रोगी को दूर रखना चाहिये। पेड़ों की, उच्च स्थानों की और पर्वतों की सूखी हवा का सेवन करना चाहिये। बकरी का मल भी रोगी के समीप रखें और सम्भव हो तो बकरी को भी रोगी के कमरे में रखें। बकरी का धारोष्ण दूध भी पाव-पावभर दिन में ३ या ४ बार लेते रहें। गाय और भैंस का दूध वर्ज्य है। बकरी भी ऐसी हो, जो जंगलों में घूम-फिरकर पैकड़ों वनस्पतियों की पत्तियां खाती हो और जिसके शरीर में सूर्य का प्रकाश पड़ता रहता हो। भोजन के समय तली हुई वस्तुओं तथा अचार, पापड़ और इमलीका सर्वथा बहिष्कार कर लें। किसी भी उत्तेजक पदार्थ—सिगरेट, बीड़ी, चाय, गांजा, भांग, अफीम, शराब आदि—से दूर रहें और भोजन के समय में जो पदार्थ तैयार किये जाते हैं, उनमें मसाले का उपयोग बहुत कम किया जाये। यदि बिलकुल न किया जाये तो अतीव हितकर होगा। जिस प्रान्त में अन्न आदि जिन खाद्य पदार्थों की प्राकृतिक नियमानुसार उपलब्धि होती है, उन्हीं को यथोचित परिमाण में ग्रहण करें। पकाये हुये अन्न की अपेक्षा फलों पर अधिक आधार रखना चाहिये। फल ऋतु के अनुकूल हों और परिपक्व रूप में तैयार होने के पश्चात् मीठे हो गये हों। साधारण कड़वे हों, कपेले (तूरे) हों और तीखे भी हों; अर्थात् फलों में षट्स का पूर्ण परिपाक हो गया हो। ऐसे फल विशेष लाभदायक होते हैं। फिर भी, अम्लता की न्यूनता और क्षारतत्त्वों का आधिक्य अभीष्ट है। जैसे कि मीठी नारंगी या सन्तरों को छिलके सहित, पपीता छिलके सहित, मीठा दाड़िम (अनार) छिलके सहित, अनन्नास मीठा आदि फल छिलके सहित सेवन करने चाहिये। कुएँ का पानी (ऐसे स्थान का हो, जहां बस्ती कम हो) और प्रवहमान नदी का पानी क्षय रोगी के लिये विशेष अनुकूल है।

मानसिक उपचार

क्षय रोगियों का मन उदासीन, उत्साहहीन और निराशापूर्ण रहता है। मानसिक शक्ति-संवर्धन के लिये निम्नलिखित विचारों को श्रद्धापूर्वक मनन करना पड़ेगा। जबतक मानसिक शक्ति नहीं बढ़ेगी, तब तक शारीरिक शक्ति में किसी प्रकार का परिवर्तन दिखाई नहीं देगा। आप दृढ़ श्रद्धापूर्वक विश्वस्त विचारों में लीन हों—“मेरे फेफड़े निरन्तर मजबूत बन रहे हैं। हड्डियों में शक्ति बढ़ रही है। मैं प्रतिदिन स्वस्थ होता जा रहा हूँ। मैं रोगमुक्त हो रहा हूँ मानसिक स्फूर्ति दिन-प्रतिदिन बढ़ रही है। पाचन-शक्ति बलवान् बन रही है। अब मैं आशापूर्ण जीवन बिताने का अधिकारी बन बन गया हूँ। आशा मेरी चिरसहचरी बन गई है।”

आसन-व्यवस्था

शरीर में अशक्ति, कफ में पीलापन अथवा रक्तवर्ण हो; जीर्णज्वर हो, ऐसे लोग लेटे रहकर भी आसनों का अभ्यास करें और जिन लोगों को केवल क्षय रोग का आरम्भकाल है, वे शीर्षासन भी कर सकते हैं। जानु-शिरासन १ से ३ मिनट तक। आकर्ण धनुरासन १ से १॥ मिनट। वज्रासन १ से १॥ मिनट। मत्स्यासन १ से २ मिनट। एकपाद शलभासन १ से २ मिनट। भुजंगासन १ से १॥ मिनट। नौकासन आध से १ मिनट। उष्ट्रासन आध से १ मिनट।

प्रातःकाल अथवा सायंकाल ५ से १० मिनट तक सूर्य की किरणों लें। नवलिकर्म ३ बार और बस्तिकर्म भी करें। शरीर में ज्वर न रहता हो तो तेल-मालिश भी करें।

७ वीर्य-विकार

इसके अनेक रूप हैं जैसे कि पतला हो जाने पर पेशाब, पसीना तथा स्वप्नदोष के द्वारा वीर्य निकल जाता है। वीर्य के पतला हो जाने का

कारण है गरम मसाला, मिर्च आदि का अत्यधिक उपयोग। अश्लील और कामोत्तेजक उपन्यास, नाटक, कहानी आदि का पढ़ना, भय, चिन्ता, क्रोध, मोह, मद, मत्सर आदि मनोविकारों का उद्वेग; सिनेमा-नाटक आदि का देखना, बीड़ी, सिगरेट, तम्बाकू, मांस, मछली, मद्य आदि का सेवन तथा हस्त-मैथुन और अतिमैथुन करने से भी वीर्य पतला और निबल हो जाता है। गन्दे वातावरण में रहना, कुसंग में पड़ जाना, मलबद्धता (कब्ज) भी इस रोग के कारण है। उपर्युक्त कारणों से पुरुषों की तरह स्त्रियों को भी रजःविकार हो जाता है। स्त्रियों में यह रोग कमर की पीड़ा, शिरोवेदना, मेदवृद्धि, जीर्णज्वर, वजन घट जाना, मानसिक रोग, हृदयविकार, अनियमित मासिकधर्म, रक्तप्रदर, श्वेतप्रदर आदि के रूप में प्रकट होता है।

आहार-व्यवस्था

इस रोग की विभीषिका से मुक्त होने के इच्छुक लोगों को शुद्ध, सात्विक, हल्का और उत्तेजनाहीन आहार लेना अनिवार्य है। यह आहार कब्ज करने वाला न हो। रात का भोजन हल्का होना चाहिये। मानसिक और वैषयिक चिन्ताओं से मुक्त रहना आवश्यक है। वीर्याशय-कोश के समीप ही मलाशयकोश है, अतः मलकी गरमी से उत्तप्त (गरम) होकर वीर्य पतला पड़ जाता है। वीर्य पतला होने के कारण सन्तान बलशाली और वीर्यवान् नहीं हो सकती। इस रोग के उपचार स्वरूप शीतल जल से स्नान करें। नीबू का शरबत दिन में एक बार पियें। नीबू का अधिक उपयोग न करें। जिन व्यक्तियों के लिये अनुकूल हो और जो कब्ज से पीड़ित हों, ऐसे लोगों को शरबत में थोड़ा-सा नमक भी मिला लेना चाहिये। पेशाब के वेग को कभी न रोकें, मल-त्याग की इच्छा का अवरोध भी कभी न करें। प्रातः सायं दो बार मलत्याग करना आवश्यक है। प्रकृति के अनुसार दिन में ३।४ गिलास ठण्डा जल पीने का अभ्यास रखें। ऐसा करने से मूत्राशय-कोश की थैली शीतल रहेगी; फलतः वीर्याशय कोश भी शांत और शीतल रहेगा। रात को ८ घण्टे नींद लेना आवश्यक है। शारीरिक,

मानसिक और नैतिक सामर्थ्य से पुरष्कृत करने वाले रामायण, महाभारत, गीता आदि धार्मिक ग्रन्थों तथा दिव्य जीवन बिताने वाले महापुरुषों के जीवन चरित्रों के पठन को दैनिक स्वाध्याय का नियम बनाना चाहिये। सत्संग में रहकर सदाचार के नियमों का पालन करने की उदात्त प्रेरणा प्राप्त करें। यदि लंगोट बांधने की आदत हो तो उसे बहुत कसकर न बांधें। क्योंकि उस स्थान में शुद्ध वायु का स्पर्श न होने से गरमी उत्पन्न होती है; फलतः दाद हो जाता है और वीर्य पर भी उसका अशुभ प्रभाव होता है। वीर्य पतला पड़ जाता है। केवल योगाभ्यास, व्यायाम और मल्लयुद्ध (कुश्ती) के समय में लंगोट पहना जा सकता है। २४ घण्टे स्थानीय अवयवों को लंगोट से जकड़ रखना हितावह न होगा। रंग-विरंगे वस्त्र-परिधानों से बचना जरूरी है। शुद्ध खादी का वस्त्र मन को शान्ति देने के लिये सभी ऋतुओं में अनुकूल है।

आसन-व्यवस्था

शीर्षासन १० मिनट से ३० मिनट तक। शीर्षासन नये साधक १ मिनट से प्रारम्भ करें और प्रतिदिन १।१ मिनट बढ़ाते हुए ३० मिनट की साधना तक पहुंच सकते हैं। उचित लाभ उठाने के लिये कम से कम १० मिनट का अभ्यास आवश्यक है। दीवार का आधार लिये बिना ही यह आसन करना चाहिये; अन्यथा अभीष्ट की सिद्धि सम्भव नहीं। जानुशिरासन २ मिनट। वीर्य-स्तम्भनासन १ मिनट। एकपाद-शलभासन २ मिनट। शलभासन १ मिनट। वज्रासन २ मिनट। सुप्तवज्रासन १ मिनट। अधोमत्स्येन्द्रासन ३ मिनट। मत्स्येन्द्रासन २ मिनट। उष्ट्रासन १ मिनट। लोलासन १ मिनट। चक्रासन १ मिनट। एकपाद-शिरासन २ मिनट। द्विपाद-शिरासन १ मिनट। शवासन ५ मिनट। गोरक्षासन १ से २ मिनट। अनुलोम-विलोम प्राणायाम ६ बार प्रातःकाल और ६ बार सायंकाल।

मानसिक इलाज

वीर्यविकार ग्रस्त मानव का मन सदैव अस्थिर और अशान्त रहता

है। अतः मन को शान्त और सुस्थिर बनाने का प्रयास सदैव करते रहें। प्रातःकाल स्नान करने के पश्चात् सन्ध्या-वन्दन के समय में अथवा नाम-जप के पश्चात् मन को निम्नलिखित उच्च विचारों की प्रेरणा प्रदान करें— 'मेरा वीर्य गाढ़ा और बलवान् बनता जा रहा है। मनोबल निरन्तर बढ़ रहा है। अब मैं दुर्व्यसनों से मुक्त हो रहा हूँ। बुद्धि में पवित्रता आ रही है। अब दिव्य पुरुष बनूँगा। मेरा जीवन दिन-प्रतिदिन पवित्र होता जा रहा है और उस पर सत्सङ्ग का शुभ प्रभाव नित्य पड़ रहा है। अब मैं दुःखद स्थितियों से मुक्त होकर स्वर्गीय सुख के साम्राज्य में प्रवेश कर रहा हूँ।' इस प्रकार के दिव्य विचारों का नित्य ५१ बार मनन और अनुशीलन करते रहें तथा इन्हीं विचारों को रात में शयन के समय में विछौने पर बैठकर ५१ बार बोलें। तत्पश्चात् निश्चिन्त मन होकर निद्रा देवी की गोद में बैठ जायें। धूपवत्ती, चन्दनादि का सुगन्धित और पवित्र धूम्र भी पवित्रता और दिव्य विचारों का उत्प्रेरक है। ठण्डे जल का कटिस्नान भी ५ से २० मिनट तक लेना चाहिये। तीन महीने तक रामतीर्थ ब्राह्मी तेल अथवा किसी अन्य तेल से समस्त शरीर की मालिश करने के पश्चात् स्नान करें। जब यथोचित लाभ का अनुभव होने लगे, तब सप्ताह में दो बार मालिश करने के बाद स्नान करें। यह प्रयोग निस्सन्देह लाभदायक सिद्ध होगा।

८ दृष्टिक्षीणता के कारण और उपचार

आज कल किशोरावस्था में ही अनेक बालक-बालिकाओं की आंखों पर चश्मा चढ़ जाता है। दृष्टिक्षीणता के कारण उन्हें चश्मे के उपयोग के लिये बाध्य होना पड़ता है। बचपन में दृष्टि मन्दता का यह अभिशाप लग जाना सचमुच दुर्भाग्य पूर्ण और दुःखद है, जिसका प्रमुख कारण है पोषक और सुपाच्य आहार का अभाव। माता-पिता के रजस् तथा वीर्य की निबलता भी दृष्टि मन्दता उत्पन्न कर देती है। स्कूल, हाई स्कूल और कालेज के छात्रों की आंखें अल्पायु में ही चश्मे से ढक जाती हैं। इसका

मुख्य कारण है अश्लील साहित्य का पठन, माता-पिता, गुरु एवं पारिवारिक गुरुजनों की आज्ञा का उल्लंघन। दुश्चरित्र और दुर्व्यसनी मित्रों के साथ रहना और तादृश वीर्यनाश मूलक आचरण करना भी चश्मा लगाने के लिये बाध्य कर देता है। कुछ स्त्री-पुरुष अपने चेहरे की शोभा बढ़ाने के लिये भी उसे चश्मे से सुसज्जित करते हैं। लोगों की यह धारणा भ्रान्ति-मूलक है कि ४० वर्ष की आयु के बाद चश्मे का उपयोग स्वाभाविक स्थिति है; अर्थात् इन लोगों की मान्यता है कि ४० वर्ष की आयु हो जाने पर नैसर्गिक नियमानुसार लोगों की दृष्टि मन्द पड़ जाती है; फलतः वे चश्मे का उपयोग करने लगते हैं। किन्तु वस्तुतः ऐसा होता नहीं है। १०० वर्ष तक दृष्टि शक्ति को यथावत् स्थिर रखा जा सकता है। दृष्टि के क्षीण होने में दिवा-शयन (दिन में सोना) और रात्रि-जागरण भी एक कारण है। क्रोध, शोक और रोदन करने, शिर में चोट लगने तथा अतिमथुन करने से भी दृष्टि मन्द पड़ जाती है। मदिरापान; सिगरेट, तम्बाकू, तपकीर चुसट और गांजा, चरस आदि मादक वस्तुओं का घूम्रपान भी दृष्टि को निर्बल बना देता है। इसके अतिरिक्त ऐसे ही अनेक आचरण और व्यसन हैं; जो नेत्रों की ज्योति को क्षीण बना देते हैं, लेकिन ग्रन्थ-विस्तार के भय से यहां उनका दिग्दर्शन कराना संभव नहीं।

आसन-व्यवस्था

शीर्षासन १० मिनट से ३० मिनट तक। शवासन ५ मिनट। सिंहासन १ मिनट। पूर्ण पद्मासन १॥ मिनट। मत्स्यासन के दोनों प्रकार ३ मिनट। उर्ध्व सर्वाङ्गासन ३ से ६ मिनट। उर्ध्व सर्वाङ्गासन करते समय दृष्टि को पैरों के अंगूठों पर स्थिर रखें। आंखों में जल आ जाने के बाद उन्हें बन्द कर लें। सुप्त वज्रासन २ मिनट। भुजंगासन १॥ मिनट। नवलिकर्म ३ बार। नेतिकर्म (जलनेति अथवा सूत्रनेति) भी करें। कपालभांति ६ बार कर।

आंखों के लिये कुछ विशेष लाभदायक उपचार

आंखों को धोने के लिये विशेष रूप से बनाये गये कांच के छोटे गिलास (आई-ग्लास) में गुलाबजल अथवा वस्त्र से छना हुआ कूपजल अथवा हरड़, बहेड़ा और आंवले के चूर्ण के साथ उवाला हुआ और वस्त्र से छना हुआ जल उपर्युक्त आई-ग्लास में भरकर आई ग्लास को आंख के ऊपर लगा दें और आंख को खोलते तथा बन्द करते रहें। यह क्रिया २५ बार करें। आंखों में पानी आ जाने या जलन होने पर घबरायें नहीं। तदुपरान्त दोनों हथेलियों से दोनों आंखों को हल्के रूप में मलते रहें। इसके बाद आंखों की पुतलियों को दाईं और बाईं ओर घुमायें। आंखें खुली रहें। तदनन्तर शीतल जल से आंखों को धो डालें। यह क्रिया ८ दिन तक लगातार करें। इस प्रयोग के पश्चात् आंखों की पुतलियों को ऊपर-नीचे तथा दाहिने बायें-चारों ओर घुमाये। आंखों को दोनों हाथों से बन्द रखकर मन में बिचार करें:—“मेरी आंखों की ज्योति दिनानुदिन बढ़ती जा रही है। आंखों की नस-नाड़ियां मजबूत हो रही हैं। रक्त-प्रवाह सुयोजित रूप से हो रहा है।” ऐसा विचार कम से कम एक मिनट तक करें। फिर आंखों को शीतल जल में धो डालें। आंखों की दृष्टि बढ़ाने के लिये मानसिक आन्दोलन भी एक सफल उपचार है।

सूर्य-किरण-चिकित्सा

हरे रङ्ग की स्वच्छ बोतल के पौन भाग को स्वच्छ जल से भर दें। सबेरे १० बजे इस बोतल को लकड़ी के टुकड़े पर सूर्य की धूप में रख दें। चार बजे बोतल को धूप से उठा लें और कागज या कपड़े में लपेट कर रख दें। बोतल के इस जल को सबेरे ८ बजे, ११॥ बजे, ३ बजे और सायंकाल ६ बजे—इस प्रकार ४ बार एक-एक औंस पीते रहें। ब्लू अर्थात् बैंगनी रङ्ग की बोतल में उपर्युक्त विधि से सूर्य किरणों में जल को तैयार रखें। इस जल को सबेरे ९ बजे, १ बजे, ४ बजे और सायंकाल ७ बजे १।

१ औंस के हिसाब से पीते रहें। प्रातःकाल शरीर पर सूर्य-किरणों का स्पर्श कराना भी अत्यधिक लाभदायक है। गरमी के दिनों में सबेरे ८ बजे तक और शरदी की ऋतु में ९ बजे तक सूर्य किरणों में बैठें। सूर्य के सामने आंखें बन्द करके बैठें और विचार करें कि आंखों का तेज बढ़ रहा है, और दृष्टि निरन्तर दीप्तिमान बन रही है। इसके बाद आंखों की पलकों को हथेलियों से मल दें। इस प्रकार का प्रयोग २।३ महीने तक निरन्तर करते रहें। यह प्रयोग लम्बी और निकट की दृष्टि के लिये भी अनुकूल है। रात में सोते समय शिर में रामतीर्थ ब्राह्मी तेल से मालिश करें और तेल से आंखों को आंजे। आंखों की दृष्टि बढ़ाने के लिये त्राटक भी एक लाभदायक प्रयोग है। त्राटक करने के नियम मल-शोधन-कर्म के प्रकरण में पढ़कर समझ लें।

आहार-व्यवस्था

प्रातःकाल गाय के दूध में इलायची, केसर, बादाम छोड़कर पियें। दोपहर में भोजन के समय में दाल, भात, रोटी, शाक आदि के साथ अनेक प्रकार के द्विदल धान्य में से कोई एक धान्य बदल-वदलकर हमेशा लेते रहें। कचुम्बर-जिसे सलाद भी कहते हैं और जिसमें टमाटर, गाजर, काकड़ी, पत्तागोभी, कोथमीर (हरी धनिया की पत्तियां), नारियल आदि वस्तुओं का मिश्रण किया जाता है-भी आंखों की दृष्टि बढ़ाने के लिये उत्तम है। गाजर दृष्टिमांघ के लिये सर्वोत्तम औषधि है। इसका अधिकाधिक उपयोग करें। अगर गाजर साबुत खाने में कठिनाई हो तो उनका रस निकाल कर पियें। गाजर का व्यवहार दिन में दो बार अवश्य करें। भोजन के पश्चात् फल भी उचित मात्रा में ग्रहण करना आवश्यक है। रात के भोजन में तक्र का उपयोग बिल्कुल न करें। भात या रोटी के साथ गाय के घी का उपयोग विशेष लाभदायक होगा। सलाद के साथ धनिया की हरी पत्तियां (कोथमीर) अथवा धनिया का उपयोग करने से आंखों की दृष्टि बढ़ती है।

९ स्मरण शक्ति संबंधन

यह रोग पुरुषों के वीर्य और स्त्रियों के रजस् में विकार उत्पन्न होने, मानसिक दुर्बलता, अत्यन्त मेदवृद्धि अथवा अत्यन्त दुर्बल शरीर, अनिद्रा रोग, मस्तिष्क के अवयवों की निर्बलता, ज्ञान तन्तुओं में शैथिल्य आदि अनेक कारणों से हो जाता है। स्मरण शक्ति को कम कर देने में उपर्युक्त दोष मुख्य काम करते हैं।

आसन-व्यवस्था

शीर्षासन १० मिनट से आधा घण्टे। शवासन ५ मिनट। सुप्त-धनुरासन २ मिनट। पादाङ्गुष्ठासन १ मिनट। विस्तृतपाद सर्वाङ्गासन २ मिनट। कूर्मासन १ से १॥ मिनट। कर्णपिडनासन २ मिनट। नौकासन १ मिनट। एकपाद-शलभासन १ मिनट। शलभासन १ मिनट।

आहार-व्यवस्था

प्रातःकाल गाय अथवा बकरी का धारोष्ण दूध पीना हितकर है। दोपहर के पश्चात् ३ बजे गाय अथवा बकरी के ताजे गरम किये हुए दूध में शंखावली का चूर्ण १ तोला छोड़कर पीना चाहिये। जीवन तत्त्व (विटामिन) से परिपूर्ण खाद्यपदार्थ ग्रहण करने चाहिये। भोजन के समय में सनाल (डण्ठलसहित) ब्राह्मी वनस्पति की चटनी का उपयोग करें। दिन में एक बार गाय अथवा बकरी के दूध में २ बादाम, २ से ४ पिस्ते, आधा अंजीर, सौंफ, काली द्राक्ष (सूखी) ६ दाने, और खसखस (पोस्ते के बीज) इन सब वस्तुओं को पानी के साथ पीसकर और दूध में मिलाकर पी जायें। आहार में गेहूं के आटे (चोकर सहित) की रोटी, हाथ से कूटे हुए चावलों के भात और छाछ का उपयोग करें।

मानसोपचार

रात में शय्यापर बैठकर ५ बार गहरे श्वास खींचे और छोड़ें एवं

साथ ही मन में विचार करें :—“मेरी स्मरण शक्ति दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है—उन्नत हो रही है। मस्तिष्क का प्रत्येक अवयव विकसित हो रहा है मुझे गहरी निद्रा आ रही है मानसिक विचार आशापूर्ण और सन्तोषप्रद हो रहे हैं।” इस प्रकार ५१ बार विचार करके निद्रा में शांति-पूर्वक तल्लीन हो जाना चाहिये।

१० अनिद्रा रोग

मानसिक चिन्ता, क्रिया तन्तुओं और ज्ञान तन्तुओं की निर्बलता, शरीर को अत्यधिक आराम देने, रात में अधिक मात्रा में भोजन करने, शक्ति से बाहर श्रम करने, चाय-कॉफी आदि व्यसन मूलक वस्तुओं के आधिक्य बढ़ जाने, जीर्ण ज्वर रहने, तमोगुण और रजोगुण प्रधान अन्तःकरण रहने एवं वात, पित्त, तथा कफ के विकारों से अनिद्रा रोग हो जाता है।

आसन-विक्रित्सा

सर्व प्रथम नौलिकर्म १ मिनट करना चाहिये। तत्पश्चात् सुप्त वज्रासन १ मिनट। शीर्षासन १० मिनट। शवासन ५ मिनट। सुप्त उर्ध्व हस्तासन १ मिनट। भुजङ्गासन २ मिनट। मत्स्यासन २ मिनट। तोलां-गुलासन (तुलासन) १ मिनट। जानुशिरासन १ मिनट। लोलासन, पहला प्रकार १ मिनट; दूसरा प्रकार १ मिनट। चक्रासन १ मिनट करना लाभ-प्रद है।

प्राणायाम-व्यवस्था

शरीर की प्रधान प्रकृति यदि घातमूलक हो तो शीत ऋतु में सूर्य-भेदन प्राणायाम और ग्रीष्म तथा वर्षा काल में चन्द्रभेदन प्राणायाम हित-कर होगा। प्राणायाम प्रातःकाल ६ बार और सायंकाल ६ बार करें।

प्राणायाम की विधि जानने के लिये उमेश-योगदर्शन का द्वितीय खण्ड अवलोकन करें। कफ और पित्त प्रकृति प्रधान स्त्री-पुरुषों को सभी ऋतुओं में भस्त्रिका प्राणायाम नं० १ करना चाहिये अथवा उज्जायी प्राणायाम ४ बार करें।

आहारोपचार

प्रातःकाल आसनादि क्रियाओं से निवृत्त होने के पश्चात् रात में भिगोकर रखे गये मुट्ठी भर चने खायें। कुछ देर के पश्चात् पाव भर दूध पी लें। भोजन के समय में भूँग की दाल, भात, रोटी और शाक का उपयोग करें। शाक=भाजी के छौंक में घी का प्रयोग करें; तेल का उपयोग वर्ज्य है। हींग का व्यवहार भी इष्ट नहीं, जीरे का उपयोग करें। दिन में ४ बजे मौसम्बी के ६ औंस रस में २ औंस पानी मिलाकर पीना चाहिये। सायंकाल ७ बजे अल्पाहार कर लेना चाहिये। सम्भव हो तो भोजन के पश्चात् कुछ देर तक टहलना भी चाहिये।

अन्य लाभदायक उपचार

इसके अतिरिक्त रात में शय्यातीन होते समय (लेटते समय) मस्तक और शिर के चारों ओर रामतीर्थ ब्राह्मी तेल से मालिश करना भी एक लाभदायक प्रयोग है। पैरों के तलुओं की मालिश भी इसी तेल से करें। शिर और तलुओं की मालिश कम से कम ५ मिनट करें। दिन में ५ से ६ गिलास पानी अवश्य पीना चाहिये। रात में श्वासन करें। श्वासन की स्थिति में श्वेत वस्त्र को शीतल जल में भिगोकर नाभि-स्थान पर रखें। नींद के समय में उसे हटा सकते हैं और न हटायें तो भी कोई हानि न होगी।

मानसोपचार

लेटने के समय में श्वासन की स्थिति में मनको एकाग्र कर विचार

करें :—“मुझे गहरी नींद आ रही है। शरीर का प्रत्येक अवयव और उसकी प्रत्येक हलचल रजोगुण और तमोगुण के प्रभाव से मुक्त होकर सतोगुण से सराबोर हो रही है। मैं सुख और शान्ति के साम्राज्य में प्रवेश कर रहा हूँ। तन-मन-धन से समृद्ध हो रहा हूँ। मैं आत्म शान्ति का अनुभव कर रहा हूँ। हर समय मेरा मन शुभ विचारों के साथ ओत प्रोत रहता है।” इस प्रकार के विचार कम से कम ५१ बार करें। इस अवस्था में किसी प्रकार के भी सांसारिक अथवा व्यावहारिक विचारों को मन में घसने न दें।

जलोपचार

जो लोग अधिक समय से अनिद्रा रोग से पीड़ित हैं, उनका कर्तव्य है कि वे प्रातःकाल स्नान से पहले किसी अनुकूल तेल से मालिश करके या करा के १५ मिनट के पश्चात् टीन के टब में गरमी में ठण्डा पानी और शरदी में साधारण गरम पानी भरकर पहले दिन ५ मिनट कटिस्नान ल। दूसरे दिन से प्रतिदिन १।१ मिनट बढ़ाते हुए आधा घन्टे तक कटिस्नान करें। कटिस्नान के पश्चात् स्नान करें। कटिस्नान के समय पेट के चारों ओर गोलाकार हाथ घुमाते रहें।

११ हृदय विकार

नौकरी अथवा धन्धे में एवं हर समय उसी की चिन्ता में व्यस्त रहना, मानसिक कष्ट पहुंचाने वाले झंझटों में फँसे रहना, अनियमित भोजन और भोजन को पचाने के लिये औषधियों का उपयोग, वनस्पति घी का उपयोग, सिगरेट, बीड़ी, चाय और अन्य अनेक घातक दुर्व्यसन, रात में देर से सोना, अतिमैथुन, मेदरोग, फेफड़ों की कमजोरी, मानसिक चिन्ता, काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद-मत्सरादि मनोविकारों का उद्घान; व्यायाम का अभाव, वायु विकार आदि अनेक कारण हृदय विकार के मूल

में हैं। पेट में मेद अधिक होने और हृदय में अशक्ति आ जाने से श्वासोच्छ्वास की गति में विक्लेश होता है। फलतः हृदय का कार्य अनियमित हो जाता है और कभी-कभी तो प्राणोत्क्रमण तक की नौबत आ पहुँचती है।

आसनोपचार

एकपाद उत्थानपादासन २ मिनट । उत्थानपादासन १ मिनट । एकपाद पवन-मुक्तासन २ मिनट । पवनमुक्तासन १ मिनट । शरीर में मेद अधिक हो तो दोनों नासापुटों से श्वास को बाहर निकाल कर आसन करें जब हृदय में शक्ति बढ़ने लगे और उसका क्रमिक विकास होने लगे, वेदना का अनुभव न हो, तब श्वास को अल्पपरिमाण में फेफड़ों में भरकर आसन करना चाहिये । बद्धपद्मासन का अपूर्ण प्रकार १ से २ मिनट । वीरासन १ मिनट । त्रिकोणासन १ मिनट । आकर्षण धनुरासन १ मिनट । अर्ध-मत्स्येन्द्रासन २ मिनट । उष्ट्रासन १ मिनट ।

आहार व्यवस्था

जिन स्त्री-पुरुषों के शरीर में मेद अधिक हो, वे हृदय विकार रहने तक घी-दूध को छोड़ दें अथवा इनका उपयोग बहुत कम मात्रा में करें । प्रातःकाल १४ औंस जल में एक छोटा चम्मच मधु (शहद) और आधे नीबू का रस डालकर पी लें । आसनादि कर लेने के पश्चात् ४ औंस मौसम्बी के रस और २ औंस सन्तरे के रस में २ औंस पानी और थोड़ी-सी जीरे की चुकनी डालकर पी लें । दोपहर के भोजन में गेहूँ की रोटी, मूँग की दाल और शाक-भाजी का व्यवहार करें । कचुम्बर (मिश्रित सलाद) का उपयोग अवश्य करें । पके हुए अन्न की अपेक्षा कच्चे अन्न का व्यवहार अधिक उपादेय होगा । भोजन के बाद सन्तरा, पपीता, दाड़िम आदि फलों का भी उपयोग करें । ४ बजे पावभर दूध में आधपाव पानी और काली द्राक्ष मिलायें और एक बर्तन में हिलाकर भलीभांति फेनिल हो जाने पर पी लें । रात में अल्पाहार जल्दी ही कर लें । फलाहार भी ठीक होगा । ८ दिन

अथवा १५ दिन के बाद १ दिन का उपवास रखना भी लाभकर होगा । उपवास में मौसम्बी का रस अथवा नीबू का शर्बत ग्रहण करें ।

मानसिक उषचार

प्रातःकालः स्नान, सन्ध्या, जप आदि से निवृत्त होकर बैठें और नेत्र बन्द करके मन में विचार करें—‘मैं आज से उदासीनता, निराशा और चिन्तामूलक विचारों से मुक्त हो रहा हूँ । मेरे हृदय में व्याप्त विकार और व्याधियाँ अब हमें पीड़ा पहुँचा न सकेंगी । मैं उनसे पूर्णतया मुक्त हो रहा हूँ । मेरे हृदय और फेफड़े विकसित, बलवत्तर और नीरोग हो रहे हैं ।’ इस प्रकार के विचारों को कम से कम ५२ बार दुहरायें । इन विचारों को रात में बिस्तर पर बैठकर भी मनन करें ।

प्राणायाम

अनुलोम-विलोम प्राणायाम भी इस रोग से पीछा छड़ाने का एक सफल प्रयोग है । प्रातःकाल, सायंकाल अथवा जप के समय में ३ अथवा ६ बार प्राणायाम करें । (प्राणायाम-विधि ‘उमेश-योगदर्शन’ के द्वितीय खण्ड में पढ़कर समझ लें) ।

१२ दमा (श्वास-अस्थमा)

दमा रोग के आरम्भ में जुकाम बारंवार होता रहता है । दमा (अस्थमा) के अनेक रूप हैं । किसी को यह रोग शीतकाल में परेशान करता है; किसी को ग्रीष्मकाल में यन्त्रणा देता है; किसी को वर्षाकाल में उत्पीड़ित करता है और किसी को प्रत्येक ऋतु में यह रोग बेचैन किये रहता है । कब्ज के विशेष बढ़ जाने, कफ और शीतप्रधान आहार का सेवन करने से दमा उग्र रूप धारण कर लेता है । किसी-किसी को शुक्ल और कृष्ण पक्ष की एकादशी से प्रतिपदातक विशेष कष्ट पहुँचाता है । किसी को चिन्ता के कारण भी यह उग्र हो उठता है । अल्पविटामिनयुक्त अथवा अल्पपोषक आहार

भी इस रोग का मूल कारण बन जाता है किसी को रात में यह इतना अधिक जोर पकड़ता है कि रोगी का रात भर बैठे रहना पड़ता है, मुंह खुल जाता है और श्वास की गति धौंकनी की तरह चलती रहती है। आंखों की स्थिति विकृत हो जाती है।

आसन-व्यवस्था

प्रातःकाल मलशोधनकर्म अर्थात् सूत्रनेति और धौतिकर्म करें। वस्त्र-धौति के स्थान पर दण्डधौति भी कर सकते हैं। दमा के रोग से पूर्णतया मुक्ति मिल जाने पर नेतिकर्म, धौतिकर्म और दण्डधौतिकर्म हमेशा न करें, महीने में केवल एकबार करें। नेति, धौति, दण्डधौति आदि की विधि इसी ग्रन्थ के मल-शोधन-कर्म-प्रकरण में पढ़कर समझ लें। उड्डियान बन्ध १० बार और नौलिकर्म १ मिनट करें। तदुपरान्त आसनों का अभ्यास करें। यदि शरीर में अशक्ति अधिक हो तो लेटे रहकर आराम से जितना भी आसनाभ्यास किया जा सके, उतना ही करें, अर्थात् एकपाद उत्थान-पादासन २ मिनट; उत्थानपादासन १ मिनट; एकपादपवनमुक्तासन १ मिनट; पवनमुक्तासन १ मिनट; भुजंगासन १ से २ मिनट; नौकासन (पहले, दूसरे और तीसरे प्रकारसहित) ३ मिनट तक आराम से करते रहें। उपर्युक्त साधना से शरीर में समुचित शक्ति आ जाने के पश्चात् निम्नलिखित आसनों का अभ्यास करें :—उर्ध्व सर्वांगासन २ से ४ मिनट। सर्वांगासन १ से २ मिनट। एकपाद-भुजासन आध मिनट। द्विपादभुजासन आध मिनट। लोलासन एक मिनट।

आहार-व्यवस्था

प्रातःकाल उठकर और दन्तधावन आदि से निवृत्त होकर १४ औंस जल में एक छोटे चम्मच भर शहद (मधु) मिलाकर पी जायें। आसनादि के अभ्यास से निवृत्त होने के पश्चात् मौसम्बी के ४ औंस रस में २ औंस गरम जल तथा थोड़ा-सा जीरा और सौंठ का चूर्ण डालकर पियें। दोपहर में भोजन

के समय में हरी पत्तियां—यथा मूली की पत्तियां, चौलाई की पत्तियां, पालक की पत्तियां, पुनर्नवाकी हरी पत्तियां—अल्प मात्रा में खायें। अभ्यास हो जाने पर अधिक मात्रा में भी खा सकते हैं। भोजन में तेल, हींग, तली हुई वस्तुयें, मिठाइयां, खटाई आदि वर्ज्य हैं। दाल, भात, रोटी, शाक आदि का सेवन उचित होगा। आटे में थूला चोकर भी अधिक परिमाण में रहे। भोजन के पश्चात् सूखे अथवा हरे अंजीर, काली द्राक्षा और छिलका सहित पपीता (पेड़ में पका हुआ) खायें। ४ बजे पावभर गाय अथवा बकरी के दूध में आधा पाव पानी, थोड़ा-सा वायविडङ्ग और ८ दाने काली द्राक्ष के छोड़कर गरम कर। तत्पश्चात् एक बर्तन से दूधरे वर्तन में तब तक हिलायें, जब तक उसमें फेन उत्पन्न न हो जाये। हिलाने के पहले उसे श्वेत वस्त्र से छान लेना चाहिये। फिर उस दूध को शनैः शनैः चम्मच से पियें। इतना दूध पीने में कम से कम १५ मिनट लग जाने चाहिये। सायं—काल ७ बजे अंजीर, काली द्राक्ष, पपीता और आमों की ऋतु में आम यथोचित मात्रा में लें। अधिक भूख लगे तो चौलाई, मेथी, मूली, पालक आदि की भाजियों को उबालकर और उसमें आवश्यकतानुसार नमक, जीरा मिलाकर खायें। रात में दूध पीने का निषेध है; पानी पीते रहें। कफ का प्रकोप हो तो रात में गरम पानी उपयोग करें।

विशेष सूचना

जिन लोगों को खांसी, बलगम, नाक में पानी आते रहना आदि लक्षण हों, उन्हें उपर्युक्त उपचार के साथ-साथ निम्नलिखित उपचार भी करते रहना चाहिये :—प्रातः काल स्नान से पहले वाष्प-स्नान लेना चाहिये। वाष्प स्नान पहले दिन ५ मिनट लें, फिर प्रतिदिन १।१ मिनट बढ़ाते हुये २० मिनट तक बढ़ायें। वाष्प स्नान के पश्चात् तुलसी की १० पत्तियां, पुदीना की १० पत्तियां, हरी चाय की दो पत्तियां, काली मिर्च २, और थोड़े से गुड़ को जल के साथ आग पर अच्छी तरह उबाल लें और छानकर २ ते ४ औंस की मात्रा में साधारण गरम पी लें। तत्पश्चात् श्वेत

वस्त्र और कम्बल से गले के नीचे के समग्र शरीर को ढक कर लेट जायें। शिर पर शीतल जल से भिगोया हुआ वस्त्र रख लें। पहले दिन ५ मिनट लेटे रहें। दूसरे दिन ६ मिनट, तीसरे दिन ७ मिनट—इस प्रकार प्रतिदिन १।१ मिनट बढ़ाकर २० मिनट तक लेटे रहने का अभ्यास करें। ६।७ मिनट के अभ्यास के पश्चात् शरीर में पसीना खूब छूटेगा, शरीर हल्का जान पड़ेगा, भूख बढ़ेगी, स्फूर्ति में भी वृद्धि होगी, कफ पिघल-पिघल कर पसीने तथा मल-मूत्र के द्वारों से बाहर निकल जायेगा। रोगी कुछ दिनों में यह देखकर आश्चर्य चकित होगा कि उसकी मलमूत्र-त्याग की क्रिया उचित रूप में काम करने लगी है और कफ के स्थान पर शरीर में रस, रक्त, मांस, मज्जा, मेद, अस्थि (हड्डी) वीर्य अथवा रजस् का पुननिर्माण उचित रूप से होने लगा है। यदि किसी के शरीर में मेद अधिक होगा तो वह उचित स्थिति में आ जायेगा। यदि शरीर दुर्बल और कम वजन वाला होगा तो यथोचित सम परिमाण में पहुंचने तक निरन्तर बढ़ता रहेगा। नींद भी अच्छी आयेगी।

मानसिक उपचार

रात में शयन-काल में और प्रातःकाल जागने पर पद्मासन, सिद्धासन अथवा सुखासन पर बैठकर मन ही मन बिचार करें कि “मेरी प्रकृति में उत्तरोत्तर सुधार हो रहा है। श्वासोच्छ्वास की गति उचित रूप से चल रही है। फेफड़ों के छिद्र उचित ढङ्ग से काम कर रहे हैं। श्वास-नलिका में पूर्ववत् विकास युक्त बल बढ़ रहा है। पाचन शक्ति प्रबल हो रही है। अब मैं निराशामय जीवन से निकल कर आशामय जीवन में प्रवेश कर रहा हूं। प्राकृतिक एवं यौगिक चिकित्सा द्वारा मेरे नवीन जीवन का निर्माण हो रहा है। मेरे मन में अब निराशापूर्ण भावनायें टिक नहीं सकतीं। मैं शरीर और मन से नीरोग और सशक्त बन रहा हूं।”

प्राणायाम

८ दिन तक दो बार कपालभाति करें। (कपाल भाति की विधि

मलशोधन कर्म में देखें) । प्रातःकाल आसनों के अभ्यास से निवृत्त होकर कपाल भाति करें । ८ दिन के पश्चात् प्रातःकाल दो बार और सायंकाल पेट खाली रहने पर दो बार करें । ८ से १५ दिन तक ४ बार प्रातःकाल और ४ बार सायंकाल करें । १५ दिन के बाद अनुलोम-विलोम प्राणायाम १८ दिन तक दो बार करें । १८ दिन के पश्चात् कपालभाति और अनुलोम-विलोम प्राणायाम बन्द करके प्रातःसायं २।२ बार भस्त्रिका प्राणायाम नं० १ करें । ८ दिन के पश्चात् ३।३ बार करें । १५ दिन के पश्चात् भस्त्रिका प्राणायाम नं० १ दो-दो बार और भस्त्रिका प्राणायाम नं० २-दो बार करें । विशेष शीत की ऋतु हो तो भस्त्रिका प्राणायाम के साथ सूर्य-भेदन प्राणायाम ३।३ बार करें । (प्राणायाम की विधि, समय और तरीका 'उमेश-योग दर्शन' के द्वितीय खंड में पढ़कर समझ लें ।) प्राणायाम से मनोबल बढ़ता है । नाड़ियां शुद्ध होती हैं और अनेक प्रकार के भयानक रोगों से छुटकारा मिलता है । यह अध्यात्म-व्याख्यियों के लिये अत्यन्त लाभप्रद और जीवन को स्वच्छ दिशा की ओर अभिमुख करने वाला प्रयोग है ।

सूर्य-किरण-चिकित्सा

पीले रङ्ग की बोतल का पौन भाग शुद्ध जल से भरकर लकड़ी के टुकड़े पर दिन में १० बजे घूप में रख दें और चार बजे दिन में उठा लें । बोतल का मुंह बन्द रखें । ४ बजे बोतल को घूप से उठा लेने के बाद उसे ऐसे स्थान पर रखें, जहां उस पर बाहरी प्रकाश पड़ न सके । बोतल का जल शीतल हो जाने के पश्चात् १ से २ औंस तक; अर्थात् आयु, शक्ति, ऋतु और लाभ के अनुसार १ से २ औंस तक पी लें । दिन में ३।३ घण्टे के अन्तर पर जल पीते रहें और चार बार पियें । इसी विधि से नारङ्गी रङ्ग अथवा लाल रङ्ग की बोतल में सूर्य-किरण-चिकित्सा की विधि से तैयार किये हुये जल को दिन में ४ बार प्रकृति, आयु, ऋतु और लाभ के आधार पर आधा औंस से डेढ़ औंस तक पियें । एक दिन लाल बोतल के

जल का और दूसरे दिन पीली बोतल के जल का उपयोग करें। जब तक रोग का प्रभाव अधिक रहे, तब तक दिन में दो-दो घण्टे के अन्तर पर दोनों बोतलों का जल उपरिनिर्दिष्ट मात्रा में ले सकते हैं। कफ के कावू में आ जाने पर लाल बोतल के जल को बन्द कर देना चाहिये अथवा कम मात्रा में ग्रहण करना चाहिये। इसका परिणाम यह होगा कि कफ का प्रवाह कम होगा, शुद्ध रक्त की वृद्धि होगी, स्फूर्ति भी बढ़ेगी, परन्तु कब्ज हो जाने की सम्भावना रहेगी। दमा के रोगी को कब्ज रहना हितकर नहीं। क्यों-कि कब्ज से दमा बढ़ जाता है, अतः कब्ज से बचे रहने का प्रयास हमेशा करते रहें। वात, पित्त और कफ को समान स्थिति में लाने के लिये पीत रङ्ग की बोतल के जल का उपयोग बताया गया है। ध्यान रहे कि सूर्य बिम्ब अनेक विटामिनों (पोषण तत्वों) से भरपूर है। इन पोषण तत्वों को हम सूर्य किरणों से तैयार किये हुए जल के द्वारा, प्रातः सायं सूर्य-किरणों के सामने बैठकर, फलों को ग्रहण करने में असमर्थ लोगों के शरीर में बिजली के इलाज द्वारा हम जीवन तत्वों को यथेष्ट मात्रा में पहुँचा सकते हैं और रोग का निवारण कर सकते हैं। भारत देश में दमे का रोग व्यापक रूप में फैला हुआ है। वयस्क स्त्री-पुरुषों की बात को जाने दीजिये, बालक भी इस रोग से पीड़ित पाये जाते हैं। क्षय, मधुमेह, हृदय विकार, कैंसर आदि की तरह दमे का रोग भी व्यापक बनता जा रहा है। इसी कारण यहाँ इस रोग के कुछ प्राकृतिक उपचार बताये गये हैं। दमे के और भी अनेक प्रकार के इलाज हैं, परन्तु ग्रन्थ-विस्तार के भय से यहाँ उन सब का वर्णन सम्भव नहीं।

१३ मूक्षार् रोग

वीर्य दोष, वायु दोष, मल-मूत्रादि का वेग रोकने से, किसी विशेष अवयव में चोट या आघात लगने से, शरीर के सप्त धातु के क्षीण होने अथवा निबल होने से, चिन्ता से, शराब, गाँजा, तम्बाकू, सिगरेट आदि के

सेवन से, अनिद्रा रोग से, क्रोध और मोह से, पित्त विकार और ऐसे हो अन्य अनेक कारणों से मूर्च्छा रोग हो जाता है ।

मूर्च्छा का पूर्व-रूप

वारंवार जंभाई आते रहना, मन में ग्लानि उत्पन्न होना, चेतना शक्ति अल्प मालूम होना, चक्कर आना, अचानक हाथ-पैरों के अकड़ जाने से जमीन पर गिर जाना, मुंह में फेन आना, आंखों का घूमते रहना; हाथ-पैर आदि अवयवों का लकड़ी के समान शुष्क और कठोर हो जाना, श्वास-सोच्छ्वास की गति अधिक बढ़ जाना अथवा मन्द पड़ जाना, काम करते-करते शिर भारी हो उठना और सोने की इच्छा होना, रास्ते में चलते-चलते अचानक गिर जाना और बेसुध हो जाना आदि लक्षण प्रायः प्रकट होते रहते हैं । यह रोग माता-पिता के रजस् और वीर्य दोष तथा अति-मैथुन से भी उत्पन्न होता है । धन्वा नौकरी में असफलता मिलने, अप्रत्याशित हानि होने तथा मानसिक आघात पहुंचने से भी यह रोग हो जाता है ।

आसनोपचार

शरीर में साधारण भी शक्ति हो तो शीर्षासन अवश्य ही करना चाहिये । पहले १ मिनट और तदुपरान्त प्रतिदिन १।१ मिनट बढ़ाते हुए आधा घण्टे तक अभ्यास बढ़ाना चाहिये, श्वासन ५ मिनट । एकपाद उत्थानपादासन २ मिनट । द्विपाद उत्थानपादासन १ मिनट । विपरीत-करणी १ से ४ मिनट । सर्वाङ्गासन १ से २ मिनट । चक्रासन १ मिनट । उष्ट्रासन १ मिनट । पादाङ्गुष्ठान १ मिनट । वीर्यस्तम्भनासन आधा मिनट । सुप्तउर्ध्वहस्तासन १ मिनट । नौकासन १ मिनट ।

उपर्युक्त आसनों का अभ्यास करते समय यदि अशक्ति और थकावट अनुभव हो तो जितने समय तक सरलता से किया जा सके, उतने ही

समय तक अभ्यास करें और शक्ति-संवर्धन के साथ तदनुसार अभ्यास का समय भी बढ़ाते रहें ।

प्राणायाम-चिकित्सा

अनुलोम-विलोम प्राणायाम ३ बार और उज्जाई प्राणायाम ४ बार करें । (प्राणायाम की विधि 'उमेश-योगदर्शन' के द्वितीय खण्ड में पढ़ें) ।

आहार-चिकित्सा

खटाई-मिठाई, कषाय और लवण (नमकीन), लाल मिर्च आदि मसालों का उपयोग बहुत कम करना चाहिये । यदि हो सके तो इन्हें बिल्कुल त्याग देना चाहिये । प्रातःकाल आसनादि के अभ्यास से निवृत्ति होने के पश्चात् गाय अथवा बकरी के पाव भर दूध में शंखावली का चूर्ण मिलाकर पीना चाहिये । भोजन के समय में गेहूं की रोटी अथवा बाजरे की रोटी अथवा गेहूं, बाजरा और ज्वार की मिलावट की रोटी, छिलके सहित मूंग की दाल, भिण्डी, परवल, दोनों जाति की तुरई, दूधी (लौकी), कोहला (पेठा) अथवा सूरन का शाक उपादेय होगा । उपरिनिर्दिष्ट वस्तुओं में यदि कोई वस्तु अप्राप्य हो तो भी कोई चिन्ताकी बात नहीं, मीठी छाछ, कचुम्बर (सलाद) एवं अनेक प्रकार की पत्ते वाली भाजियों का उपयोग हितकर है । भोजन के पश्चात् द्राक्ष, सेव (सफरचन्द), दाडिम, मौसम्बी आदि में से जो भी फल सुलभ हों, उन्हें खाना चाहिये । ४ बजे अपराह्न में पाव भर दूध में एक चम्मच ब्राह्मी घृत मिलाकर पी जायें । रात में ७।। से ८ बजे तक भोजन कर लें । एक दिन मूंग की दाल की खिचड़ी और एक दिन तुवर की दाल की खिचड़ी छाछ के साथ भोजन में ग्रहण करना चाहिये । सायंकाल पत्तीवाली भाजियों का उपयोग अधिक मात्रा में करना चाहिये । दिन भर में पानी के स्थान पर यव (जौ) से तैयार किया हुआ जल (बाली का पानी) पीना चाहिये । प्याज का उपयोग भी

आवश्यक है। यदि पित्त प्रकृति हो तो सफेद और कफ या वातप्रधान प्रकृति हो तो लाल प्याज लेना अनुकूल होगा।

मानसिक विचार

प्रातःकाल स्नान करने के बाद पास में धूप-दीप आदि रखकर पद्मासन अथवा सुखासन लगाकर बैठ जायें एवं आंखें बन्द कर मन ही मन विचार करें कि “मेरा स्वास्थ्य दिनानुदिन सुधर रहा है। शारीरिक अवयवों की शक्ति बढ़ती जा रही है। मन प्रफुल्ल हो रहा है। जीवन में रौनक आ रही है। संसार में मेरा जन्म रोगी बनने के लिये नहीं हुआ; अपितु रोगों का प्रतिरोध कर निरामय रहने के लिये ही जगत् में मेरा अस्तित्व है। अब मैं आशापूर्ण जीवन में प्रवेश कर चुका हूं। मेरे शरीर का प्रत्येक अवयव सुन्दर, सुदृढ़, सशक्त एवं विकासवान् बन रहा है।” कम से कम ५ मिनट और अधिक से अधिक ३० मिनट तक उपरिलिखित दिव्य विचारों का मनन अवश्य करें—उनमें तन्मय हो जायें। अन्य विचारों का आक्रमण होने पर उन्हें मन से दूर भगाते रहें। इसी प्रकार रात में सोते समय भी विचार करें। यदि मन ग्लानि, चिन्ता, क्रोध, क्लेश आदि दुर्भावनाओं से अधिक आक्रान्त हों तो जहां पर अध्यात्मविषयक व्याख्यान, वाद-विवाद या चर्चा होती हो; वहां जाकर बैठें। इसके अतिरिक्त महागुरुओं के जीवन-चरित्र तथा उपदेशों का अध्ययन भी अवश्य करें। नन्दन निकुंज, हरी-भरी शस्य-श्यामला भूमि और फल-फूलमण्डित पेड़-पौधों के बीच पहुंचकर गहरे श्वासोच्छ्वास की क्रिया करें। अपने घर में गुरु और महात्माओं के चित्र रखें और उनकी ओर मन को वारंवार पहुंचाकर दिव्य जीवन की प्रेरणा प्राप्त करें। मैं विश्वास दिलाता हूं कि यह कार्यक्रम एक दिन आपको उच्च स्थिति पर पहुंचा देगा।

मालिश (तैलाभ्यंग)

प्रतिदिन प्रातःकाल आध घण्टे तक अपने हाथों से समग्र शरीर की

मालिश करें अथवा अन्य किसी से करायें। बादाम का तेल, नारायण तेल, मालकांगनी का तेल, खोपरे का तेल, तिल का तेल, शीतकाल में सरसों का तेल, रामतीर्थ ब्राह्मी तेल आदि में से जो भी अनुकूल हो, उससे समग्र शरीर की मालिश करनी चाहिये। मालिश करने के आध घण्टे के पश्चात् शीतल जल से स्नान करें। यदि शीतल जल प्रकृति के अनुकूल न हो तो ३ महीने तक लगातार मालिश का यह प्रयोग करते रहें। यदि रोग नया हो तो २१ दिन तक करना चाहिये। इस प्रयोग को निरन्तर करते रहना भी हानिकर नहीं; बल्कि अधिक लाभ पहुंचेगा।

सूर्य किरण चिकित्सा

ब्लू अर्थात् नीले रंग की बोतल का पौन भाग जल से भरकर सवेरे १० बजे सूर्य-किरणों के सामने लकड़ी के टुकड़े पर रख दें। हरे, पीले और लाल रंग की बोतलों में भी उपर्युक्त विधि से जल तैयार करें। प्रातःकाल ८ बजे नीले रंग की बोतल का १ से २ औंस जल पी जायें। १०॥ बजे हरे रंग की बोतल का जल उपरिनिर्दिष्ट परिमाण में पियें। जिसके शरीर में रक्त की मात्रा अल्प हो; ऐसे लोग सवेरे ११॥ बजे, दोपहर ३ बजे १ से २ औंस लाल रंग की बोतल का जल पियें। जिन लोगों को मलबद्धता हो; वे प्रातःकाल उठते ही दन्तधावन के पश्चात् १ से २ औंस प्रातःकाल और रात में सोते समय पीले रंग की बोतल का जल पियें। यह सूर्य-किरण-चिकित्सा अनेक प्रकार की है। फिर भी, मूर्च्छा रोगियों के लिये यह प्रयोग अति लाभदायक है। चार्तुमास (वर्षाकाल) में कदाचित् सूर्य की किरणों में जल तैयार किया जा न सके तो जब कभी सूर्य की किरणें सुलभ हों, तभी ३१४ दिन के लिये जल तैयार करके रख लें और उसका उपयोग करते रहें।

१४ कैंसर [अर्बुद-नासूर]

मानव शरीर का जो अवयव स्वभावतः कमजोर होता है, वह अव-

यव के द्वारा सप्तधातुजन्य निकार युक्त विजातीय द्रव्य बाहर निकालने का प्रयास करते हैं उदाहरणार्थ जुकाम, मूलव्याधि (बवासीर), फोड़ा-फुन्सी, खुजली आदि अनेक रोगों के रूप में शरीरगत विकार स्पष्टतया प्रकट होते हैं, उसी तन्त्र केन्सर, रोग उत्पन्न कर प्रकृति शरीर में भरे हुए विजातीय द्रव्यों को विविध अङ्गों-गला, गुर्दा, छाती और अन्य अङ्गों-द्वारा निकाल बाहर करने का प्रयत्न करती है ।

कैन्सर होने का कारण

तपकीर (सूँघनी) सूँघना, बीड़ी, सिगरेट, चुरट आदि का घूमपान, गुडाकू पीना, तम्बाकू खाना, गाँजा-भाँग, मांस-मछली शराब आदि का उपयोग, सोडा-लेमन आदि पेय पदार्थ पीते रहना, पूड़ी, पकौड़ी, भजिया, सेव, गांठिया आदि खाना, दुर्गन्ध युक्त गन्दे स्थानों में रहना, शरीर की स्वच्छता उचित रूप से न रखना, गन्दे कपड़े पहनना, विकार युक्त जल का सेवन आदि अनेक कारणों से यह घातक रोग मानव-शरीर में लग जाता है ।

लक्षण

पाचन शक्ति का मन्द पड़ जाना, रक्त में अशुद्धता, खाने-पीने में अरुचि, रोगाक्रान्त अङ्ग में फोड़े की जैसी वेदना होना (वेदना कभी होती है और कभी नहीं भी होती,) गले में कैन्सर हो तो अन्न ग्रहण-में कठिनाई होना, रोग के अधिक पुराने हो जाने पर पानी पीने तक में तकलीफ होना, शरीर में बेचैनी-सी मालूम पड़ना और घबराहट के लक्षण प्रकट होना आदि इसके प्रमुख लक्षण हैं । यकृत का कैन्सर हो जाने पर दाहिने कन्ध-स्थान के निचले भाग में पीड़ा मालूम होती है । शरीर दिन-प्रतिदिन शिथिल और क्षीण होता जाता है । स्पर्श करने पर कठिन और विषम प्रतीत होता है । कभी-कभी ज्वर भी आ जाता है और कभी-कभी पित्त विकार भी हो जाता है ।

आसन-चिकित्सा

जहां शुद्ध और मुक्त वायु आता हो और जिस स्थान पर हरे-भरे वृक्ष हों एवं सुगन्धित पुष्पों में पेड़-पौधे लदे हों, ऐसे दिव्य स्थान पर निवास करने और आसनाभ्यास करने से कैंसर का रोगी पर्याप्त राहत और लाभ का अनुभव करता है। उपरिलिखित वर्ज्य और विकार युक्त आहार एवं जल का तुरन्त ही त्याग कर देना चाहिये। श्वासन के समय में श्वास को ५ बार लम्बा खींचना और छोड़ना चाहिये। तत्पश्चात् १ मिनट का विश्राम लेकर अर्धमत्स्येन्द्रासन का पहला अपूर्ण प्रकार २ मिनट अर्धमत्स्येन्द्रासन का दूसरा अपूर्ण प्रकार २ मिनट, कूर्मासन १ मिनट, वज्रासन २ मिनट, सुप्तवज्रासन १ मिनट, एकपादपवनमुक्तासन २ मिनट, पवनमुक्तासन १ मिनट और वीरासन २ मिनट करें। विपरीतकरणी आसन कैंसर रोग के लिये विशेष लाभदायक है: इसे ३ से ६ मिनट कर लेना चाहिये। सुप्तघनुरासन आधा से १ मिनट किया जाये।

आहार-चिकित्सा

इस रोग के निवारण के लिये आहार की ओर विशेष रूप से आधार रखना उचित है, अर्थात् आहार-पदार्थ द्रव (पतला), जीवनी शक्ति से भरपूर, पाचन में हल्का एवं मल-मूत्र के लिये अनुकूल होने चाहिये। प्रातःकाल पानी के साथ मौसम्बी का रस, १० बजे बकरी का पावभर दूध, १२ बजे मेथी तथा बथुआ की भाजी जल में उबालकर उसमें थोड़ा-सा जीरा, सेंधा नमक और जरा-सा नींबू मिलाकर ८ औंस तक लेना चाहिये। दिन २ बजे बकरी का दूध पाव भर, ४ बजे पानी मिला मौसम्बी का रस, ६ बजे (सायं) पालक और चौलाई की भाजी, रात ८ बजे मूंग को पानी में उबालकर और उसमें थोड़ा-सा गुड़ मिलाकर खाना चाहिये। यदि खाने में कठिन प्रतीत हो तो अच्छी तरह से पतला बनाकर उसे पी जाना चाहिये।

जब तक रोग का दबाव कम न हो, तब तक इस पथ्य के आधार पर रहना होगा। तत्पश्चात् चावल, हरी तरकारी, तुवर की दाल, सलाद (मिश्रण) आदि का उपयोग किया जा सकता है। पथ्य के दिनों में निशेषतः मीठी द्राक्ष (अंगूर), छिलके सहित पपीता, इलायची, केला, अंजीर आदि ले सकते हैं। दिन भर में ५।६ ग्लास पानी पीना आवश्यक है।

मानसोपचार

प्रातःकाल बिछौने से उठते ही हाथ-मुंह धोकर बिछौने पर बैठ जायें और निम्नलिखित विचारों का वारंवार उच्चारण करते रहें :—“मेरे शरीर के जिस अंग में रोग व्याप्त है; वह अंग नीरोग, वेदनारहित बनता जा रहा है। अब मैं रोग से मुक्त हो रहा हूँ। (महिलाओं को ‘राग से मुक्त हो रही हूँ’ कहना चाहिये) अब तक मेरा शरीर दुर्बल और शक्तिहीन प्रतीत होता था। किन्तु अब वह स्थिति नहीं रही। आज से मेरा शरीर बलवान् चैतन्ययुक्त और कान्तिमय बन रहा है एवं सप्तधातु निर्विकार होकर विशुद्ध रूप में परिवर्तित हो रहे हैं। मेरा जीवन अब नवीन आशा एवं विश्वास की किरणों से जगमगा उठा है।” इस प्रकार के मनोबल प्रदायक विचारों को कम से कम ५१ बार स्मरण करना चाहिये। कैंसर के रोगियों का मन निरन्तर भयभीत और निराशा से भरपूर रहता है। उपर्युक्त शक्तिदायक विचारों में श्रद्धापूर्वक तन्मय रहने से ऐसे रोगियों की मानसिक शक्ति उन्नत होगी; बुद्धि में पवित्रता और स्थिरता का संचार होता जायेगा एवं जीवन-दीप के शीघ्र ही बुझ जाने की जो चिन्ता घेरे रहती थी; वह पूर्णतया दूर हो जायेगी।

सूर्य किरण चिकित्सा

सूर्य के सामने आसन लगाकर बैठ जायें और शरीर के जिस भाग में कैंसर की वेदना हो, उस पर हरे रंग के कांच द्वारा सूर्य की किरणें

डालें। दूसरे दिन ब्लू (नीले) रंग के कांच से इसी प्रकार सूर्य-किरणें पीड़ित अंग पर डालें। पहले दिन ८ मिनट और दूसरे दिन से २।२ मिनट बढ़ाते रहकर २० से ३० मिनट तक सूर्य-किरणें लें। यदि पेट साफ न रहता हो तो पीले रंग की बोतल में किरणों के द्वारा तैयार किया हुआ जल ले सकते हैं अथवा पीले रंग के कांच के द्वारा पेट पर सूर्य-किरणें ली जा सकती हैं। समय ऊपर बताये अनुसार ही है। यदि दस्त अधिक आने लगें तो समय की मर्यादा कम करनी पड़ेगी और यदि बैठकर सूर्य की किरणें ली जा न सकें तो लेटकर भी ले सकते हैं। शरीर पर कोई वस्त्र रहना न चाहिये, मात्र लंगोट या निकर पहन सकते हैं। यह भी सावधानी रखनी पड़ेगी कि खुली आंखों पर सूर्य की किरणें पड़ न सकें।

जलोपचार

कड़वी नीम के पत्तों और लीमड़ी के पत्तों को जल में उबालें और इस जल को कपड़े से छानकर ३० नम्बर के गेलबनाइज (टीन) के टब में भर दें। जल टब के आधे भाग तक भरा हो। पत्तियों की मात्रा यही है कि उनसे जल का रंग बदल जाये। यद्यपि कुछ और वनस्पतियां जल में डालनी पड़ती हैं, परन्तु वे कितनी मात्रा में हों और किस आयु तथा कौन-सी प्रकृति के प्राणी के लिये उनका उपयोग लाभकर या हानिकर होगा—इसकी उचित जानकारी किसी तज्ञ की सलाह से प्राप्त किये बिना उनका उपयोग किया नहीं जा सकता। अस्तु जलपूर्ण टब में आराम कुर्सी की तरह बैठ जायें। पैर टब से बाहर रहें और पीठ के आधे से ऊपर का भाग बाहर रहे। तत्पश्चात् दाहिने हाथ को दाहिनी ओर से बाईं ओर पेट के चारों ओर घुमाते रहें। पहले दिन ७ मिनट। दूसरे दिन से २।२ मिनट बढ़ाते हुए १५ से २५ मिनट कटिस्नान करें। इस कटिस्नान से शरीर के विषाक्त तत्व बाहर निकल जाते हैं। कटु नीम की पत्तियों में चमत्कारपूर्ण लाभ पहुंचाने की शक्ति विद्यमान है।

१५ मूल व्याधि [अर्श-बवाशीर]

यह रोग गुदा की त्रिवली (गुदा की आंतों की परतें ४॥ अंगुल लम्बी हैं) में होता है। वातादि दोष त्वचा, मांस, रुधिर और मेद को दूषित बनाकर गुदा में मांस के अंकुर उत्पन्न कर देते हैं। इसी को मूल-व्याधि, अर्श अथवा बवासीर भी कहा जाता है। तीखी रुक्ष, कड़वी, कणैली आदि वस्तुयें अधिक मात्रा में खाने से, मदिरा-पान करने से, अधिक व्यायाम करने से, अतिशय शोकाकुल होने से, धूप में अधिक समय तक रहने से वातमूलक बवासीर हो जाती है। इसी प्रकार अन्य कारणों को लेकर पित्त कूपित हो उठता है, फलतः पित्तार्श रोग उत्पन्न हो जाता है, इसी प्रकार कफार्श का जन्म भी विशेष कारणों को लेकर हो जाता है। इस रोग की अवस्था में मल-विसर्जन करते समय गुदा-द्वार में अत्यधिक वेदना होती है। बड़ी आंत के नीचे के द्वार (मुख) के पास मल-विसर्जन के समय मल शेष रह जाता है और गुदा द्वार के ऊपरी भाग में मल अवरुद्ध रहता है। यह एकत्रित मल जब सड़ता है तब उष्णता प्रधान अधिक हो जाता है और दुर्गन्धि युक्त बन जाता है। नित्य के भोजन से बनने वाले मल के बाहर निकलने में भी यह मल बड़ी बाधा उत्पन्न करता है। कदाचित् मल-विसर्जन हो, तो भी सम्पूर्ण रूप में नहीं हो पाता। इसी दुर्गन्धपूर्ण मल से उत्पन्न उष्णता के परिणामस्वरूप गुदा की त्रिवली के भाग में सूजन आ जाती है और आस पास का रक्त भी सूजन के स्थान पर जम जाता है। सूजन के स्थान की त्वचा पतली पड़ जाती है, फलतः शोथ (सूजन) के स्थान पर छिद्र हो जाते हैं और इन छिद्रों के मार्ग से रक्तस्राव प्रारम्भ हो जाता है। कभी-कभी रक्तस्राव न होने पर भी मल-विसर्जन काल में अतीव वेदना होती है, अर्थात् बवासीर (मूलव्याधि) के अनेक कारण होने पर भी एक कारण मलवृद्धता भी है।

आसन-चिकित्सा

नवलि कर्म आधा मिनट। पूर्णपद्मासन १ मिनट। त्रिकोणासन १

मिनट । आकर्षण (आकर्ण) धनुरासन १ मिनट । मत्स्यासन २ मिनट । नौकासन १ मिनट । लोलासन १ मिनट । हंसासन आधा मिनट । शवासन ५ मिनट । अश्विनी मुद्रा का अभ्यास भी आवश्यक है । गुदा द्वार के यथा-सम्भव संकोचन और प्रसारण को अश्विनी मुद्रा कहते हैं । प्रातःकाल आसन करने के पश्चात्, मध्याह्नकाल, अथवा सायंकाल किसी भी समय अथवा तीनों काल में ५ मिनट अश्विनी मुद्रा की जा सकती है । यदि मलावरोध का विकार हो तो बस्तिकर्म भी करें । बस्तिकर्म के समय में एक पाव मीठी छाछ मलद्वार से खींचें । तदुपरान्त नवलिर्कर्म करें और नवलि कर्म के पश्चात् खींची हुई छाछ को मलद्वार से बाहर निकाल दें । यह क्रिया ८ से ९ दिन तक करें ।

आहार-चिकित्सा

रात में १ तोला मेथी के दानों को भिगों रखें । प्रातःकाल उन्हें पीस कर और उसमें थोड़ा-सा गुण मिलाकर खा जायें । यह प्रयोग कम से कम २१ दिन तक करें यदि मिल सके तो मेथी के कोमल हरे पत्तों की भाजी को पीस कर और उसमें थोड़ी-सी मिश्री मिलाकर पी जाना चाहिये । दोपहर में दाल, भात, रोटी, शाक आदि का भोजन कर सकते हैं, परन्तु भोजन के समय में मूली पत्ते सहित खाना अनिवार्य है । ४ बजे गन्ने का रस ८ से १२ औंस तक लेना चाहिये । दिन में दो बार गाय का दूध पियें । रात का भोजन अल्प मात्रा में हो, विशेष कच्चे आहार का उपयोग हो । खटाई, मांस, मदिरा, सिगरेट, बीड़ी, तम्बाकू आदि वर्ज्य है ।

मूल व्याधि (बवासीर) में यदि रक्त गिरता और प्रकृति पित्त-प्रधान हो तो दिन में दो बार नीबू का शर्बत पी लें । शर्बत में तख्मरिया को कुछ देर तक पानी में फुला रखें । यह शीतल पेय है । अतः शीतलता पहुंचने पर दो-तीन दिन में रक्तस्राव बन्द हो जायेगा । सम्भव है कि रक्तस्राव के समय में तख्मरिया का उपयोग लगातार करते रहने से शरदी लग जाये, ऐसी स्थिति उत्पन्न होने पर तख्मरिया का उपयोग बन्द कर दें ।

मानसोपचार

प्रातःकाल स्नान-सन्ध्या कर लेने के पश्चात् किसी अनुकूल आसन पर बैठकर मन ही मन विचार करें कि "मेरे गुदा-द्वार, बड़ी आंत आदि अवयव सशक्त हो रहे हैं और अपना कार्य भी उचित रूप से कर रहे हैं। उनकी कार्य शक्ति दिन पर दिन बढ़ रही है। प्रतिदिन मूलव्याधिका कष्ट कम हो रहा है। मल-विसर्जन उचित ढङ्ग से हो रहा है। शरीर में नवीन बल, नवीन स्फूर्ति और नवीन चैतन्य का प्रादुर्भाव हो रहा है। मन बलवान् तथा तेजस्वी बन रहा है। दुर्बल विचार भाग रहे हैं तथा सबल विचार नवीन आशा एवं विश्वास का संचार कर रहे हैं। दुःख और निराशा की उलझनों से मुक्त होकर अब मैं सुख तथा आशामय जीवन में प्रवेश कर रहा हूँ।

सूर्य-किरण-चिकित्सा

ब्लू रज्ज की बोतल में सूर्य किरणों द्वारा तैयार किये हुए जल में श्वेत वस्त्र का टुकड़ा भिगोकर कन्धस्थान और गुदा-द्वार पर आध घण्टे तक रखें। यह प्रयोग २१ दिन तक करें। नारंगी रंग की बोतल में तैयार किया हुआ और बादली रंग की बोतल में सूर्य-किरणों द्वारा तैयार किया हुआ जल दिन में २।२ घण्टे के अन्तर पर दो-दो औंस पीते रहें।

जलोपचार

गेलबनाइज टीन के टब का आधा भाग जल से भर दें और उसमें जिस तरह भाराम कुरसी पर बैठते हैं, उसी तरह बैठ जायें। तदुपरान्त दाहिनी ओर से बाईं ओर हाथ घुमाते रहें। पहले दिन ६ मिनट यह क्रिया करें। फिर दूसरे दिन से दो-दो मिनट बढ़ाते हुए आध घण्टे तक कटिस्नान करें। यदि बवासीर अर्थात् मूलव्याधि का रोग पुराना और कष्टदायक होगा तो कई प्रकार की वनस्पति औषधियां इस जल में डालनी पड़ेंगी

परन्तु रोगी को देखे बिना यह निश्चय करना सम्भव नहीं कि कौन-सी औषधि डालना लाभकर होगा ।

मिट्टी का प्रयोग

प्रातःकाल स्नान करने से पहले प्रथम दिन १० मिनट, द्वितीय दिन १२ मिनट—इस प्रकार प्रतिदिन दो-दो मिनट बढ़ाते हुए एक घण्टे तक मिट्टी की पट्टी कन्धस्थान पर रखनी चाहिये । मिट्टी को दूध में तैयार कर रोटी सी टिकिया बना लें ।

१६ आन्त्रपुच्छ रोग [एपिण्डिसाइटिस]

यह रोग बैठे-बैठे काम करने वालों को विशेष रूप से हो जाता है । खाने-पीने में अनियमितता, मल त्याग में असावधानी, दुष्पाच्य या विलम्ब से पचने वाले आहार पदार्थों का नित्य उपयोग आदि इस रोग के प्रमुख कारण हैं । यह रोग बच्चे, बूढ़े, जवान सभी वय के लोगों के पीछे लग जाता है । इसके अतिरिक्त नागरिक जीवन में निरन्तर व्यस्त एवं प्रत्येक प्रकार के व्यायाम से विमुख रहने वाले स्त्री-पुरुष भी प्रायः इस रोग के चंगुल में फँसे पाये जाते हैं ।

पूर्व-लक्षण

नाभि के नीचे के दाहिने भाग में वेदना का अनुभव होता है । वेदना कभी होती है और कभी नहीं भी होती । छोटी और बड़ी आंत की सन्धि में पूँछ का आकार बन जाता है और इस स्थान पर रोगोत्पादक रस अथवा वायु भर जाती हैं, फलतः वह स्थान-अङ्ग-भाग फूल उठता है और कुछ ही महीनों के बाद प्रभावित अङ्ग अनियमित काम करना प्रारम्भ कर देता है । इसी स्थिति को आन्त्रपुच्छ (एपिण्डिसाइटिस) रोग कहा जाता है ।

प्राकृतिक उपचार का महत्त्व

इस रोग से मुक्ति पाने के सम्बन्ध में किसी प्रकार की चिन्ता करने की तनिक भी जरूरत नहीं। औषधिक या अप्राकृतिक उपचारों की दिशा में तन-मन-धन से बहुत कुछ प्रयास और परिश्रम करने के पश्चात् रोगी यथेष्ट लाभ उठाने से वंचित रहते हैं, तब निराश होकर वे प्राकृतिक उपचारों की शरण लेते हैं। अप्राकृतिक उपचार करने वाले डाक्टर-वैद्यादि अनेक प्रकार के प्रयोगात्मक इंजेक्शन और औषधियां देने के बाद भी जब किसी प्रकार का सन्तोष जनक परिणाम निकाल नहीं पाते, तब ऑपरेशन (शस्त्र-क्रिया) द्वारा आन्त्रपुच्छ को काट देते हैं। किन्तु हमारी पद्धति में ऑपरेशन को स्थान नहीं है। वस्तुतः बिना शस्त्र-क्रिया (ऑपरेशन) के भी इस रोग को प्राकृतिक और यौगिक उपचार-साधनों द्वारा निस्सन्देह मिटाया जा सकता है। प्रायः देखा जाता है कि इस रोग से पीड़ित स्त्री-पुरुष अप्राकृतिक इलाज करने वालों के जाल में फँस जाते हैं और अधिकाधिक दुःख एवं हानि उठाते हैं।

आसनोपचार

आसनोपचार प्रारम्भ करने पर कुछ दिन तक ऐसे आसनों का अभ्यास करना चाहिये, जिनसे उदरगत अङ्ग-प्रत्यङ्गों को विशेष श्रम उठाना न पड़े और वे श्रान्त या शिथिल न हों। ऐसी सुविधा पूर्ण स्थिति प्राप्त करने के लिये निम्नलिखित आसनों का अभ्यास उपयुक्त होगा :—
जानुशिरासन का पहला प्रकार २ से ३ मिनट। जानुशिरासन का दूसरा प्रकार १ से २ मिनट। जानुशिरासन का तीसरा प्रकार १ से २ मिनट। बद्ध पद्मासन का पहला प्रकार १ मिनट। बद्ध पद्मासन का दूसरा प्रकार १ मिनट। बद्धपद्मासन का तीसरा, प्रकार १ मिनट, बद्धपद्मासन का चौथा प्रकार १ मिनट। एकपाद पवनमुक्तासन २ मिनट। द्विपाद पवनमुक्तासन १ मिनट। भुजङ्गासन १ मिनट। शलभासन १ मिनट। अर्धमत्स्येन्द्रासन २

मिनट । बकासन १ मिनट । उर्ध्व सर्वाङ्गासन १ मिनट । सर्वाङ्गासन १ मिनट । चक्रासन १ मिनट ।

उपर्युक्त आसनों की साधना करने पर कुछ दिनों के बाद आन्त्र-पुच्छ की वेदना कम होगी, अतः वेदना से राहत पाने के बाद तुरन्त ही उड़ीयान बन्ध १ मिनट और नौलिकर्म १ मिनट करें । लाभ के अनुसार अन्य आसन भी किये जा सकते हैं ।

आहार-चिकित्सा

प्रातःकाल दन्तधावन के पश्चात् १ गिलास पानी पी लेना चाहिये । आसनादि के अभ्यास से निवृत्त होने के पश्चात् गाय अथवा बकरी के पाव भर दूध में वायविडंग कं ४ दाने डालकर उबालें और तत्पश्चात् दूध को एक लोटे से दूसरे लोटे में हिलाते रहें और उसमें जब फेन उत्पन्न हो जाये, तब धीरे-धीरे अर्थात् घूँट-घूँट करके पी जायें । दूध के अभाव में मौसम्बी का रस लिया जा सकता है । ६ औंस रस में २ औंस पानी और आवश्यकतानुसार पिसा जीरा मिलाकर पी लेना चाहिये । दोपहर को भोजन के समय में गेहूं के थूले (चोकर) सहित आटे की रोटी, हाथ के कूटे हुए चावल, मूली की भाजी, मूँग की दाल और अन्य हरे शाक लेने चाहियें । भोजन के साथ सालिड (सलाद का मिश्रण), चौलाई, खारी भाजी और मियाडू की भाजी लें । अथवा ४ बजे फल लें । फलों में सन्तरा, अनन्नास, सफरचन्द (सेब), दाड़िम (अनार) आदि फलों को थोड़ी-थोड़ी मात्रा में ग्रहण करना चाहिये । रात में मूँग की खिचड़ी मीठी छाछ अथवा दूध का उपयोग करना चाहिये और इस बात की पूरी सावधानी रखनी चाहिये कि मल-बद्धता बिल्कुल न रहे ।

तैलाभ्यंग

तैलाभ्यङ्ग के बारे में अच्छी तरह ध्यान रखा जाये, अर्थात् विचार पूर्वक उचित ढङ्ग से तैलाभ्यङ्ग (मालिश) का प्रयोग किया जाये तो इस

रोग से निस्सन्देह मुक्ति मिल जाती है। प्रातःकाल स्नान करने से आधा घण्टे पहले समग्र शरीर की मालिश करनी अथवा करवानी चाहिये। यदि प्रकृति पित्त प्रधान हो तो आमला अथवा ब्राह्मी तेल का उपयोग करें। कफ और वात प्रधान प्रकृति होने पर बादाम का तेल, नारियल का तेल आदि में से किसी एक तेल से मालिश करनी चाहिये। विशेष ध्यान रखने योग्य बात यही है कि बिस्तर पर पीठ के बल चित लेट जायें और दोनों घुटनों को ऊपर की ओर मोड़कर रखें। तलुवे जमीन पर रखें। दाहिनी ओर से बाईं ओर गोलाकार पेट के चारों ओर मालिश करनी चाहिये। पहले दिन १ मिनट, दूसरे दिन १॥ मिनट। इस प्रकार प्रतिदिन आधा-आधा मिनट बढ़ाते हुए ३ मिनट तक पेट की मालिश किया करें। सूजन के मिट जाने पर भी एक महीने तक मालिश चालू रखें। समग्र शरीर की मालिश सप्ताह में तीन बार भी कर सकते हैं। परन्तु पेट की मालिश तब तक करते रहना पड़ेगा, जब तक रोग पूर्णतया मिट नहीं जाता। मालिश से बहुतेरे लाभ प्राप्त होते हैं। यदि रोग बहुत अधिक पुराना हो तो मालिश के बाद कटिस्नान लेना चाहिये। रोग के निवारण में यह प्रयोग पर्याप्त हितकर बन जाता है।

मानसोपचार

सुखासन पर बैठकर मन में विचार करें कि—'छोटी आंत और बड़ी आंत सुचारु रूप से अपना काम कर रही हैं। कन्धस्थान का भाग उत्तरोत्तर सशक्त बनता जा रहा है। आन्त्रपुच्छ का यह रोग अब हमें यन्त्रणा पहुंचा नहीं सकता। मैं दिन प्रतिदिन रोग रहित, सशक्त और आनन्दित होता जा रहा हूं। मानसिक शक्ति उन्नत हो रही है। अब मेरे शरीर में किसी भी रोग का अस्तित्व शेष नहीं रह सकता। मैं प्रत्येक रोग का प्रतिरोध करने में पूर्णतया समर्थ हूं।' इस प्रकार के उदात्त विचारों में ५ से १० मिनट तक तन्मय रहें।

जल-चिकित्सा

जब तक वेदना का कष्ट रहे, तब तक गेलबनाइज टीन के टब के आधे भाग को साधारण गरम जल से भरकर उसमें आराम कुरसी के समान बैठ जाना चाहिये और दाहिने हाथ को दाहिनी ओर से बाईं ओर पेट के चारों ओर घुमाते रहना चाहिये। पहले दिन ६ मिनट, दूसरे दिन ८ मिनट, इस प्रकार दिन-प्रतिदिन २।२ मिनट बढ़ाते रहकर आधा घण्टे तक कटिस्नान करना चाहिये। वेदना कम होने के पश्चात् शीतल जल से उपर्युक्त कटिस्नान करें। इसके अतिरिक्त बबूल के वृक्ष के आधा अंगुल मोटे छिलके को जल में उबालें और उस जल को छानकर टब के शीतल जल में मिला दें और उसी का कटि-स्नान लें। समय पूर्वनिर्दिष्ट है। तदुपरान्त स्नान कर लेना चाहिये। यदि रोग नया हो तो २१ दिन तक और यदि पुराना हो तो २ से ३ महीने तक कटि-स्नान करना आवश्यक है।

सूर्य-किरण-चिकित्सा

ब्ल (आसमानी) रङ्ग की बोतल में सूर्य-किरणों द्वारा जल तैयार कर लें और इस जल में श्वेत वस्त्र के टुकड़े को भिगोकर वेदना-स्थान पर रखना चाहिये। प्रातःकाल, मध्याह्नकाल और सायंकाल, इस प्रकार दिन में ३ बार १५।१५ मिनट तक इस गीले वस्त्र को रोग पीड़ित स्थान पर रखना चाहिये। पीत रङ्ग की बोतल में तैयार किया हुआ जल दिन में दो बार २।२ औंस पीना चाहिये और आसमानी रङ्ग की बोतल में तैयार किये हुये जल को दिन में दो बार २।२ औंस की मात्रा में पीना चाहिये। यह प्रयोग २१ दिन से ३ महीने तक चालू रखें।

प्राणायाम-चिकित्सा

प्रातःकाल आसनों का अभ्यास कर लेने के पश्चात् अनुलोम-विलोम प्राणायाम ३ बार और प्रातःकाल भोजन करने से आधा घण्टे पहले ३ बार

करना चाहिये । (प्राणायाम की विधि 'उमेश-योगदर्शन' के द्वितीय खण्ड में पढ़कर समझ लें) ।

१७ अण्डवृद्धि रोग

यह रोग अधिकांश में वृद्धों और युवा पुरुषों को हो जाता है । किसी के अण्डकोश में रस भर जाता है और किसी के वायु भर जाता है ।

रोग के कारण

कूदते समय, दौड़ते समय, किसी वजनदार वस्तु को उठाते समय, वायु-विकार से, कफ-पित्त की विकृति से, अति मैथुन से, चोट लगने से तथा कुपथ्य भोजन आदि अनेक कारणों से यह रोग हो जाता है ।

रोग का रूप

आरम्भ में कभी मूत्र कम मात्रा में और कष्ट के साथ आता है । अण्डकोश के पार्श्व भाग में कुछ सूजन मालूम होने लगती है । उदर के निचले भाग में और उरुओं में कुछ पीड़ा जान पड़ती है । अरुचि, उबकाई और नाड़ी की गति कभी मन्द और कभी तीव्र हो उठती है । जीभ का रङ्ग सफेद प्रतीत होता है । कभी-कभी अण्डकोश बड़ा हो जाता है और रोग के पुराने हो जाने पर अण्डकोश बढ़ता जाता है । यह रोग बाल्या-वस्था में भी हो जाता है । इसका मुख्य कारण माता-पिता के वीर्य-दोष और बालक के लालन-पालन की त्रुटियों पर आधारित है ।

आसन-चिकित्सा

शीर्षासन १० मिनट से आधा घण्टे तक । मत्स्यासन १ से ३ मिनट तक । तोलांगुलासन १ मिनट । गोमुखासन १ से २ मिनट । विपरीतकरणी २ से ४ मिनट । अश्विनी मुद्रा प्रातःकाल, मध्याह्न और सायंकाल सहित ३ मिनट । सुप्तद्विपादशिरासन १ मिनट । वीर्यस्तम्भनासन १ मिनट ।

आहार-चिकित्सा

चना; आलू, पूड़ी आदि तली हुई वस्तुयें वर्ज्य हैं। चावल कम और गेहूं के चोकर सहित आटे की रोटी अधिक मात्रा में ग्रहण करें। सफेद कोहला (पेठा), दूधी, भिण्डी आदि का शाक, चौलाई की भाजी, मूंग की दाल और सालिड (सलाद) का उपयोग करें। सलाद के मिश्रण में प्याज और गाजर अधिक हों। भोजन के पश्चात् अनन्नास, पपीता, दाड़िम आदि फल खाने चाहिये। दूध गरम करके पियें। रात का भोजन हल्का हो। जब तक शरीर में रोग का अस्तित्व रहे, तब तक मेथी की भाज और पुनर्नवाकी भाजी खाना हितकर होगा।

रोग-निवारण के लिये मनोबल आवश्यक है

प्राकृतिक और यौगिक चिकित्सा के अनुसार शारीरिक व्याधि के साथ मानसिक विचारों का घनिष्ठ सम्बन्ध माना जाता है क्योंकि कुछ रोग साधारण होने पर भी मानसिक दुर्बलता, शङ्का, भय, असहिष्णुता (रोग के वेग को सहन करने की अक्षमता) आदि विकार सर्व सामान्य जनता में व्याप्त हैं। ऐसे अनिष्टकारी विचारों को मन में स्थान देने से रोग-निवारण के लिये कौसी भी उत्तम चिकित्सा की जाये, तो भी लाभ नहीं होता। उदाहरणार्थ, किसी दूकान में हम कोई वस्तु अथवा दवा खरीदने के लिये जाते हैं, उस समय अधिकांशतया हर हालत में हमें वस्तु विक्रेता या औषधि-विक्रेता व्यक्ति से पूछना पड़ता है कि क्या वस्तु लाभदायक होगी ? इस सम्बन्ध में जब हमें विश्वास और आशा पूर्ण उत्तर मिल जाता है, तभी हम अभीष्ट वस्तु या औषधि खरीदते हैं और उसका उपयोग करते हैं, अर्थात् वस्तु या औषधि कितनी ही उत्तम क्यों न हो। फिर भी, आत्म-तुष्टि और मनःशान्ति के लिये वस्तु-विक्रेता से हम आशापूर्ण उत्तर सुनने के इच्छुक रहते हैं। किसी कारण विशेष से हर रोग के उपचार में मान-सोपचार भी उपचार के रूप में रखा गया है। रोग होने पर भी यदि सर्व-

साधारण मानव आशापूर्ण, लाभप्रद और उच्च बलदायक विचारों का वारंवार मनन, चिन्तन करते रहें तो निस्सन्देह लाभ हो सकता है। जैसी किसी दुर्गन्ध पूर्ण गन्दे स्थान को पानी से, मिट्टी से, गोबर से साफ-सुथरा और शुद्ध करने के पश्चात् सुगन्धित पुष्प और धूप-दीपादि से पवित्र और सुगन्धियुक्त बना दिया है और इस स्थान पर मन अपरिमित सुख-शान्ति में निमग्न हो जाता है, उसी तरह इस संसार में हमें अनेक प्रकार की यातनाओं में जकड़े रहकर निराशापूर्ण वातावरण में इच्छा अथवा अनिच्छापूर्वक जीवन व्यतीत करना पड़ता है। इससे पार पाने के लिये अनेक सुलभ और सरल मार्ग हैं। फिर भी, मानसोपचार अप्रतिम बलवत्तर, सफल और सहजसाध्य है। इसमें महान् शक्तियां संगुंफित हैं। पाठकवृन्द इस बात को कदापि न भूलें। मन असीम सूक्ष्म शक्तियों का गुप्त भंडार है।

मानसोपचार

प्रातःकाल और रात में शय्या ग्रहण करते समय सुखासन पर बैठकर कन्धस्थान और गुदा-स्थान का कुछ संकोचन करें और मन में विचार करें कि 'अण्डकोश के साथ सम्बन्ध रखने वाले मेरे सभी अवयवों और नस-नाड़ियों में नवीन शक्ति का विकास हो रहा है। मेरे शक्तिशाली मन की नवजीवनप्रद प्रेरणा पाकर मेरा अण्डकोश दिन-प्रतिदिन मजबूत एवं नीरोग बनता जा रहा है। अण्डकोश में व्याप्त रोग के निवारण में अब मुझे तिलमात्र भी सन्देह नहीं रहा। मेरे दुर्बल और निराश मन में अब नवीन चेतना और आशाका संचार हो रहा है और अब मैं अपने उज्ज्वल भविष्य के विश्वास से उद्बुद्ध हो उठा हूं। कुछ ही समय में मेरा शरीर रोग के पजे से मुक्त होकर आरोग्य के असीम भण्डार से भरपूर हो उठेगा प्रकृति-देवी मुझे चिरन्तन आरोग्य और सुख-शान्ति से पुरस्कृत करेंगी।

सूर्य किरण चिकित्सा

बादामी रंग की बोतल में सूर्य-किरण द्वारा जल तयार करें। इसी

प्रकार गुलाबी रंग की बोतल में भी सूर्य-किरण द्वारा जल तैयार करें और प्रातःकाल ८ बजे १ औंस, दोपहार १ बजे १ औंस और सायं ६ बजे १ औंस जल पियें। आसमानी रंग की बोतल में सूर्य-किरणों द्वारा तैयार हुआ जल १०॥ बजे १ औंस, ३॥ बजे १ औंस और रात में ८॥ बजे १ औंस लेना चाहिये।

तैलाभ्यंग

कन्धस्थान, पेट के अगल-बगल, लिंगमूल, अण्डकोश आदि भागों में अच्छी तरह तेल-मालिश करें। बादाम का तेल, खोपरे का तेल, तिल का तेल, नारायण तेल आदि में से अपनी प्रकृति के अनुसार किसी भी तेल से मालिश करें और तदुपरान्त स्नान करें। यदि समग्र शरीर की तेल-मालिश करें तो अधिक लाभ होगा। तेल-मालिश के समय में गुदा-द्वार, अण्डकोश और कन्धस्थान के भाग को ऊपर की ओर भलीभांति खिंचा रखें। पेट के भाग में चरबी अधिक हो तो उसे कम करना होगा; इसलिये तेल-मालिश नितान्त आवश्यक है। तेल-मालिश का प्रयोग कम से कम तीन महीने तक सतत जारी रखना पड़ेगा। इसके पश्चात् ही प्रयोगकर्ता को इनके न्यूनाधिक लाभों का अनुभव निस्सन्देह हो सकेगा। अतः दो-तीन महीने तक तेल-मालिश अवश्य ही करनी चाहिये। नीरोग अवस्था में तैलाभ्यंग लाभप्रद ही है।

१८ हाथी पग (श्लीपद)

यह रोग भी सामान्य जनता में विशेष रूप से दिखाई देता है। फिर भी, ऐसा कोई अनिवार्य नियम या स्थिति नहीं है कि प्रत्येक स्थान के निवासी को यह रोग होता है। केरल के कुछ स्थानों और मद्रास प्रान्त के कुछ स्थानों तथा अन्यान्य प्रान्तों के कुछ स्थानों पर निवास करने वाले लोगों में यह रोग विशेष रूप से पाया जाता है। इसके कारण हैं अशुद्ध

जल का सेवन, अशुद्ध स्थान में निवास, माता-पिता के दोष, व्यायामविमुख शरीर, विषैले मच्छरों, मक्खियों और अन्य विषाक्त जीव-जन्तुओं का काटना, रक्त की अशुद्धि, रक्त-संचालन में विक्षेप या अनियमितता, कब्ज आदि ।

लक्षण

कब्जियत के निवारण के लिये वारंवार रेचक लेने की आदत हो जाना, शरीर में जड़त्व का भान होना, कभी-कभी अचानक पैर के घुटने के नीचे के भाग में सूजन का प्रकट होना और मिट जाना, कभी-कभी शरीर गरम मालूम पड़ना आदि इसके प्राथमिक लक्षण हैं । इस रोग का प्रभाव बढ़ने के साथ-साथ सूजन भी बढ़ती जाती है । कृष्ण पक्ष और शुक्ल पक्ष की एकादशी से अमावस्या तथा पूर्णिमा तक कब्जियत की शिकायत अधिक बढ़ जाना अर्थात् मल-विसर्जन में रुकावट आ जाना; फलतः ज्वर आ जाना, किसी भी वस्तु के खाने की ओर अनिच्छा हो जाना, कभी-कभी यह लक्षण १ से ६ दिन तक लगातार रहता है । तत्पश्चात् पैरों की वेदना भी कम हो जाती है, ज्वर का भी अन्त आ जाता है और सूजन भी उतर जाती है । इस रोग को दूर करने के लिये अप्राकृतिक उपचार पर अधिक दिन तक आधार रखने से पैर में इतनी अधिक सूजन बढ़ जाती है कि चलना-फिरना भी कठिन हो जाता है और पैर का वजन भी बढ़ जाता है । पैर की त्वचा मोटी हो जाती है और उसमें फुन्सिया-जैसी भी निकल आती हैं । रक्त-संचालन-क्रिया का स्वाभाविक प्रवाह मन्द पड़ जाता है ।

आसन-चिकित्सा

उड़ीयान बन्ध १ मिनट । नवलि कर्म आधा मिनट । धौतिकर्म प्रातः काल दन्तधावन के पश्चात्, कपालभाति ५ बार । एकपाद उत्थानपादासन २ मिनट । द्विपाद उत्थानपादासन १ मिनट । भुजङ्गासन २ मिनट । एकपाद शलभासन २ मिनट । द्विपाद शलभासन १ मिनट । अर्धमत्स्येन्द्रासन

२ मिनट । चक्रासन १ मिनट । उष्ट्रासन १ मिनट । आकर्षण धनुरासन २ मिनट । उर्ध्व सर्वाङ्गासन ४ मिनट । सर्वाङ्गासन ३ मिनट । शीर्षासन १२ से ३० मिनट । पद्मासन ४ से १० मिनट तक । लोलासन आधा मिनट । शवासन ४ मिनट ।

उपर्युक्त आसनों की साधना करते समय जितने भी आसन आसानी से किये जा सकें, उतने ही करें । जैसे-जैसे पैरों की सूजन और वेदना कम होती जाये, वैसे-वैसे आसनों का अधिक संख्यक अभ्यास उत्तरोत्तर बढ़ाते रहें । शीर्षासन का अभ्यास अच्छे ढङ्ग से आ जाने के पश्चात् सर्वप्रथम शीर्षासन ही करें । शीर्षासन के पश्चात् श्वासन करें और तदुपरान्त अन्य सब आसन करें ।

उपरिनिर्दिष्ट अभ्यास श्लोपद के रोगियों के लिये अति महत्त्वपूर्ण है और साधक को निस्सन्देह अभिष्ट लाभ पहुंचाता है ।

प्राणायाम

रक्त-शुद्धि के लिये प्राणायाम भी अनिवार्य कर्तव्य है । अनुलोम-विलोम प्राणायाम ३ से ६ बार । भस्त्रिका प्राणायाम १ दो से पांच बार । प्रातःकाल आसन करने के पश्चात् अथवा सायंकाल पेट खाली होने पर अर्थात् भोजन से आधा घण्टे पहले प्राणायाम करना चाहिये । (प्राणायाम की क्रिया विधि 'उमेश-योगदर्शन' के द्वितीय खण्ड में बताई गई है ।)

जल-चिकित्सा

वाष्प-स्नान-विधि

एक पतेली में पानी भरकर उस जल में भांगरा (भृङ्गराज) १५ से २० तोला, कड़वी नीम की पत्ते १० से १२ तोला डालकर उबालें । जल के अच्छी तरह पक जाने पर उस जल को बेत की छेद वाली कुरसी

के नीचे रखें और कुरसी के ऊपर रोगी को बैठा दें। गले के नीचे का शरीर का समग्र भाग कम्बल अथवा मोटे कपड़े से ढका रहे। शिर पर शीतल जल में भिगोया हुआ श्वेत वस्त्र रखें। इसका परिणाम यह होगा कि पतेली में से निकलती हुई भाप समस्त शरीर में प्रवेश करेगी। पहले दिन ५ मिनट यह वाष्प लेकर फिर शरीर को वस्त्र से पोंछ दें और तुरन्त गुड़ के साथ तुलसी का काढ़ा तैयार कर ३ औंस पी जायें। तदुपरांत चटाई पर श्वेत वस्त्र बिछाकर लेट जायें शरीर को ऊपर से भी गले तक श्वेत वस्त्र से ढके रहें। पहले दिन ५ मिनट। दूसरे दिन ७ मिनट, इस प्रकार प्रति-दिन २।२ मिनट बढ़ाते हुए २० मिनट तक वाष्पस्नान कर सकते हैं और तुलसी का काढ़ा लेकर लेट या सो सकते हैं। सम्भव है कि कुछ समय के बाद पतेली की भाप कम हो जाये। ऐसी अवस्था में पतेली को अंगीठी पर रखकर भाप ले सकते हैं। वाष्प लेते समय और लेटते समय शरीर से पसीना अच्छी तरह छूटेगा। उस समय रोगी को किसी प्रकार चिन्ता न करनी चाहिये। जितना ही अधिक पसीना निकलेगा, उतने ही अधिक विषाक्त द्रव्य शरीर से बाहर निकलेंगे और शरीर स्वच्छ, स्वस्थ और विकार रहित बन जायेगा। जैसे-जैसे शरीर का विकार युक्त द्रव्य कम होता जायेगा, वैसे-वैसे पैर की सूजन और वेदना कम होती जायेगी और पैर धीरे-धीरे पतला होकर स्वाभाविक स्थिति में आ जायेगा। विकारी द्रव्य पसीने के मार्ग से ही नहीं; मल-मूत्र के मार्ग से भी निकलते हैं। यद्यपि जल-चिकित्सा अनेक प्रकार की है। फिर भी, वाष्पस्नान अनेक रोगों के निवारण की दृष्टि से विशेष प्रभावपूर्ण और सफल प्रयोग है।

मानसोपचार

पाठक वृन्द, यह स्मरण रखें कि 'यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी' अर्थात् जैसी जिसकी भावना, वैसा उसको फल, इस कथन के अनुसार रोग से मुक्ति पाने के इच्छुक लोगों का कर्तव्य है कि वे अवश्य ही रोग प्रतिरोधक और रोग-निवारक भावनाओं को अपने मन में बलवत्तर

श्रद्धा के साथ अपनायें, धारण करें। मानसोपचार में गुप्त लाभप्रद सामर्थ्य भरा हुआ है, यह बात कभी न भूलें और मन में बारंवार दुहराते रहें—“मैं इस रोग से प्रतिक्षण मुक्त हो रहा हूं। मेरे पैर और शरीर के अवयव नीरोग हो रहे हैं। यह जो मैं प्राकृतिक-यौगिक उपचार कर रहा हूं, उससे मुझे पूरा लाभ मिल रहा है। प्रकृति की गोद में बैठकर निराशामय विचारों से निकल कर आशामय वातावरण में प्रवेश कर रहा हूं। पैरों के साथ ही साथ मेरा सारा शरीर सशक्त और तेजोमय बन रहा है। मैं सुखी हो रहा हूं।” ऐसे विचार प्रातः स्नान के पश्चात्, दोपहर १२ बजे और रात में शयनकाल में अवश्य ही करें।

मालिश

भृङ्गराज तेल अथवा आमला, दूधी आदि से बने तेल या माल-कांगनी के तेल का उपयोग मालिश में करें। यदि उपर्युक्त कोई तेल न मिले तो खोपरे अथवा तिल के तेल से सबेरे स्नान करने से पहले पैरों तथा सारे शरीर की मालिश करें। विशेषतः पैरों की नस-नाड़ियां, स्नायु, मांसपेशियां एवं मज्जातन्तु आदि अवयवों पर ध्यान रखकर मालिश करें। मालिश के आधे घण्टे के पश्चात् स्नान करें। मालिश का यह कार्यक्रम कम से कम एक महीने और अधिक से अधिक तीन महीने तक लगातार जारी रखना चाहिये। अधिक समय करते रहने से लाभ ही मिलता है। मालिश के प्रयोग से १५ दिन में स्पष्ट लाभ प्रकट होगा, अर्थात् सूजन कम होती जायेगी और पैर हल्का होता जायेगा। त्वचा का कठोर रूप कोमल होता जायेगा। अशुद्ध रक्त क्रमशः कम होता जायेगा और शुद्ध रक्त बढ़ता जायेगा।

सूर्य-किरण-चिकित्सा

प्रातःकाल ७।। से १० बजे तक कोमल सूर्य-किरणों को हरे काँच के माध्यम से २० से ४० मिनट तक प्रभावित अङ्ग-पैर पर डालें। दूसरे दिन

ब्लू रङ्ग के कांच के माध्यम से सूर्य किरणें पैर पर डालें । समग्र क्रिया विधि पहले दिन की तरह है । एक दिन हरे रङ्ग के कांच से, दूसरे दिन ब्लू रङ्ग के कांच से, इस प्रकार नित्य प्रति बदल-बदल कर सूर्य-किरणें लेते रहें । सूर्य-किरणों द्वारा तैयार किये हुए खोपरे अथवा तिल के तेल से पैरों की मालिश सप्ताह में दो बार करनी चाहिये । उस दिन अन्य किसी तेल से शरीर की मालिश न करें ।

आहार चिकित्सा

गरम करके ठण्डा किया हुआ पानी पीना चाहिये । दिन में एकबार जौका भी पानी पियें । तमोगुणप्रधान आहार को त्याग दें । व्यसनमूलक पदार्थों से सर्वथा अलिप्त रहें । बैंगन, आलू, वालपापड़ी आदि वज्य हैं । हींग और लसण को भी न छुएँ । चावल, मूंग की दाल, गेहूं की रोटी, हरी तरकारियां, मीठे फल, गाय अथवा बकरी का दूध यथोचित रूप में ग्रहण करें । पैर की सूजन अच्छी तरह उतरने तक रात में केवल फल और दूध का ही सेवन करें । रात का आहार जल्दी ले लें; अधिक रात बीत जाने के बाद नहीं लेना चाहिये । १५ दिन में एक दिन उपवास भी रखना चाहिये । उपवास के दिन केवल जौका पानी अथवा नारियल का पानी, नींबू का शर्बत अथवा जलमिश्रित मौसम्बी का रस पीना चाहिये । इन सबके अभाव में शुद्ध जल का सेवन ही लाभकर होगा । श्लीपद हाथीपग, के रोगियों के लिये यह उपचार भी अत्यन्त लाभदायक और विश्वसनीय होगा ।

१९ पाण्डु रोग [एनिमिया]

लक्षण

आंखों के नीचे सूजन आ जाती है । त्वचा फटती है । शरीर में रक्त का संचार कम होता है । शरीर में शीत का अंश विशेष रहता है । मल-मूत्र पीला पड़ जाता है । पाचनशक्ति में निर्बलता आ जाती है । दाह, प्यास

और ज्वर भी रहता है। कभी-कभी पतले (फटे-से) दस्त होते हैं। त्वचा के रंग में परिवर्तन हो जाता है।

पाण्डुरोग होने का कारण

बीड़ी, सिगरेट और अन्य विविध धूम्रपान, मदिरा, मांस, मछली, अण्डा आदि तमोगुणी आहार, अशुद्ध जल का सेवन, अशुद्ध और गन्दे स्थान में निवास, व्यायाम से शरीर को पूर्णतया वंचित रखना, अशुद्ध वायु का सेवन आदि अनेक कारण पाण्डु रोग की उत्पत्ति के मूल में हैं। कफज, वातज पित्तज और सन्निपातज आदि कई प्रकार के पाण्डु रोग होते हैं। अधिकांश महिलायें एक प्रकार की भुनी हुई या कच्ची मिट्टी खाती हैं। इससे भी प्रायः पाण्डु रोग उत्पन्न हो जाता है। गेहूं, चावल आदि धान्यों में रही हुई मिट्टी और पत्थर का भाग भोजन के साथ शरीर के अन्दर पहुँचता रहता है, उससे भी पाण्डुरोग हो जाता है।

आसन चिकित्सा

एकपाद उत्थानपादासन १ से ३ मिनट। द्विपाद उत्थानपादासन १ मिनट। एकपाद पवनमुक्तासन १ से ३ मिनट। पवनमुक्तासन १ मिनट। वज्रासन २ मिनट। सुप्त वज्रासन १ मिनट। सुप्त धनुरासन १ मिनट। कर्णपीडनासन १ मिनट। विपरीतकरणी आसन ४ मिनट। मत्स्यासन २ मिनट। नवलिकर्म आध मिनट। कपालभाति ३ बार। बस्तिकर्म चार दिन में एक बार। त्राटकर्म मन स्थिर होने तक और मन में पूर्ण शान्ति का संचार होने तक।

प्राणायाम चिकित्सा

भस्त्रिका प्राणायाम नं. २ प्रातःकाल ३ बार और सायंकाल ३ बार। सूर्यभेदन प्राणायाम प्रातःकाल ३ बार; सायंकाल ३ बार। (प्राणायाम की

विविध क्रिया विधियों का निरूपण 'उमेश-योगदर्शन' के द्वितीय खण्ड में विस्तारपूर्वक किया गया है ।)

आहार चिकित्सा

चावल की कांजी अथवा गेहूं की कांजी दिन में २ बार लें । बैंगन का शाक, टमाटर, भिंडी, पड्डुवल (पन्डोला), परवल, सूरन, हरी भाजी और हरी तरकारियां, कचुम्बर (गाजर, टमाटर, नारियल, भिंडी आदि वस्तुओं के बारीक टुकड़ों का मिश्रण) में जीरा और सोंठ का चूर्ण मिलाकर खायें । इसे सलाद भी कहते हैं । दिन में एकबार मौसम्बी के ४ औंस रस में १ औंस जल तथा सोंठ एवं जीरे का चूर्ण मिलाकर पी लें । दिन में दो बार बकरी का दूध पीना चाहिये । भोजन के पश्चात् जिस ऋतू में जो फल उपलब्ध हों और प्रकृति के अनुकूल हों, उन्हें खाना चाहिये । उपरिनिर्दिष्ट आहार २ से ३ घंटे के अन्तर में लेते रहें और बीच-बीच में (आहार-व्यवस्था के मध्य में) शुद्ध जल पीते रहें । यह प्रयोग लाभदायक है ।

सूर्य किण्वन चिकित्सा

लाल रंग की बोतल में सूर्य-किरणों द्वारा तैयार किया हुआ जल चार बार १।१ औंस पियें । पीले रंग की बोतल में सूर्य-किरणों द्वारा तैयार किया हुआ जल दिन में दो बार पियें । सूर्य-किरणों से अनुप्राणित इस जल के ग्रहण-काल में २।२ घंटे का अन्तर रहना चाहिये । जिस समय शरीर में उष्णता अधिक बढ़ जाये, उस समय लाल रंग की बोतल का सूर्यकिरण-संचित जल पीना बन्द कर देना चाहिये ।

मानसोपचार

सुखासन अथवा पद्मासन पर बैठकर प्रातःकाल और रात में शयन-काल में मन ही मन श्रद्धा और विश्वासपूर्वक विचार करें—“मेरे शरीर में जो रक्त का परिपाण कम होता जा रहा था; वह स्थिति अब नहीं रही,

बल्कि अब तो रक्त की मात्रा दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। अब मेरे शरीर में नवीन शुद्ध और बलवान् रक्त संचरित हो रहा है। अब मेरा शारीरिक और मानसिक शैथिल्य दूर हो रहा है और उसके स्थान पर नवीन शक्ति, नवीन चेतन्य एवं नवीन उत्साह ने अपना सम्पूर्ण तथा चिरस्थायी अधिकार स्थापित कर लिया है। अब मेरे जीवन की हलचल में भी परिवर्तन होता जा रहा है। अब मानसिक उदासीनता और रोगों का उपशम हो गया है और मेरे जीवन में एक चमत्कारपूर्ण, परिवर्तन दिन प्रतिदिन होता जा रहा है। अब मेरे अन्तर में दुःख और निराशमूलक विचारों का उदय कभी भी नहीं हो सकता। अब मेरे मन में आशापूर्ण भावनायें-महत्वाकांक्षायें उद्भूत हो रही हैं और मैं जीवन के प्रति सम्पूर्ण श्रद्धालु और विश्वस्त बनता जा रहा हूँ। शरीर के अंग-प्रत्यंग और सप्त-धातु यथोचित रूप में परिशुद्ध होते जा रहे हैं। अब मैं सुख, संतोष और शान्ति के साथ निश्चिन्त मस्त जीवन व्यतीत कर रहा हूँ।” इस प्रकार के विचारों में यथासम्भव अधिक से अधिक समय तक कम से कम ५ से २० मिनट तक अवश्य तन्मय रहें। इस अवसर पर मुखमुद्रा प्रफुल्ल, शान्त एवं उल्लसित रहनी चाहिये। कदाचित् इस बीच में नींद आ जाये तो सो जाना चाहिये।

इस रोग की जल-चिकित्सा भी है और रोग की स्थिति के अनुसार जल में कुछ वनस्पतियों का भी उपयोग किया जाता है, किन्तु रोग की हालत को देखे बिना वनस्पति आदि की व्यवस्था करना सम्भव नहीं।

२० क्षीणकाय अर्थात् दुर्बल शरीर का बल और प्रमाणबद्ध वजन कैसे बढ़ाया जाये ?

शारीरिक क्षीणता के कारण

यथोचित रूप से जीवन तत्वों से भरपूर आहार का अभाव, अनि-

यमित आहार-विहार (आचार), जीर्ण ज्वर अर्थात् अज्ञात आन्तरिक ज्वर (शरीर में ज्वर रहता है, परन्तु उसका भान नहीं होता); मानसिक चिन्ता, वीर्यदोष, व्यायाम से पराङ्मुख रहना; मानसिक संकोच, काम, क्रोध, मोह, मद, मत्सरादि दुर्भावनाओं में जकड़े रहना, रस-ग्रन्थि, कण्ठ-मणि, मणिपूर चक्र, हृदय चक्र आदि का यथोचित विकास न होना, स्वच्छ और मुक्त वायु का नितान्त अभाव, अत्यन्त संकीर्ण और गन्दे स्थानों में रहना, निधन स्थिति की चिन्ता और परिस्थिति-विशेष में निरन्तर भयातुर रहना आदि शारीरिक क्षीणता के कारण हैं। इसके अतिरिक्त प्रायः यह भी देखा जाता है कि छोटे तथा बड़े श्रीमन्त (धनवान) एवं उपाधिधारी शिक्षित स्त्री-पुरुष भी प्रायः क्षीणकाय पाये जाते हैं। इसका कारण यह है कि वे भोग-विलास के अतिरेक में सदैव मस्त रहते हैं, अप्राकृतिक वस्तुओं से शरीर की सजावट करते हैं, आकर्षण वेष-भूषा बनाते हैं; भड़कीली पोशाकें पहनते हैं, और इस प्रकार अपनी बाह्य सुन्दरता बढ़ाने के प्रयत्न में लगे रहते हैं, जिससे जन-समाज में उनका सम्मान हो एवं बड़प्पन का प्रभाव सबत्र फैले। यही उनकी महत्वाकांक्षा रहती है और प्रायः ऐसा होता देखा भी जाता है। फलतः वे क्षीणकाय और दुर्बल शरीर रहते हैं। इसके अतिरिक्त पाचन शक्ति की निर्बल अवस्था में भी अपनी पाचन शक्ति का विचार न रखकर अतीव गरिष्ठ, स्वादिष्ट विटामिनों से भरपूर अथवा बिलकुल बिटामिनहीन (पोषण तत्व रहित) आहार का सेवन, केवल जीभ के स्वाद के वशीभूत होकर अति मात्रा में बारंवार आहार लेना भी शारीरिक क्षीणता के कारण हैं। रात में बहुत कम नींद लेने, दिन में सोने, शक्ति से बाहर परिश्रम करने तथा आय से अधिक व्यय करते रहने से भी मनुष्य क्षीणता और दुर्बलता के चंगुल में फँस जाता है।

आसन-चिकित्सा

शीर्षासन आरम्भ में एक ही मिनट करना चाहिये। फिर क्रमशः एक-एक मिनट बढ़ाते हुए १० से ३० मिनट तक। शवासन ५ मिनट।

वीरासन २ से ५ मिनट । नौलिकर्म आधा मिनट । लोलासन १ मिनट । बकासन १ मिनट । उज्झासन १ मिनट । विस्तृत पाद (छाती) भू-स्पर्श-नासन १ मिनट । एकपाद शलभासन १ मिनट । वज्रासन २ मिनट । सुप्तवज्रासन १ मिनट । पश्चिमोत्तानासन १ मिनट । चक्रासन १ मिनट । उध्वंसेर्वाङ्गासन ६ मिनट । गोरक्षासन १ से २ मिनट ।

प्राणायाम उपचार

शीतकाल में सूर्यभेदन प्राणायाम ३ से ६ बार । गरमी के दिनों में चन्द्रभेदन प्राणायाम ३ से ६ बार । वर्षा-ऋतु में उज्जाई प्राणायाम ४ से ८ बार करना लाभकर होगा । पित्त प्रधान प्रकृति हो तो अनुलोम-विलोम प्राणायाम, कफ प्रधान प्रकृति हो तो भस्त्रिका प्राणायाम १ अथवा २ और वायु प्रधान प्रकृति हो तो प्लावनी प्राणायाम करना चाहिये । (प्राणायाम की क्रिया-विधि 'उमेश योगदर्शन' के द्वितीय खण्ड में पढ़कर समझ लें) ।

आहार-चिकित्सा

उड़द से तैयार की हुई छिलके सहित दाल का उपयोग बल के अनुसार करें और वाष्प आदि की सहायता से तैयार किये गये उड़द के अन्य पदार्थों का उपयोग भी लाभप्रद होगा । इडली, डोसा, दही बड़े; आदि उड़द के जो पदार्थ भी बनाये जा सकें; उनका यथोचित मात्रा में सेवन करते रहना चाहिये । इसी प्रकार चना और चने के योग से निर्मित पदार्थ भी सामर्थ्य के अनुसार ग्राह्य हैं । इसी प्रकार मूँग और मूँग से बनी वस्तुयें भी शारीरिक विकास और बल के संवर्धन में महत्वपूर्ण योगदान करती हैं । इसके अतिरिक्त नव धान्यों में से जो धान्य अनुकूल हो, उसे पानी में १२ घण्टे भिगो रखने के पश्चात् गीले कपड़े में बांधकर रखें । इस भिगोये हुए धान्य में अंकुर फूटेंगे । किसी धान्य में छः घण्टे में अंकुर उत्पन्न होता है, किसी में १२ घण्टे के बाद अंकुर आता है और कोई-कोई धान्य १८ घण्टे

बीत जाने पर अंकुरित होता है। इस अंकुरित धान्य को प्रातःकाल अथवा सायंकाल अवश्य ही चाब-चाबकर खाना चाहिये। अनुकूल स्थिति हो तो दोनों समय भी लिया जा सकता है। शरीर को जो विटामिन युक्त जीवन-दायी आहार आवश्यक है, उसकी पूर्ति उपर्युक्त प्रयोग से निस्सन्देह होती है। शारीरिक शक्ति और वजन को यथोचित परिमाण में स्थिर रखने के लिये यह प्रयोग नितान्त वाञ्छनीय है, महत्वपूर्ण है। शाकाहारियों के लिये हरी तरकारियां, ऋतुफल और नवधान्य विशेष अनुकूल और हितकर हैं।

पहला प्रयोग केला दूध

वजन बढ़ाने की दृष्टि से दूध-केले का मिश्रण-योग भी एक सफल प्रयोग है। इलायची केले अथवा हरी छाल के केले दूध के साथ मिश्रित कर पाचन-शक्ति और वजन के अनुसार दिन में एक-दो बार ग्रहण करने से बल और वजन में पर्याप्त वृद्धि होती है। यह प्रयोग लाभदायक होने के साथ-साथ सात्विक भी है।

दूसरा प्रयोग आम दूध

आम के रस को दूध से साथ मिलाकर पाचन-शक्ति के अनुसार १ से २ बार लें। इससे शक्ति और वजन में यथोचित वृद्धि होगी।

तीसरा प्रयोग खीर

शुद्ध दूध में चावलों को उबालकर और इलायची, केशर, मेवा आदि पौष्टिक और सुगन्धित द्रव्य मिलाकर सेवन करें। इसे दूध पाक या खीर भी कहते हैं। शक्ति और वजन बढ़ाने के लिये यह एक सफल प्रयोग है।

चौथा प्रयोग फल

सेव, नासपाती, अनन्नास, दाड़िम (अनार), मौसम्बी, सन्तरा

आदि फलों का सेवन भी यथोचित मात्रा में करना चाहिये । फल मीठे हों, खट्टे न हों ।

इसके अतिरिक्त महीने में तीन दिन; अर्थात् त्रयोदशी, चतुर्दशी और पूर्णिमा अथवा अमावस्या के दिन आधा तोला अमृतवल्ली, आधा तोला गोखरू और पाव तोला आमले के योग से बना हुआ रसायनचूर्ण मधु (शहद) के साथ अथवा जल के साथ प्रातःकाल खाली पेट लेना हितकर होगा । प्रातःकाल उठकर दन्त धावन के पश्चात् मटके का शुद्ध शीतल जल अवश्यमेव पीना चाहिये । आहार की दृष्टि से उपर्युक्त सभी प्रयोग अत्यन्त लाभदायक हैं । कदाचित् एक ही साथ सब प्रयोगों का आयोजन सम्भव न हो तो जितने भी प्रयोग सरलता से हो सकें, उतने से ही उचित लाभ उठाते रहें । यहाँ यह बता देना आवश्यक है कि विटामिन अर्थात् पोषक पदार्थों की प्राप्ति के प्रलोभन में पड़कर मुर्गी तथा अन्य पक्षियों के अण्डों को खाने की सलाह देना मानव के लिये अनुचित ही नहीं, प्रत्युत अत्यन्त गर्हणीय और घृणास्पद दुष्कर्म [पाप] है ।

मानसोपचार

शारीरिक शक्ति और वजन की वृद्धि के लिये मानसोपचार पर भी विशेष रूप से ध्यान देना पड़ेगा । मानसिक प्रवृत्तियों पर नियन्त्रण स्थापित करना और मन को हर समय प्रसन्न बनाये रखना भी आवश्यक है । ऐसा किये बिना-मनोबल का सम्पादन किये बिना-आप उचित लाभ उठा न सकेंगे । प्रातःकाल स्नान करने के बाद धूपवत्ती आदि मन को प्रसन्न-पुलकित करने वाली वस्तुयें जलाकर रख लें और किसी अनुकूल आसन पर बैठकर एकाग्र मन से विचार करें—“मेरे शरीर के सभी अङ्ग—हाथ, पैर, कमर, पेट, छाती, पीठ, गला, मुख, आंख, शिर आदि-विकासशील, सशक्त और नीरोग बनते जा रहे हैं—प्रफुल्लता एवं आनन्द से भरपूर हो रहे हैं । मेरे शरीर की अङ्ग-संचालन-प्रणाली उचित ढङ्ग से काम कर रही है और जिस अबयव को जितनी मात्रा में विटामिन अर्थात् पोषणतत्व जरूरी हैं,

वह सब उन्हें यथोचित रूप में उपलब्ध हो रहा है। अब मैं आनन्द सागर में गोते लगा रहा हूँ और मेरा मन निस्सीम सुख-शान्ति की अनुभूति में मस्त हो रहा है। मैं अपनी मानसिक शक्ति से अपने चारों ओर आनन्द और मस्ती का वातावरण उत्पन्न करता हूँ। अब मैं निर्भीक होकर प्रसन्न चित्त से अपने कर्तव्य का पालन करता हूँ। अब मेरा मन नवीन चेतना और उमङ्ग से भरपूर होकर जीवन-संघर्ष में लग रहा है। मैं सुखी हूँ, प्रसन्न हूँ। मेरी मुख-मुद्रा पर कमल-पुष्प के समान प्रसन्न और विकसित स्मित निरन्तर खेला करता है।” इस प्रकार के उत्साह वर्धक विचारों में निरन्तर निमग्न रहें, तन्मय रहें और आनन्द की आन्तरिक मस्ती का अनुभव करते रहें। उस समय किसी प्रतिकूल विचार या प्रवृत्ति को मन में प्रवेश करने से संयम पूर्वक रोकें। वजन बढ़ाने के लिये उच्च मानसिक विचारों की विश्वस्त स्थिति अत्यन्त लाभकर और महत्वपूर्ण है। इन विचारों में कम से ५ मिनट से लेकर आधा घण्टे तक लीन रहें एवं मन जब भी निकम्मा हो और इधर-उधर भागने की चेष्टा करे, तभी उसे उपर्युक्त विचार-बन्धन में बांध लें।

मालिश प्रयोग

प्रतिदिन प्रातःकाल सारे शरीर में तेल-मर्दन करें। मालिश या तो स्वयं अपने हाथों से कर लें अथवा अन्य किसी से करायें। कम से कम १० मिनट और अधिक से अधिक एक घण्टे तक मालिश करनी अथवा करानी चाहिये। बादाम का तेल, नारायण तेल, घूपेल तेल, आमले का तेल, दूधी का तेल, तिल का तेल, सरसों का तेल अथवा ५२ प्रकार की बहुमूल्य वन-स्पतियों के योग से निर्मित रामतीर्थ ब्राह्मी तेल भी मालिश के लिये उपयुक्त होगा। शारीरिक अवयवों के सुयोजित विकास के लिये, प्रत्येक अवयव में रक्ताभिसरण उचित रूप से चालू रखने के लिये एवं मांस, मज्जा आदि धातुओं को सम परिमाण में रखने के लिये तेल-मालिश अतीव उपयोगी विधान है। तेल मालिश निरर्थक गरमी शरीर से बाहर निकाल

फेंकती है और वास्तविक गरमी से शरीर को भर देती है। बहुतेरे लोगों का जीर्णज्वर भी तेल मालिश से दूर हो जाता है। पुरुषों के लिये तेल-मालिश जितनी लाभदायक है उतना ही लाभ स्त्रियों को पहुंचाती है। शास्त्रीय पद्धति के अनुसार मालिश उचित रूप से पेट पर की जाये तो महिलाओं का गर्भाशय-रोग, गुर्दे की कमजोरी, कोलाइटिस (आंत की गड़बड़) आदि रोग भी अच्छे हो जाते हैं।

सूर्य किरण चिकित्सा

प्रातःकाल अथवा सायंकाल कोमल सूर्य-किरणों के सामने १० से ३० मिनट तक बैठें और हो सके तो सूर्य भगवान् के मन्त्रों का उच्चारण करते हुये सूर्य नमस्कार भी विधिवत् कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त गुलाबी रङ्ग की बोतल में सूर्य-किरणों द्वारा तैयार किया हुआ जल दिन में ३ बार डेढ़-डेढ़ औंस की मात्रा में पीते रहें। दूसरे दिन ब्लू रङ्ग की बोतल में सूर्य किरणों द्वारा तैयार किया हुआ जल १।१ औंस की मात्रा में ३ बार पीना चाहिये। तीसरे दिन पीले रङ्ग की बोतल में जल तैयार कर डेढ़-डेढ़ औंस की मात्रा में दिन में तीन बार लें। तदुपरान्त अर्थात् चौथे दिन प्रथम दिन के अनुसार व्हाइट रङ्ग की बोतल में, ६ ठे दिन तीसरे दिन के अनुसार पीले रङ्ग की बोतल में तैयार किये हुए जल का उपयोग करना चाहिये। इस प्रकार ऊपर बताई गई प्रक्रिया के अनुसार प्रतिदिन बदल-बदल कर सूर्य-किरणों के जल का सेवन करते रहें। यह क्रमबद्ध प्रयोग तीन महीने तक चालू रखें। ३ से ८ दिन के अन्दर इस सूर्य-किरण-चिकित्सा का प्रत्यक्ष लाभ मिलने लगेगा।

जल चिकित्सा

डुबले-पतले स्त्री-पुरुषों के शरीर को हृष्ट-पुष्ट बनाने के लिये जल-चिकित्सा कुछ कम महत्व नहीं रखती। शरीर में जलीय तत्व का अंश अधिक है, इस बात को पाठक भूलें नहीं। जल का यथोचित उपयोग

स्वास्थ्य रक्षा के लिये अतीव महत्वपूर्ण है। कटिस्नान, वाष्प-स्नान, जल-मर्दन-स्नान (शरीर को मालिश करने के समान खूब रगड़ कर दोनों हाथों से मलना) आदि क्रियाओं को जलोपचार के नाम के अभिहित किया जाता है। इस अवसर पर अर्थात् स्नान-काल में "मैं बलवान् हो रहा हूँ, मेरा शरीर परिपुष्ट होकर चैतन्य और स्फूर्ति से भरपूर हो रहा है" आदि शक्तिशाली और आशाप्रद विचार मन में करते रहें। इन सब स्नानों की विधि और समय-सीमा व्यक्तिगत रूप से देना सम्भव नहीं। अपनी-अपनी प्रकृति के अनुसार जल-चिकित्सा का लाभ उठाना चाहिये। कटिस्नान आदि जल-चिकित्सा की यथोचित विधियाँ इसी ग्रन्थ में अन्य रोगों के साथ बताई गई हैं। पुरुषों और स्त्रियों के लिये यह जल-प्रयोगोपचार नितान्त लाभप्रद है।

२१. मेदवृद्धि रोग (मोटापा)

आजकल मोटापा अधिकांश स्त्री-पुरुषों और बालकों में पीण्डिक आहार में व्यतिक्रम के कारण सर्व सामान्य रोग होता जा रहा है। औद्योगिक कारखानों में मशीनीकरण के कारण व्यक्ति के शारीरिक परिश्रम की मात्रा में कमी होती जा रही है। काम करने वालों को अधिकतम समय बिना शारीरिक श्रम के ही बिताना पड़ता है। ऐसे देशों में मोटापा बहुत ही कम देखने को मिलता है जहाँ के काम करने वाले शारीरिक श्रम से कतराते नहीं या ऐसा व्यवसाय या व्यायाम अपनाते हैं, जिससे शारीरिक श्रम में कोई कमी नहीं रह जाती। बच्चों और किशोरों के शारीरिक गठन में शारीरिक गति विधि महत्वपूर्ण भाग अदा करती है।

मेद वृद्धि का रोग किसी भी उम्र में किसी भी वर्ग के स्त्री-पुरुष को हो सकता है। पुरुषों की अपेक्षा महिला वर्ग इससे ज्यादा प्रभावित होता है। महिलाओं में गर्भाधान के बाद मेद वृद्धि के अधिक अवसर हैं। अधि-

कांश व्यक्तियों का ५ से ४० वर्ष की अवस्था में वजन बढ़ता है। ५० से ६० वर्ष के बाद वजन घटने की संभावना रहती है।

मेद वृद्धि का मुख्य कारण अत्यधिक आहार और कम से कम श्रम; लेकिन ऐसा कभी न समझ लेना चाहिये कि मोटे व्यक्ति अधिक खाने वाले होते हैं। कई व्यक्ति भावनात्मक कारण से अधिक खाते हैं या आहार की सहज प्राप्ति भी कारण हो सकता है। भारत में खासकर धनवानों की खाने की गलत आदतें हैं। उनके आहार में मेद वृद्धि में सहायक पदार्थ जैसे सूखे मेवे दूध, दूध से बने पदार्थ, केक, पेस्ट्री, मिठाइयाँ और तले पदार्थ होते हैं, भारी आहार के अलावा उनके कष्ट बढ़ाने में उनका आराम-देह रहन-सहन साथ देता है।

मेद वृद्धि मानव जाति के लिए अभिशाप है। मेद वृद्धि से शारीरिक कमजोरी उच्च रक्त चाप, हृदय विकार, स्नायु संस्थान की गड़बड़ी उत्पन्न हो जाने से जिन्दगी का मजा किर-किरा हो जाता है। फलतः मानसिक संतुलन भी बिगड़ जाता है। मेद वृद्धि के परिणाम स्वरूप मधुमेह की बीमारी हो जाती है। इसके रोगी पत्थरी आदि बीमारियों से भी पीड़ित पाये जाते हैं।

आहार व्यवस्था

मेद रोग से पीड़ित व्यक्ति के आहार में कैलोरी के माप से अधिक खर्च को व्यवस्था होनी चाहिये। चर्बी बढ़ाने वाले पदार्थ जैसे चावल, केक-पेस्ट्री, आलू, शकरकन्द, चीनी, भारी सोरवा लेना बन्द कर देना चाहिये या अत्यधिक कम मात्रा में लेने चाहियें। उन्हें अधिकांश में हरी और पीली शाक भाजी तथा ताजे फल लेने चाहिये (केला, आम, चिकू, वज्र्य हैं) क्योंकि उनमें कैलोरी का माप कम रहता है और पेट की भूख मिटाने में सहायक होते हैं। इससे मलबद्धता भी दूर हो जाती है। छाछ और मक्खन निकाला दूध और काफी मात्रा में जल लेना आवश्यक है।

आहार की मात्रा व्यवसाय और जाति के अनुसार अलग-अलग होती है। एक व्यापारी को एक भारी काम करने वाले की अपेक्षा आधे आहार की जरूरत है। अगर व्यक्ति विशेष अपने स्वास्थ्य में बदल चाहता है तो सप्ताह में एक दिन उपवास रखना अनिवार्य समझना चाहिये। संभव हो तो रात्रि में केवल दूध और फल ही लेकर रह जाने से तीव्र गति से स्वास्थ्य में सुधार होवेगा।

आसन व्यवस्था

उत्थानपादासन प्रत्येक पांव से ५ बार, प्रत्येक पांव से ५ बार पवन-मुक्तासन, भुजङ्गासन २ मिनट, प्रत्येक पांव से शलभासन ३ बार, नौका-सन दोनों ओर लुढ़कना पांच मिनट, घनुरासन २।३ मिनट, और उसमें अङ्गों को ५ मिनट ऊपर-नीचे करना, वज्रासन २ मिनट, त्रिकोणासन पांच मिनट, जानुशिरासन २ मिनट, पश्चिमोत्तानासन २ मिनट, विपरीतकरणी ५ मिनट, हलासन २ मिनट, उत्थितहस्तपादासन २ मिनट, और शवासन ५ मिनट।

प्राणायाम-उपचार

अनुलोम-विलोम प्राणायाम ६ बार, भस्त्रिका प्राणायाम ३ बार और कपालभाति ३ बार, उड्डियान पेडू के भाग को तीव्र गति से हिलाते हुए ६ से १० बार।

तेल-मालिश

खोपरे, तिल, सरसों अथवा रामतीर्थ ब्राह्मी तेल से सारे शरीर को मालिश हो सके तो प्रतिदिन ५ से २० मिनट तक सामान्य घषण के साथ करना चाहिये। इससे अधिक मेद के घटने में जल्दी सहायता मिलेगी। तेल मालिश अधिक अनुकूल न होने पर सुगन्धित फेस पावडर से मालिश करें।

टान्सिल, पथरी, कोलाइटिस, गुर्दे का रोग, प्लूरसी, ज्वर, हैजा (कौलरा) टाइफाईड, चर्म-रोग मस्तिष्क के रोग, पैर के तलुओं के रोग, भुकोरिया (स्त्रियों का श्वेत प्रदर) रोग आदि अनेक रोगों का निदान; लक्षण, उपचार आदि का वर्णन हम इस ग्रन्थ में कर नहीं पाये हैं। इसका प्रमुख कारण ग्रन्थ की कलेवर-वृद्धि का भय है। मेरा विचार है कि रोगोपचार के विषय में एक विशेष मार्गदर्शक ग्रन्थ में रोगों का विस्तार पूर्वक वर्णन करें, जिससे जन साधारण समुचित लाभ उठा सके और हमारा तत्सम्बन्धी प्रयास भी सफल हो। इनके सिवा अन्य विविध रोगों के लिये प्राकृतिक चिकित्सा के सफल प्रयोग बताना भी अभीष्ट था और बताये जा सकते थे, परन्तु ग्रन्थ विस्तार के भय से मुझे अपने इस लोभ का संवरण करना पड़ा। क्षमस्व।

वचनामृत

स्वयं से भिन्न व्यक्ति को सदा दोषपूर्ण दृष्टि से देखते रहने, उसके प्रत्येक आचरण में दाष खोजते रहने और निन्दामूलक वाणी का उच्चारण करने में जो व्यक्ति तत्पर है, उसका जीवन पवित्र नहीं रह सकता। समाज के व्यक्ति से हम जैसे भी संस्कार, विचार, वाणी और आचरण ग्रहण करते रहेंगे, तदनुसार हमारा जीवन गठन होता जायेगा। समत्व-भावना-आत्म-भावना सर्वोपरि है। जहां समत्व और आत्मीयता का बोध है, वहां दोष-दर्शन का प्रश्न ही नहीं और है भी तो मानो वह अपनी ही दोषपूर्ण आलोचना कर रहा है। जहां प्रत्येक मानव को दोषों से दूर रहने का आदेश है और प्रत्येक व्यक्ति सतत प्रयास कर रहा है, उसका सम्बन्ध समाज जीवन के साथ सदैव सुसंगत रहेगा और उसके सम्बन्ध सर्वत्र सुलभ रहेंगे। पवित्र जीवन से ही यह सम्भव है।

—योगिराज उमेशचन्द्रजी

गोपी एवं निरोगियों (बहनों तथा पुरुषों) की आ प बी ती

‘श्री रामतीर्थ योगाश्रम’

की सर्वतोभद्र उपयोगिता

आमजनता और योगमाधकों की तत्सम्बन्धी
सम्मतियां

(१)

निस्स्वार्थ लोक सेवा का आदर्श

श्रीरामतीर्थ योगाश्रम के सर्वसद्गुणालंकृत संचालक श्री योगिराज श्री उमेशचन्द्र जी की प्रशंसा करने का सामर्थ्य तो मुझमें नहीं है। आप की सहृदयता, सरलता, आपका उदात्त भावापन्न मानस, पवित्र जीवन और निस्स्वार्थ प्रभु-प्रीत्यर्थ लोक सेवा का आदर्श समागम में आने वाले

३१४

उमेश योगदर्शन

प्रत्येक व्यक्ति को अनन्य आध्यात्मिक आनन्द से भरपूर कर देता है—सर्वाङ्ग पुलकित कर देता है। आपके इन सब प्रयत्नों का प्रसार अखिल भारतवर्ष में अधिकाधिक हो और समग्र देश की आर्य शक्तियां पुनः आर्यावर्त में अवतीर्ण होकर विश्व भर को प्रभावित करें, यही ईश्वर से मेरी हार्दिक प्रार्थना है। योगाश्रम की समग्र प्रवृत्तियां सचमुच जन-कल्याणपरक हैं।

दवे मणिलाल हरिनारायण
बी. ए (आनर्स) बड़ौदा
१४-१०-१९३७ ई.

(२)

शारीरिक एवं मानसिक शक्ति-प्रदान का परोपकारी आयोजन

श्रीरामतीर्थ योगाश्रम में जाकर योगिराज श्री उमेशचन्द्र जी से आज मैंने भेंट की। श्री उमेशचन्द्रजी की यह प्रवृत्तियां सचमुच अत्युत्तम हैं। शारीरिक आरोग्य के लिये सिखाये जाने वाले यह यौगिक प्रयोग मनुष्य के मानसिक सामर्थ्य और शारीरिक शक्ति को निस्सन्देह बढ़ायेंगे, यह विश्वास यहाँ सीखने वाले व्यक्ति की प्रगति को देखकर हो जायेगा। मैं अनुरोध करता हूँ कि इस योगाश्रम से सद्गृहस्थ अवश्य लाभ उठायें।

मोतीराम लक्ष्मण नेहरूकर
बम्बई ४.

ता. ७-१०-१९३७ ई.

(३)

हार्दिक उद्गार

श्रीरामतीर्थ योगाश्रम के सर्वगुण सम्पन्न संचालक यागिराज श्री, उमेशचन्द्रजी की प्रशंसा करने में मैं सर्वथा असमर्थ हूँ। आपकी सदाशयता

ऋजुता, उच्चतम मानस एवं पवित्र जीवन देख कर मुझे आनन्द होता है। आपका लोक सेवा मूलक निस्स्वार्थ उच्चादर्श समागम में आने वाले प्रत्येक व्यक्ति को अद्भुत आध्यात्मिक आनन्द से पूर्णतया सन्तुष्ट करता है। भारत में आपके इस शुभ अनुष्ठान का अधिकाधिक प्रचार हो और सुषुप्त आर्य शक्तियाँ जाग्रत् होकर विश्व को पुनः चकित-स्तम्भित कर दें, यही मैं भगवान् से शुद्ध अन्तःकरण से विनय करता हूँ। यह कोरी लिखावट नहीं, बल्कि हृदय की गहराई से निकले हुए सच्चे उद्गार हैं।

त्रिवेदी शिवकुमार शर्मा

ज्योतिषी,

धोराजी (काठियावाड़)

ता. ३०-१०-१९३७ ई०

(४)

नवचेतन और उल्लास के पुरस्कर्ता श्री, योगिराज जी

श्रीरामतीर्थ योगाश्रम के सर्वसद्गुण सम्पन्न संचालक योगिराज श्री उमेशचन्द्र जी की प्रशंसा करने बैठूँ तो सचमुच ही अन्तःकरण से कहता हूँ कि उनके लिये उपयुक्त सुविशेषण खोज निकालना मेरे लिये बहुत कठिन है। विनय, विनम्रता, सरलता, स्वावलम्बन, आत्मसम्मान, पवित्र जीवन और निस्स्वार्थ सेवावृत्ति आदि गुणों के कारण समागम में आने वाले किसी भी व्यक्ति को आप नवीन चेतना और नवीन उल्लास से पुरस्कृत करते हैं, यह मैं अपने प्रत्यक्ष अनुभव से ही कह सकता हूँ।

श्री योगिराज जी के तत्सम्बन्धी कल्याणकारी अथक प्रयास अखिल भारत में अधिकाधिक प्रचारित हों, देशबान्धव आपके सद्गुष्ठान से अधिकाधिक लाभ उठायें तथा अखिल भारत की अर्थशक्तियाँ आर्यावर्त में प्रकट

होकर समग्र जगत् को अपने शौर्य से पुनः चकित कर दें, यही मेरी परम प्रभु के प्रति अविरत अभ्यर्थना है।

रमेश दाणी

(आतर सुंभावाला)

भूलेश्वर, बम्बई २

ता २६-११-११३७ ई०

(५)

आन्तरिक समस्याओं का सरल समाधान

श्री रामतीर्थ योगाश्रम के योगिराज श्री उमेश चन्द्र जी का साक्षात्कार करके मुझे अतीव आनन्द हुआ है और अनेकशः आन्तरिक बातों का स्पष्टीकरण सरलता से हो गया है, अनेक उलझनों सुलझ गई हैं, अतः मेरा अन्तर आनन्द से ओतपोत हो गया है। मैं स्वानुभव से कहता हूँ कि प्रत्येक आत्मकल्याणाकांक्षी व्यक्ति को इस योगाश्रम की सत्प्रवृत्तियों से अवश्य लाभ उठाना चाहिए। श्री योगीराज जी की भाषा सरल और सीधी है, जो मन पर तात्कालिक सीधा प्रभाव डाल सकती है। मेरा हृदय योगिराज जी से मिलकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ है और मेरे उपलक्ष्य से उसका लाभ सर्वसाधारण को उपलब्ध हो, यही विनय है। यह मेरे हार्दिक उद्गार हैं। थोड़ी बातचीत भी अपना अनुभव दिखाई दे जाता है।

उमरसी नानजी आशर

बम्बई १

ता. १४-१-१९३७

(६)

डाक्टरों के पास कभी न जायेंगे

श्री रामतीर्थ योगाश्रम के संचालक योगिराज श्री उमेशचन्द्र जी के

योगाश्रम में जाकर मुझे अति आनन्द प्राप्त हुआ है। विभिन्न व्याधियों के लिये उपयोगी आपकी योग-क्रियाओं का जो भी एक बार अनुभव करेंगे, वह डाक्टरों के पास जाकर कभी दवा लेने की इच्छा न करेंगे, ऐसा मेरा पूर्ण विश्वास है। भारत-भूमि की वास्तविक योगविद्या को पुनर्जीवन प्रदान करने का सुअवसर हम लोगों को प्राप्त हुआ है, अतः भारतीय बन्धुओं से मेरा अनुरोध है कि वह इससे यथा सम्भव लाभ उठायें। श्री स्वामी उमेश-चन्द्रजी का विवेक-वैराग्य हृदय-स्पर्शी है, इसका अनुभव उन सभी सज्जनों को होगा, जिनको आपके सान्निध्य का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। स्वामीजी जिस निष्काम भाव से काम करते हैं, वह धन्यवादार्ह है। प्रत्येक व्यक्ति को अपनी शारीरिक और मानसिक शक्ति बढ़ाने के लिये इस योगाश्रम से अवश्य लाभ उठाना चाहिये।

फीरोज शहरयारजी कापड़िया,
इंजीनियर

ता. ३०-१-१९३६.

(७)

बिना दवा के दमा के रोग से मैं कैसे मुक्त हुआ ?

लगभग १५ वर्ष से मैं भयङ्कर खांसी और दमे की व्याधि से पीड़ित था। रोग से मुक्ति पाने के लिये मैं अनेक प्रकार के इलाज; जैसे होमियो-पैथिक और डाक्टरों की दवायें और इंजेक्शन आदि लेता रहा, लेकिन मुझे कोई लाभ नहीं हुआ। आहार से सीधा कफ बन जाता था और दिन भर उसके निकालने में ही शक्ति का व्यय होता रहता था। आहार का पाचन नहीं होता था, इसलिये प्रतिदिन दस्त साफ लाने के लिये पाचन की गोलियों का सेवन करना पड़ता था। शरीर सर्वथा निर्बल हो गया था और ऐसी अवस्था उत्पन्न हो गई कि रास्ते में बिलकुल चला नहीं जाता था और दादर (सीढ़ी) चढ़ना भी दुष्कर हो गया था। इतने में 'जामे

जमशेद' नामक स्थानीय समाचार पत्र में एक मनुष्य की हाफन (दमा) के पूर्णतया मिट जाने का अभिप्राय पढ़ा, जो प्रार्थना समाज, बम्बई के निकट (वर्तमान समय में दादर, बम्बई १४) स्थित श्री रामतीर्थ योगाश्रम के सम्बन्ध में था, अतः मैंने भी उपर्युक्त योगाश्रम में जाने का विचार किया। मेरी आयु ५१ वर्ष की थी अतः मैं तो रोग से मुक्ति पाने की आशा ही छोड़ बैठा था, परन्तु आश्रम के संचालक श्री योगिराज जी ने आश्वासन देते हुए मुझे योगाभ्यास-आसन अर्थात् शरीर-संचालन और प्राणायाम अर्थात् श्वास को फेफड़ों (छाती) में भरने की कसरतें बताई; अतः मुझे दिन भर में जो बलगम (कफ) निकलता रहता था, वह बन्द हो गया और भोजन जो पचता नहीं था, वह पचने लगा। दस्त भी बिना गोली के नियमित आने लगा। भूख अधिकाधिक लगने लगी। पहले कुछ दिन तक उबाले हुए पदार्थ ही खाने पड़े, परन्तु बाद में सब कुछ खाने की छूट (अनुमति) मिल गई। जैसे-जैसे कसरतें (आसनादि) करता गया, वैसे-वैसे दमा जो दिन में भी चढ़ा रहता था, बन्द हो गया। कुछ दिन तक रात में चढ़ता रहा। लगभग तीन महीने तक निरन्तर आसन-व्यायाम करने के पश्चात् रात में भी दमे का चढ़ना बन्द हो गया। यदि कभी दमे का हमला होता भी तो दो-चार आसन करके लेट जाता तो दमे का प्रभाव बिल्कुल शान्त हो जाता और मैं सुख की नींद में सो जाता, इसलिये मैं आग्रह पूर्वक अनुरोध करता हूँ कि जिन लोगों को चाहे जैसा भी पुराना दमा हो दवा में व्यर्थ खर्च न करके यदि वे आसनों का व्यायाम करें तो वह निस्सन्देह मिट जायेगा, ऐसा मेरा विश्वसनीय मत है। यह लेख अनुभव कर लेने के पश्चात् मैंने स्वेच्छापूर्वक लिखा है, क्योंकि अब मैं अपने आरोग्यमय जीवन का सुखोपभोग कर रहा हूँ।

नवरोजी अरदेशर भरुचा

बम्बई

१३।४।१९४३ ई०

(८)

मानव-देह में सच्चिदानन्द की झांकी

योगिराज गुरुजी श्री उमेशचन्द्रजी ने अल्पकाल में योग मार्ग का कुछ ज्ञान मुझे प्रदान किया, एतदर्थ मैं गुरुजी का अवश्य ऋणी हुआ। अपनी आन्तरिक प्रभु-प्रेरणा से आप निष्काम सेवाभावी हैं और जनता को सन्मार्ग पर ले जाने के लिये सभी सम्भव प्रयास कर रहे हैं, इसलिये योग-विद्या में आन्तरिक भाव से लगन लगाकर आप अमूल्य मानव-देह में सच्चिदानन्द की झांकी अवश्य पायेंगे। गुरुदेव श्री उमेशचन्द्रजी आसन, प्राणायाम, षट्चक्रभेदन आदि योग विद्या विषयक अत्युत्तम ज्ञान प्रदान कर रहे हैं और इस ज्ञानामृत का पान सभी बन्धु कर सकें, इसके लिये सतत प्रयास कर रहे हैं। परम कृपालु परमात्मा इस समाज-कल्याण-यज्ञ-कार्य (प्रवृत्ति) को सफलता प्रदान करें, यही मेरी हार्दिक प्रार्थना है।

दासानुदास :—

मथुरादास हरीदास

ता. ५-५-१९३८

(९)

जन-सेवा का पवित्र व्रत

योगिराज श्री उमेशचन्द्रजी के समागम में मैं कुछ समय से आया हूँ। आप योगविद्या के द्वारा जनता में स्वास्थ्य, सुख, शान्ति और शक्ति का प्रसाद वितरण कर रहे हैं। आप अपने कार्य में सम्पूर्ण सुरक्षा, सेवा-भावी, लोभहीन और परोपकार भावापन्न देव पुरुष हैं। आपकी संस्था जन कल्याण की दृष्टि से अतीव लाभकर है। आशा है, बम्बई की जनता आप के इस शुभ प्रयास का आदर करेगी और उससे समुचित लाभ उठायेगी।

ईश्वर आपको सफलता प्रदान करे, यही आन्तरिक प्रार्थना है ।

त्रिभुवन पदमसी महुवाकर

बी. ए., एल-एल. बी-

एडवोकेट, हाईकोर्ट

ता. २५-६-१९३८ ई०

(१०)

हठीला दमा तथा शरदी मिट गई

मैं लगभग १२ वर्ष से हठीले दमे तथा शरदी के रोग से पीड़ित था । कभी-कभी तो मेरी स्थिति अत्यन्त गम्भीर हो जाती थी । अच्छे-अच्छे डाक्टरों से चिकित्सा कराई और शरदी के असंख्य इंजेक्शन भी लिये । दो बार आपरेशन कराया तथा अपने वैद्यों की भी औषधियां लीं । फिर भी दमा और शरदी ने पीछा न छोड़ा, बल्कि और अधिक बढ़ गया तथा कभी-कभी तो जीवन के अन्तिम क्षणों की स्थिति भी आ पहुंचती थी । किन्तु जबसे श्रीरामतीर्थ योगाश्रम में जाकर विविध आसन, नेति, धौति तथा सूर्य-नमस्कार की क्रियायें प्रारम्भ कीं, तब से रोग का प्रभाव क्रमशः घटने लगा और अब मैं दमा तथा शरदी के रोग से सर्वथा मुक्त हो गया हूं । अतः ऐसे रोगियों से मेरा अनुरोध है कि वे भी दवाओं की मृगमरीचिका में न पड़कर योगाभ्यास करें । किसी भी रोग के लिये यौगिक चिकित्सा सुलभ तथा श्रेष्ठ है ।

हकुमचन्द-गांगजी दोसी

बम्बई

ता. २२-११-१९४२

(११)

यौगिक उपचारों की महत्ता

श्रीरामतीर्थ योगाश्रम के संचालक योगिराज श्री उमेशचन्द्रजी की

प्राचीन प्राकृतिक रोगोपचार की पद्धति से मुझे अतीव सन्तोष हुआ है। मैं आत्मकल्याणाकांक्षी जन-समाज से अनुरोध करता हूँ कि वह इस संस्था से अवश्य लाभ उठाये। यौगिक उपचारों से जो स्थायी आरोग्य मिलता है वह विदेशी औषधियाँ नहीं दे सकतीं। श्री योगिराज जी मिलनसार और उदात्त भावापन्न हैं।

शास्त्री रेवाशंकर मेघजी देलवाड़कर

अध्यापक, डी. एल. संस्कृत-पाठशाला

गुलालवाड़ी, बम्बई

८-१-१९४१ ई०

(१२)

दमा समूल नष्ट हो गया

मेरी माता को लगभग २७ वर्ष की आयु से दमेका रोग शुरू हुआ और २१ वर्ष तक लगातार रहा। अनेक अंगरेजी दवायें कीं। किन्तु कुछ लाभ न हुआ। अन्ततः योगिराज श्री उमेशचन्द्रजी की शरण में गया। मुसलमान होने के कारण योगविद्या में मेरा विश्वास न था। फिर भी, योगिराज जी का आश्वासन पाकर मैं योगाश्रम में अपनी माता को ले गया। आपने सभी उपचार तो नहीं किये। फिर भी, पथ्य और कुछ आसनों के अभ्यास से उनका दमा बहुत कम हो गया। आज मां की उम्र ४८ वर्ष की है। दमे का नामोनिशान भी नहीं रहा। वे सबसे योगिराज जी की सराहना करती हैं तथा उन्हें आशीर्वाद देती हैं।

कुरबान अलौ मोहम्मद

ठि. रहमतबाई हबीब बिल्डिंग

डोंगरी, बम्बई ६

१६-११-१९४१ ई०

(१३)

आंखों की ज्योति में असीम वृद्धि

मेरी उम्र ३९ वर्ष की है। मेरी आंखों की ज्योति बहुत ही क्षीण हो गई थी। पढ़ते समय अक्षर बहुत स्पष्ट नहीं दिखाई देते थे, अतः चश्मे का उपयोग करना पड़ता था। आंखों से पानी भी झरता था। रात में बहुत कम दिखाई देता था। आंखों में गरमी बहुत थी। अनेक देशी और विदेशी औषधियों का उपयोग किया, किन्तु बिल्कुल लाभ नहीं हुआ। इसके बाद श्रीरामतीर्थ योगाश्रम, बम्बई में योगिक आसनादि के प्रयोग प्रारम्भ किये; फलतः अब मेरी आंखों की ज्योति में असीम वृद्धि हो गई है और अन्य शिकायतें भी दूर हो गई हैं। प्रत्येक भाई-बहन से मेरा हार्दिक अनुरोध है कि मेरी तरह वे भी इस योगिक उपचार से लाभ उठायें।

रामचन्द्र एस. कर्णिक

बम्बई

ता. २६-१-१९४२ ई०

(१४)

योग और कायाकल्प

उपवास—चिकित्सा तथा हरीतकी के प्रयोग से गत वर्ष मेरा वजन बहुत घट गया था तथा शरीर में फीकापन (एनेमिक कण्डीशन) आ गया। शरीर क्षय-रोग से ग्रस्त जैसा दिखाई देने लगा। अनेक कसरतों और दवाओं के प्रयोग से भी मैं अपनी पूर्व-स्थिति पर पहुंच न सका। अन्ततः पूज्यपाद स्वामी श्री उमेशचन्द्रजी की देखरेख में सामान्य आसन—जैसे कि पश्चिमोत्तानासन, उत्थानपादासन, हलासन, सर्वांगासन, बद्धपद्मासन आदि १५।१५ सेकंड, शवासन ५ मिनट तथा प्राणायाम करने एवं दो बार-प्रातः

सायं-दूध और फक्त दोपहर में एकबार सादा भोजन लेने से तीन-साढ़े तीन महीने में मेरा वजन १४ रत्तल बढ़ गया। थकावट, आलस्य और बेचैनी भी मिट गई। अब शारीरिक स्फूर्ति, मानसिक शान्ति तथा आनन्द दिन भर रहता है।

इसी कालान्तर में एक अकल्पनीय चमत्कार हुआ। बहुत समय से मेरे शिर के बाल झड़ रहे थे और गत छः महीने से शिर का मध्य-भाग बिल्कुल साफ हो गया था। किन्तु अब वह स्थिति मिट गई है और चंदुए के स्थान पर अब पहले से भी अधिक बड़े बाल आ गये हैं। अतः डाक्टरों और वैद्य बन्धुओं से मेरी विनम्र विनय है कि वे श्रद्धा-विश्वासपूर्वक योग-विद्या का अध्ययन-अनुष्ठान करें और अपने व्यवसाय में इसे स्थान देकर प्रजा के दुःख-दर्दों को शीघ्र समूल नष्ट करें तथा स्वतन्त्र भारत का कायाकल्प करने में अपना बहुमूल्य सहयोग प्रदान करें।

वैद्य नर्मदाशंकर मोरेश्वर दवे,

बम्बई

ता. २०-३-१९५८

(१५)

असाध्य व्याधियों से छुटकारा

शिरपीड़ा, अशक्ति, कब्जियत आदि विविध व्याधियों से ग्रस्त शारीरिक स्थिति को लेकर श्रीरामतीर्थ योगाश्रम में मैं योगिराज श्री उमेश चन्द्रजी से मिला। कभी-कभी छः महीने तक लगातार मुझे ज्वर भी आया करता था। श्री योगिराजजी ने इसका कारण पित्तप्रकोप बताया और अतीव सेवाभाव से यौगिक और प्राकृतिक उपचार कर मात्र एक महीने के अल्पकाल में ही मेरी असाधारण रुग्णावस्था में महान् परिवर्तन फलित कर दिया। अब मैं सम्पूर्ण नीरोगी हूँ। अतः मैं योगिराजजी के प्रति

कृतज्ञता व्यक्त करते हुए अन्य असाध्य व्याधि पीड़ित बन्धुओं से अनुरोध करता हूं कि वे आज ही, बल्कि अभी इन अलभ्य प्राकृतिक और यौगिक उपचारों का लाभ उठायें तथा आरोग्य के साथ दीर्घायुष्य का उपभोग करें। योगिराजजी के सम्बन्ध में कुछ लिखने की बुद्धि-प्रतिभा मेरे पास नहीं है। महापुरुष का परिचय कोई महापुरुष ही करा सकता है।

देवाजी मालूजी (कच्छ)

१०-९-१९३६

(१६)

लोक-कल्याण की सच्ची प्रवृत्ति

श्री रामतीर्थ योगाश्रम के संचालक योगिराज श्री उमेशचन्द्र जी की प्रवृत्तियां वास्तविक आत्मसुख; अर्थात् शारीरिक स्वास्थ्य प्रदान कर जन-साधारण को जीवन के सच्चे सुख की ओर ले जाने वाली हैं। इसी पवित्र उद्देश्य को लेकर आप जन सेवा के कार्य में अहर्निश तत्पर हैं। आपका यह अनुष्ठान सचमुच सराहनीय है। ईश्वर आपके इस सद्नुष्ठान में सहायता करे और उनका यह कार्यक्रम सदा अखण्ड रूप से चलता रहे, यही मेरी हार्दिक सदिच्छा है।

महादेव देसाई

लेमिंगटन रोड, बम्बई ७

ता. २६-२.१९३८ ई०

(१७)

बवासीर (मूलव्याधि) मिट गई

मैं कई वर्षों तक मिल में मैकेनिक फोरमैन के पद पर रहा। मुझे निवास, भोजन और अन्य सुविधायें उपलब्ध हैं। फिर भी, कभी-कभी

शरीर सुस्त और जड़ हो जाता था तथा कभी बवासीर (अर्श) का प्रभाव आ दबाता था। यद्यपि मैं कसरत नित्य भली प्रकार नियमित रूप से करता था। फिर भी, अभीष्ट लाभ मिल नहीं पाता था। कुछ महीने पहले मैं श्रीरामतीर्थ योगाश्रम के संचालक योगिराज श्री उमेशचन्द्रजी से मिला। योगिराजजी ने विशेष अनुरोध करते हुए योगाभ्यास के अव्यर्थ लाभों के लिये विश्वास दिलाया। तदनुसार प्रतिदिन नियमित रूप से योगाश्रम में प्राणायाम, आसनादि का अभ्यास करता हूँ। सम्प्रति मेरी उम्र ६९ वर्ष की और कुछ महीनों के बाद ७० वां वर्ष प्रारम्भ होगा। यह लिखते हुए मुझे अति आनन्द होता है कि योगाभ्यास से मेरे शरीर की स्फूर्ति बहुत बढ़ गई है। शरीर हल्का मालूम पड़ता है। परिश्रम का काम करने पर भी थकावट का अनुभव नहीं होता। बवासीर (हरस) के मस्सों से जो रक्त झरता था, वह बन्द हो गया है अर्थात् बवासीर के रोग से मैं पूर्णतया मुक्त हो गया हूँ। भूख खुलकर लगती है। दस्त-पेशाब नियमित रूप से साफ आते हैं। जुलाब की गोलियां लेनी नहीं पड़तीं; क्योंकि मलावरोध (कब्ज-यत) की शिकायत अब बिलकुल नहीं रही। मन शान्त और एकाग्र रहता है। सचमुच गुरुजी का स्वभाव ममत्त्वपूर्ण, मिलनसार और निस्वार्थ सेवा भावी तथा उत्साहवर्धक है। यही कारण है कि योगाश्रम में अभ्यास करने वाले भाइयों और बहनों को अत्यधिक शारीरिक और मानसिक लाभ प्राप्त होता है तथा वे आत्मकल्याण-पथ के पथिक बन जाते हैं। मेरी आयु यद्यपि अधिक है; तथापि कम आयु वाले के समान हाव-भाव और हलचल मुझमें पूर्णतया विद्यमान हैं। मन युवावस्था के उत्साह पूर्ण उच्च विचारों में सदैव ओतप्रोत रहता है। मैं हमेशा प्रसन्नचित्त रहता हूँ। कभी-कभी श्रीरामतीर्थ योगाश्रम में जाकर गुरुदेव (योगाश्रम के संचालक) के मुखारविन्द से शारीरिक, मानसिक उन्नति एवं आत्मकल्याण विषयक व्याख्यान सुनता हूँ, जिससे मुझे तथा योगाश्रम में आने वाले अन्य अनेक जिज्ञासु बहन-भाइयों को लाभ मिलता है। भारत में ऐसे अनेक योगाश्रमों की आवश्यकता है;

क्योंकि अस्पतालों तथा दवाखानों का आश्रय लेने से शारीरिक तथा मानसिक रोगों का समूलोन्मूलन नहीं होता; अस्थायी आराम भले ही मिल जाये। अतः आम जनता से मेरी विनम्र विनती है कि वह अस्पतालों तथा दवाखानों को शरण न लेकर योगाश्रमों के शान्तिमय वातावरण में योगाभ्यास के चिरस्थायी लाभों से पुरस्कृत हों तथा चिरआरोग्य और अलौकिक सुख-शान्ति का अनुभव करें।

मैं पारसी होकर भी शाकाहारी हूँ। मैं हिंसा को प्रोत्साहन देने वाले मांसाहार को अनुचित मानता हूँ तथा शरीर और मन को लाभ पहुंचाने वाले सात्विक शाकाहार का नित्य उपयोग करता हूँ।

हीराजी नवरोजी मिस्त्री

दादर, बम्बई

ता. २६-७-१९५८

(१८)

योगाभ्यास के अलभ्य एवं अद्भुत लाभ

मेरा स्वास्थ्य बिगड़ा हुआ था। भयंकर जुकाम से मैं बहुत पीड़ित रहता था। छींकें आने लगतीं तो पचासों लगातार आती ही रहती थीं। नाक से पानी बहा करता था। भगवत्कृपा और श्रीरामतीर्थ योगाश्रम के संचालक योगिराज श्री उमेशचन्द्रजी के द्वारा उपलब्ध यौगिक क्रियाओं से मुझे आशातीत लाभ हुआ और ४ मास के सतत नियमित योगाभ्यास से उपरिलिखित मेरी सभी शिकायतें समन्ततः समाप्त हो गईं। अब मैं पूर्णतया नीरोग हूँ। योगाभ्यास शारीरिक और मानसिक सामर्थ्य के साथ ऐहलौकिक तथा पारलौकिक सुख-समृद्धि भी प्रदान करता है; इसमें सन्देह

नहीं । जनसाधारण को इससे अवश्य लाभ उठाना चाहिये ।

रामनरेश ।म.प्र.

शास्त्री साहित्याचार्य,

प्रतापगढ़ (उत्तरप्रदेश)

ता. ८-३-१९३६

(१९)

शरदी और गले के रोग से छुटकारा

अनेक वर्षों से मैं शरदी और गले के रोग से पीड़ित रहता था । डाक्टरी इलाज—इंजेक्शन, आपरेशन आदि से कुछ समय तक चंगा रहता; परंतु तत्पश्चात् पुनः वही रोग आ दबाता । दिन भर छीकें आती रहतीं और नाक से पानी झरना रहता, फलतः मुझे बड़ी तकलीफ और परेशानी उठानी पड़ती । गत चार मास से तो शरदी जड़ जमाकर ही आ बैठी थी और अति भयंकर स्थिति पर पहुंच गई थी । इस बार डॉक्टरी दवाओं से भी कुछ लाभ न हुआ । अन्त में मैं श्रीरामतीर्थ योगाश्रम में प्राकृतिक उपचार के लिये प्रविष्ट हुआ और श्री स्वामी उमेशचन्द्रजी के निर्देशानुसार विभिन्न आसनों का अभ्यास शुरू किया । पांच-छः दिन में ही आसनों का प्रभाव प्रकट हुआ और शरदी का प्रकोप शान्त होने लगा । नेति, धौति और आसनों के सतत अभ्यास से एक महीने में ही शरदी लगभग समाप्त हो गई । छाती में निरन्तर पीड़ा रहती थी, परंतु योगाभ्यास और श्रीरामतीर्थ ब्राह्मी तेल की मालिश प्रतिदिन स्नान करने से पहले करने से बहुत लाभ पहुंचा और छाती का दर्द मिट गया । अब मैं पूर्णतया आरोग्यमय हूं । भूख खुलकर लगती है । भोजन भली-भांति पचता है । मन प्रसन्न रहता है । अब मुझे किसी प्रकार का रोग-विकार नहीं रहा । अतः अब मैं दृढ़ विश्वास के साथ कह सकता हूं कि किसी भी रोग से मुक्त होने के लिये आसनोपचार निस्सन्देह एक अव्यर्थ उपाय है । श्री स्वामीजी सच्चे भाव

और हार्दिक स्नेहपूर्वक आसन और नेति, धौति आदि विविध यौगिक क्रियाओं की सुयोजित शिक्षा देते हैं। अतएव जो लोग तन-मन को निरन्तर बलवान् और स्वास्थ्य बनाये रखने की इच्छा रखते हैं, उनका कर्तव्य है कि वे योगमार्ग का अवलम्बन कर लाभ उठायें।

छोटालाल एन्. मास्तर

बम्बई

ता. १-५-१९४३ ई०

(२०)

योगाभ्यास द्वारा अनेक रोगों से मुक्ति

मेरे शरीर में अपचन, आलस्य, मलबद्धता, वीर्यदोष, पाण्डुरोग, अशक्ति, शिर चकराना आदि अनेक रोग बद्धमूल हो गये थे और उनके कारण मैं बहुत ही हैरान परेशान रहा करता था। इन व्याधियों से छुटकारा पाने के लिये मैंने वैद्यों और डाक्टरों की नाना प्रकार की औषधियाँ और इंजेक्शन लिये, परन्तु ये सब औषधिक उपचार मेरी व्याधियों का दमन करने में समर्थ न हुए। अन्ततः मैंने श्रीरामतीर्थ योगाश्रम की शरण ली और वहाँ योगाभ्यास, पेट की मालिश और अन्य नैसर्गिक उपचार कराये, फलतः अब मैं पूर्णतया रोग मुक्त हो गया हूँ। मेरी तरह मेरी स्त्री भी अनेक कठिन रोगों के चंगुल में जकड़ी हुई थी; फलतः मुझे कोई सन्तान भी नहीं हुई थी। डाक्टरी औषधियों की असफल चिकित्सा के बाद अन्ततः मैं पत्नी को भी श्रीरामतीर्थ योगाश्रम की शरण में ले गया और वहाँ श्री स्वामी जी के अनुशासन में उसकी भी यौगिक चिकित्सा हुई। मुझे यह बताते हुए परम हर्ष हो रहा है कि कुछ ही महीनों की प्राकृतिक चिकित्सा के प्रसाद से मेरी पत्नी के भी सभी रोग दूर हो गये। वह सम्पूर्ण स्वस्थ हो गई और मुझे पुत्र-सन्तान की भी प्राप्ति हुई है। अतः मुझे पूर्ण विश्वास हो गया है कि यौगिक और प्राकृतिक चिकित्सा सचमुच

प्रथम खंड

३२६

अति लाभदायक है और इसका आयोजन करने वाले श्री स्वामीजी धन्यवादाहं हैं ।

गेनू गणपत तपे
बम्बई

ता. १०।६।१९५१

(२१)

मेरा अनन्य अनुभव

मेरे शरीर के दाहिनी ओर के अङ्ग में (पसली के नीचे के भाग में) बहुत तनाव तथा पीड़ा का अनुभव होता रहता था । लगभग ३ वर्ष से यह रोग मुझे कष्ट दे रहा था । इसके कारण मुझे कोई काम करना, बैठना-उठना, खाना-पीना, बातचीत करना आदि कुछ भी बिल्कुल अच्छा नहीं लगता था । इस रोग के निवारण के लिये मैंने प्रख्यात वैद्यों, हकीमों और डाक्टरों से देशी-विदेशी दवायें और इंजेक्शन लिये, किन्तु किसी प्रकार का लाभ न हुआ और मैं रोग से पूर्ववत् परेशान-पीड़ित रहा । अन्त में एक मित्र की सलाह से मैं श्रीरामतीर्थ योगाश्रम में प्रविष्ट हुआ । एक महीने तक लगा-तार योगाभ्यास आसन, प्राणायाम, धौतिकर्म, सूर्य-किरण-चिकित्सा, जलो-पचार आदि करने से अब मेरा रोग दूर हो गया है । अब मेरे शरीर में पूर्वोक्त कोई भी रोग नहीं रहा और मैं पूर्णतया स्वस्थ हो गया हूं ।

ठाकुर प्रसाद रामदास
बम्बई

ता. २६।९।१९४१ ई०

(२२)

वजन में आशातीत वृद्धि

श्रीरामतीर्थ योगाश्रम में योगिराज श्री उमेशचन्द्रजी के सान्निध्य में मैंने ६ महीने तक आसन, प्राणायाम, मुद्रा आदि का अभ्यास किया । पेट

३३०

उमेश योगदर्शन

की मालिश भी चालू रही। आश्रम में प्रवेश करने से पहले मेरी प्रकृति-शारीरिक और मानसिक स्थिति बहुत क्षीण थी। अन्न का पाचन अच्छी तरह नहीं होता था। पूर्वोक्त योगाभ्यास के पश्चात् अब मेरी प्रकृति (तबियत) में सम्पूर्ण सुधार हो गया है और अङ्ग-प्रत्यङ्ग स्वस्थ तथा डबल हो गये हैं। मेरे वजन में भी आशातीत वृद्धि हुई है।

जयदेव मुहोर
माटुंगा, बम्बई,
ता. २२।१।१९४१

(२३)

नेत्र-रोग से मुक्ति

मेरी आंखें मायोपिया रोग से पीड़ित थीं। अनेक प्रकार की आयुर्वेदिक और डाक्टरी औषधियों का उपयोग किया, किन्तु कोई आशाजनक परिणाम प्रकट न हुआ। अन्ततः मैं प्राकृतिक और यौगिक चिकित्सा के के लिये श्रीरामतीर्थ योगाश्रम में प्रविष्ट हुआ। मुझे यह लिखते हुए आनंद होता है कि श्री योगिराजजी के सान्निध्य में दो महीने के अल्पकाल में ही मेरी आंखों को असीम लाभ पहुंचा और वे पूर्णतया रोग मुक्त हो गईं। केवल यौगिक आसनों के अभ्यास से ही मेरे स्वास्थ्य में चमत्कारपूर्ण शुभ परिवर्तन हुआ। सचमुच अब मुझे विश्वास हो गया है कि प्राकृतिक चिकित्सा-विज्ञान वर्तमान डाक्टरी औषधि-विज्ञान से विशेष सफल और श्रेष्ठ है। आशा है, भारतीय जनता वर्तमान औषधियों की मृग-मरीचिका में न पड़कर प्राकृतिक यौगिक उपचार से लाभ उठायेगी। प्राकृतिक चिकित्सा आर्थिक दृष्टि से भी औषधियों की तुलना में कहीं अधिक सस्ती, सुलभ तथा सफल है।

आपका विश्वस्त—

एस. बी. नागरकट्टी

ग्राउण्ड इंजिनियरिंग स्टुडेंट, कराची एरो क्लब,

ता. ६।५।१९४१ ई०

(२४)

यौगिक और प्राकृतिक चिकित्सा का अप्रतिहत प्रभाव

मैं नीचे हस्ताक्षर करने वाला प्रभाकर हरी जोशी कई वर्षों से, आमवात, पित्तविकार, अशक्ति, शरीर का अल्पवजन तथा जीर्णज्वर आदि व्याधियों से पीड़ित रहा करता था। अनेक प्रकार के उपचार—जैसे आयुर्वेदिक, एलोपैथी और घरेलू उपचार कराने में धन और समय का अपव्यय करने पर भी आराम न हुआ। तदुपरान्त अन्तिम उपचार के रूप में मैंने श्रीरामतीर्थ योगाश्रम (दादर बम्बई १४) का आश्रय ग्रहण किया। आज भी यहां मेरी यौगिक और प्राकृतिक चिकित्सा का विधान चल रहा है आश्रम में प्रवेश करने के पश्चात् अब मेरे जीवन में आशाजनक परिवर्तन हुआ है और शरीर का वजन अभीष्ट परिमाण में बढ़ रहा है। उपर्युक्त व्याधियों की यातनाओं से अब मैं पूर्णतया मुक्त हो गया हूं। अब मेरे शरीर में कोई भी बीमारी नहीं रही। अब मुझे नया जीवन प्राप्त हुआ है और मैं सचमुच विश्वास करने लगा हूं कि यौगिक तथा प्राकृतिक उपचारों से शारीरिक तथा मानसिक स्वास्थ्य निस्सन्देह प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त मैं सूर्य-नमस्कार भी करता हूं। सूर्य-नमस्कार में अनेक आसन आ जाते हैं, फलतः शरीर के अंग-प्रत्यङ्गों को अनेक प्रकार के लाभ मिले हैं।

रूम नं ६, ईरानी चाल,
न भि. केलकर रोड,
दादर, बम्बई २८.

प्रभाकर हरी जोशी
२५।९।१९५८

(२५)

बिहार के सहकारिता, पशुपालन एवं कानून-मन्त्री

श्री जगत्नारायण लाल के हृदयोद्गार

श्रीरामतीर्थ योगाश्रम, बम्बई (१४) और उसके संस्थापक योगि-

राज श्री उमेशचन्द्रजी को देखकर तथा योगिराज जी से मिलकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। विशेष आनन्द मुझे यह देखकर हुआ कि योगिराजजी पारिवारिक जीवन व्यतीत करते हुए और किसी सरकारी या अर्धसरकारी या संस्था का सहारा अद्यावधि न लेकर प्रायः २५ वर्षों से (स्थापनाकाल सन् १९३३) स्वावलम्बन के आधार पर इस आयोजन को चला रहे हैं। स्वामी जी के सभी बच्चे और बच्चों की माताजी उनके मार्ग के श्रद्धालु अनुयायी हैं और आसनों के अभ्यास में काफी प्रवीणता प्राप्त कर चुके हैं।

यहां नित्य प्रातःसायं आसनों की शिक्षा और शनिवार तथा रविवार को योग, उपनिषदादि विषयों पर उपदेश दिया जाता है।

मैं इस आश्रम को और इसके संस्थापक एवं संचालक योगिराजजी को उनके इस पवित्र प्रयास के लिये बधाई देता हूं और इसकी उत्तरोत्तर उन्नति की मङ्गल-कामना करता हूं।

इस आश्रम के साथ मेरे गुरुदेव श्री स्वामी रामतीर्थजी महाराज का नाम जुड़ा हुआ है, इससे मेरे लिये तो यह और भी प्रियतर है।

योगिराजजी ने बिहार सपरिवार पधारने का एवं योगासनों के प्रयोग और प्रचार में पूर्ण सहयोग देने का आश्वासन दिया है, अतएव इस योगाश्रम के लिये अपनी छोटी-सी पुष्पांजलि ऐच्छिक अनुदान के रूप में (१५१) प्रदान करता हूं।

जगत्नारायण लाल

मंत्री सहकारिता, पशुपालन एवं कानून,

बिहार, पटना

५।११।१९५८ ई.

(२६)

श्री रामप्यारी देवी, एम. एल. सी. (पटना, बिहार)

श्रीरामतीर्थ योगाश्रम को देखने का आज मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ इस आश्रम तथा आश्रम के कार्यक्रम तथा योगिराज श्री उमेशचन्द्रजी को देखकर मैं बहुत प्रभावित हुई। मानव-समाज को सच्ची मानवता का मार्ग सिखाने के लिये श्री योगीराजजी प्रयत्नशील हैं। मानवता के लिए स्वस्थ शरीर और स्वस्थ मन ही अनिवार्य है। इन्हीं मार्गों से मनुष्य आत्मसाक्षात्कार कर ईश्वर के निकट भी पहुँच सकता है। इस संस्था द्वारा मनुष्य शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक उन्नति कर सकता है। मैं इस संस्था की सफलता की कामना करती हूँ। ऐसी संस्था की देश को आवश्यकता है। योगिराजजी के प्रयत्न से समाज को बल मिलेगा, ऐसी आशा है।

रामप्यारी देवी
एम. एल. सी.,
पटना (बिहार)

श्रीमती रामप्यारी देवी, एम. एल. सी. बिहार के सहकारिता, पशुपालन एवं कानून-मन्त्री श्री जगत्नारायणलाल की विदुषी धर्म पत्नी हैं।

(२७)

प्रार्थना सुनी गई

मैं आपका आभारी हूँ, मैं बहुत बीमार था और मेरा दाहिना घुटना सूजा हुआ था चलने फिरने में असमर्थ था, सभी प्रकार की औषधियों का उपयोग किया परन्तु कोई लाभ न मिला। मैं आपके (योगीराज उमेश

चन्द्रजी) के पास आया, आपने मुझ पर दया की, मुझे अपनी कार में चेम्बूर की पहाड़ियों पर ले गये। मैं इसी चिन्ता में था किस प्रकार पहाड़ी पर चढ़ सकूंगा। लेकिन योगीराजजी ने मुझे दिलासा दी कि तुम ठीक हो जाओगे। जब सांझ को मैं घर गया दूसरे दिन सुबह सब दर्द दूर हो गये।

तब से मुझे कोई दर्द न हुआ। ईश्वर का और श्री योगीराजजी का धन्यवाद ! उनकी प्रार्थना सुनी गई।

जे. एच. एल. ग्रोसवेनर

बम्बई १५ जुलाई १९६२

(२८)

उमेश योगदर्शन ने प्रेरणा दी

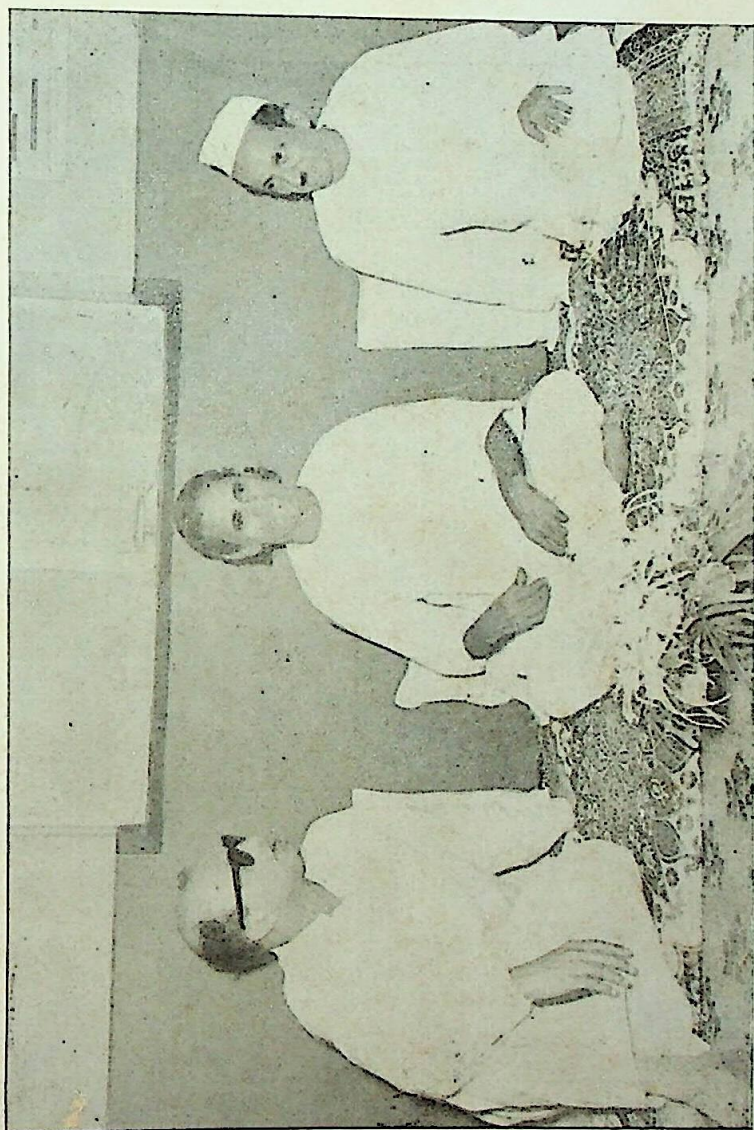
उमेश योगदर्शन ने मुझे योग अध्ययन के लिए प्रेरणा दी, मैं इस पुस्तक को अपने साथ योरोप ले गया, सदैव इस पुस्तक से मुझे प्रेरणा मिलती रही और मैं लेखक के दर्शन का इच्छुक था। मेरा स्वप्न पूरा हुआ। मेरे साथ परिवार के सदस्य सदृश्य व्यवहार किया गया। योगीराज उमेशचन्द्रजी तथा उनके सुपुत्र ने मुझे फ्रैंकफर्ट में योगिक सेन्टर खोलने हेतु प्रोत्साहित किया। मैं आशा करता हूं एक दिन योगीराजजी फ्रैंकफर्ट आकर हमारा मार्ग दर्शन करेंगे। उनके सत्कार्य को ईश्वर आगे बढ़ाये।

महेन्द्र सेठ

२५, अक्टूबर १९७२

पश्चिम जर्मनी



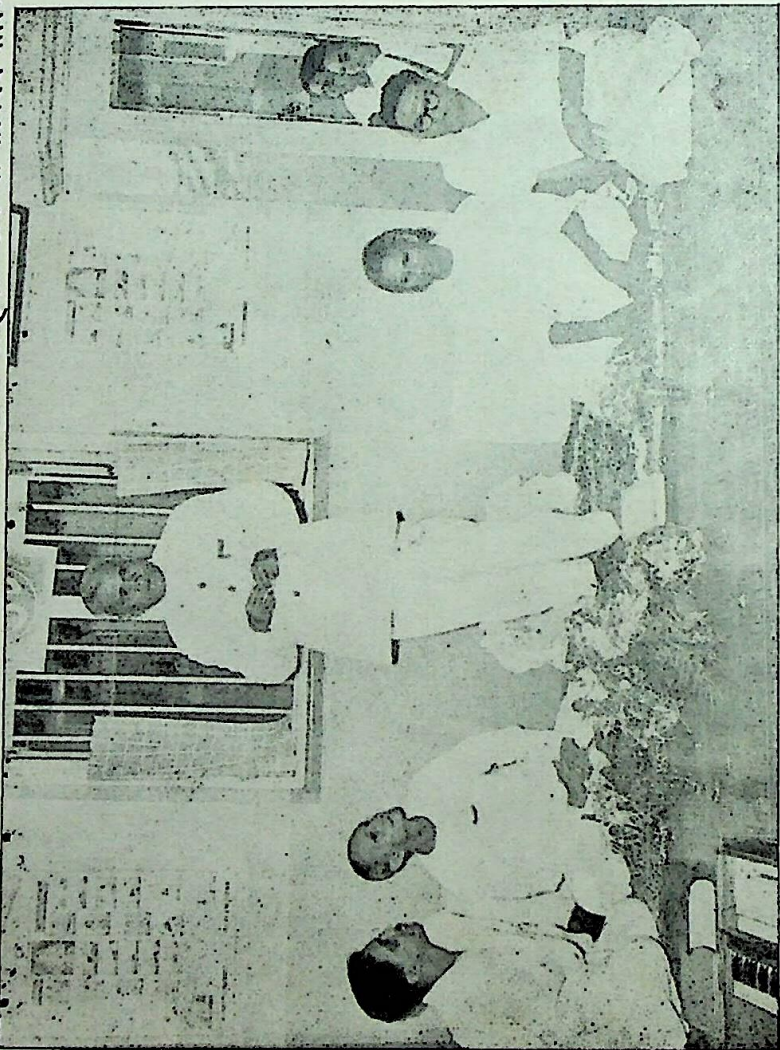


Shri B. D. Jatti, Acting President of Republic of India seen discussing Yoga subject with Yogiraj Shri Umeshchandraji at Shri Ramtirth Yogashram Hall in 1957.

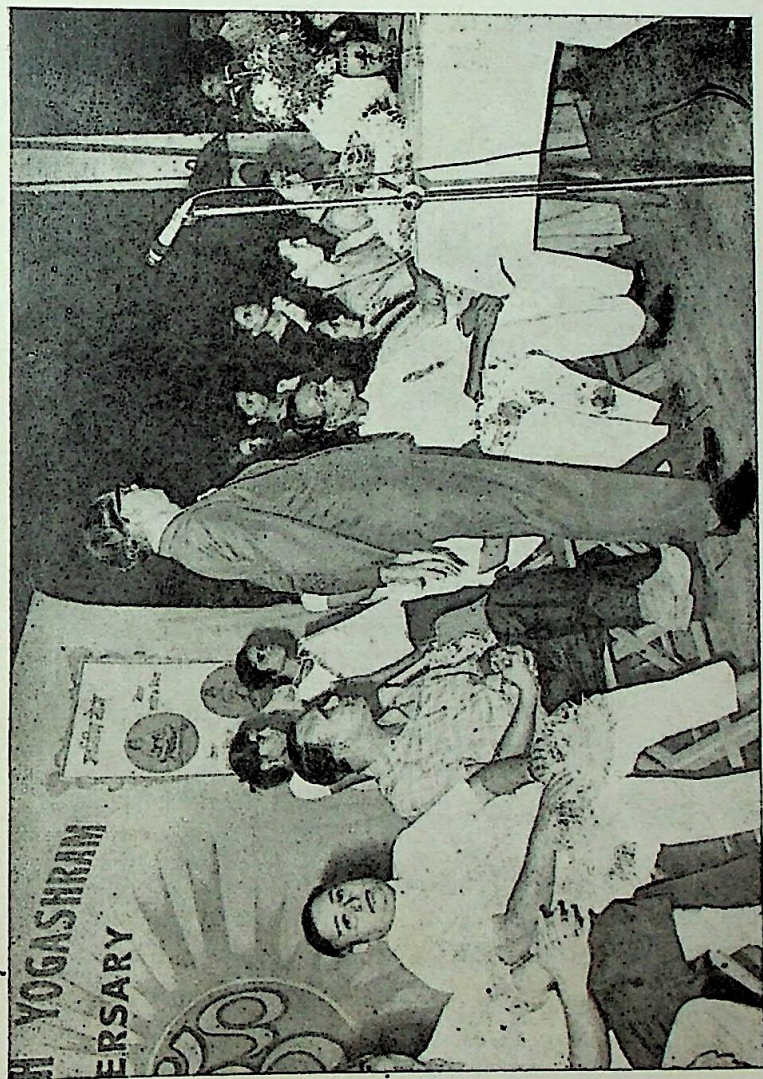
Seen on right Shri Hafizkha, the then President of B. P. C. C.

भारतीय गणतंत्र के उपराष्ट्रपति श्री बी० डी० जत्ती श्री रामतीर्थ योगाश्रम हॉल में सन् १९५७ में योगिराज श्री उमेशचन्द्रजी के साथ योग विषय पर चर्चा करते हुए, दाहिनी ओर बी पी सी सो. के तत्कालीन अध्यक्ष श्री हाफिजखॉ बैठे हैं ।

भू० घू० रेल मन्त्री स० का० पाटिल जब सन् १९५९ में योगाश्रम में पधारे, उस समय श्री रामतीर्थ योगाश्रम के साधकों को सम्बोधित करते हुए, उनकी बाईं ओर योगिराज श्री उमेशचन्द्रजी तथा दाहिनी ओर श्री सत्यदेव शास्त्री बैठे हैं ।



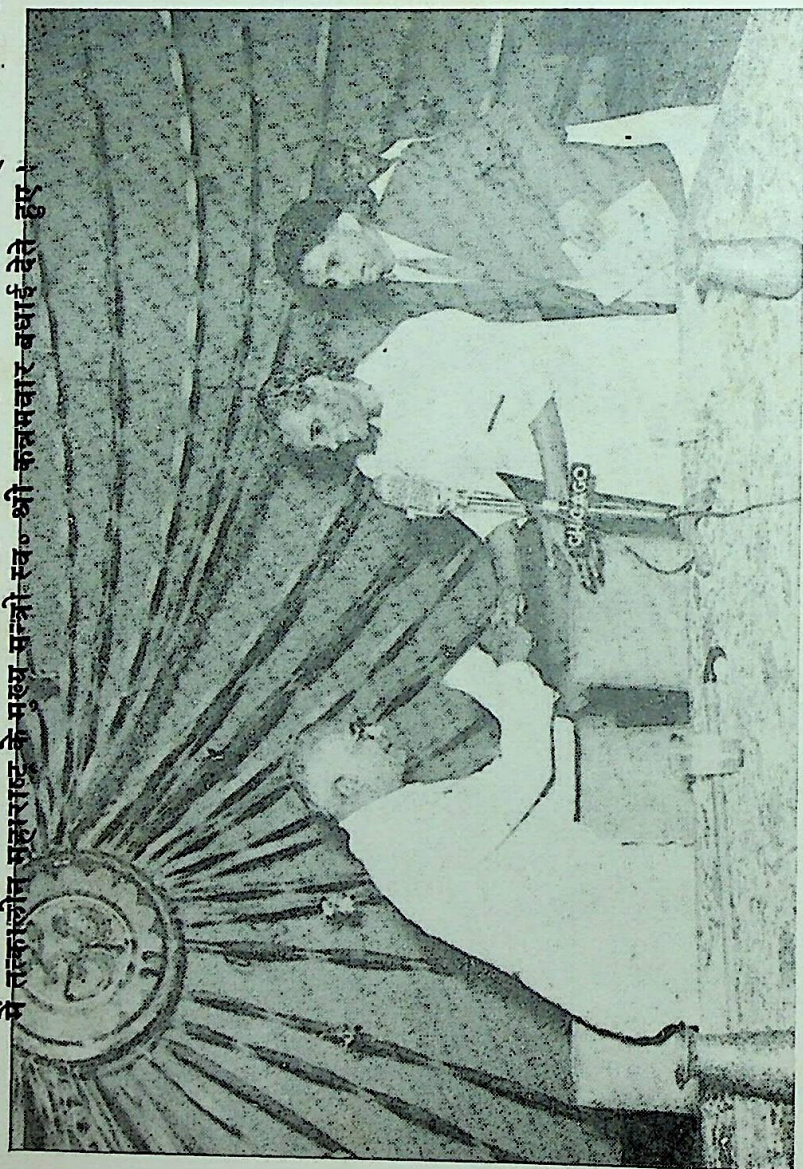
Shri S. K. Patil, Former Union Railway Minister, addressing the sadhakas of Shri Ramtirth Yogashram in 1959 on his courtesy visit to Yogashram. On his right Shri Satyadev Shastri and on left Yogiraj Shri Umeshchandraj.



Sri Shantilal Bhat, Editor, Bombay Samachar (Sunday Edition) addressing the audience at Shanmukhanand Hall on the occasion of 37th Anniversary of Shri Ramtirth Yogashram.

षण्मुखानन्द हॉल में आयोजित श्री रामतीर्थ योगाश्रम के ३७ वें वार्षिकोत्सव पर बम्बई समाचार के रविवारीय संस्करण के सम्पादक श्री शान्तिनलाल भट्ट उपस्थित जन-समुदाय को सम्बोधित करते हुए ।

योगिराज श्री उमेशचन्द्रजी को सन् १९५९ में श्री रामतीर्थ योगाश्रम के रजत जयन्ती समारोह, रंग भवन धोबी तालाब में तत्कालीन महाराष्ट्र के मुख्य मन्त्री स्व० श्री कन्नमवार बधाई देते हुए।



Late Shri Kannamvar, the then Chief Minister, Maharashtra State, congratulating Yogiraj Shri Umeshchandraji at Rang Bhavan, Dhobi Talao, Bombay on the successful completion of 25 years of Shri Ramirth Yogashram in 1959.

॥ श्री ॥

योगिराज श्री उमेशचन्द्रजी (स्वामीजी)



संक्षिप्त जीवन-परिचय

वर्तमान जड़-चेतन जगत् में मानव-सृष्टि का श्री गणेश होने के साथ ही शारीरिक, मानसिक और आत्मिक निर्माण एवं परिष्कार के प्रयत्न निरन्तर रूप से चले आ रहे हैं। मानव निरन्तर सुख, शान्ति और आनन्द की खोज में व्यस्त है। वैदिक काल के ऋषि महर्षियों ने इन महान् स्थितियों को उपलब्ध करने के लिये अपने अलौकिक और अनिर्वचनीय सामर्थ्य

और अपनी स्थितप्रज्ञ बुद्धि से जो लोक-मङ्गलकारी विधान बनाया तथा जो सार्वभौम नियम निर्धारित किये, वे निस्सन्देह अखिल विश्व के लिए पालनीय तथा सुख, शान्ति और आनन्द की अनुभूति कराने में समर्थ हैं। यदि आज का अशान्त मानव इन नियमों को अपने जीवन में अङ्गीकार करे और तदनुसार जीवन-व्यवहार का संचालन करता रहे तो विश्व आज ही स्वर्ग में रूपान्तरित हो जाये और जनगण देवत्व की प्रतिभा-प्रभा से उद्दीप्त हो उठे। भारत में आज भी उन विश्व-मङ्गलकारी महर्षियों की परम्परा अविच्छिन्न चली आ रही है और उनके उत्तराधिकारी अपनी तथागत प्रतिभा का सदुपयोग मानव-हित में करते हुए सुयश और ऐश्वर्य का अर्जन कर अपने ऐहलौकिक जीवन की सफलता चरितार्थ कर रहे हैं, अपनी इस प्रकृति प्रदत्त शक्ति का सुयोग्य विनियोजन कर रहे हैं और यही शुभ प्रवृत्ति आज उनके व्यवहार और परमार्थ का भी साधन बन गई है। योगशास्त्र इसी व्यापक और विराट् संविधान का एक चिन्मय और महत्वपूर्ण परिच्छेद है। विद्वानों का मत है कि सांख्य दर्शन और योगदर्शन एक सिक्के के दो पहलू हैं—एक ही रथ के दो चक्र हैं। सांख्य सिद्धान्त का निदर्शन करता है और योग उस सिद्धान्त को व्यावहारिक स्वरूप प्रदान करता है—कार्य रूप में परिणत करता है। सांख्य सिद्धान्तों का प्रतिपादक है—उद्घोषक मात्र है, किन्तु योग सिद्धान्तों का प्रतिपालक है, सांख्य शास्त्रीय दर्शन है; योग व्यावहारिक दर्शन है। सांख्य रास्ता बताता है—पथ प्रदर्शन करता है, किन्तु योग ही वह पथ है, जिस पर चलकर साधक अपने जीवन-लक्ष्य की प्राप्ति करता और कृतकृत्य बनता है।

योग की अन्तिम सिद्धि संयम है। संयम संभवतः उस स्थिति को कहते हैं, जहां पहुंचकर मानव अपने शरीर और मन पर पूर्णतया प्रभुत्व स्थापित कर लेता है। ऐसी स्थिति प्राप्त कर लेने के पश्चात् मानव अपने अङ्ग-प्रत्यङ्ग और मनका सम्पूर्ण स्वामी बन जाता है और उनका स्वेच्छा-नुसार परिचालन करता है। योगी की प्रत्येक प्रवृत्ति संयम से प्रतिबन्धित

है। आत्म संयम योग साधना का चरम लक्ष्य है। जिनका शरीर और मन संयम के अनुशासन को स्वीकार करते हैं उनके मन और बुद्धि आत्मा के दिव्य तेज से उद्भासित रहते हैं—उनकी प्रतिभा पारदर्शी होती है और वे जीवन में अङ्गीकृत अनुष्ठानों और कर्तव्य-कार्यों के प्रति अत्यन्त निष्ठावान् और वफादार होते हैं।

श्री योगिराज जी का संयम

अस्तु, ऐसे ही महापुरुषों की पंक्ति में योगिराज श्री उमेशचन्द्रजी का आसन भी अतीव ऊंचा है। श्री स्वामी जी महाराज संयम के साकार स्वरूप हैं। एक ओर तो आप गृहस्थाश्रम के कर्तव्यों का समुचित पालन कर रहे हैं और दूसरी ओर योगिक जीवनचर्या का विधान करते हुए यथोचित संयम की स्थिति पर भी प्रतिष्ठित हैं। आप यथार्थवादी भी हैं, सङ्ग भी है और निस्सङ्ग भी हैं। आप सामुदायिक साधना भी करते हैं और ऐकान्तिक साधना भी आपके जीवन का प्रमुख अङ्ग है। एक ओर श्री स्वामी जी जीवन के व्यावहारिक कर्तव्यों का कठोरतापूर्वक पालन करते हैं, तो दूसरी ओर उनकी आदर्शमूलक दिव्य भावनायें भी सदैव सजग रहती हैं। स्वामी जी मे व्यवहार और परमार्थ का अद्भुत समन्वय है और वे भारतीय राष्ट्र की ऐतिहासिक विभूति हैं। आपके महान् कार्य जन-जीवन के लिये सदैव श्रद्धास्पद बने रहेंगे।

व्यक्तित्व का प्रभावशाली स्वरूप

व्यक्तित्व को प्रभावशाली और उर्ध्वगामी बनाने के लिये आत्म-सामर्थ्य, आत्मविश्वास, आत्मदृढ़ता अत्यावश्यक साधन हैं। वैसे तो जगत् में मानव के प्रत्येक 'घटक' का किसी न किसी रूप में उपयोग होता आ रहा है। यह व्यक्तित्व का सामान्य (जनरल) स्वरूप है। परन्तु कुछ लोग ऐसे होते हैं, जो इन सामान्य लोगों से सर्वथा पृथक् दिखाई देते हैं।

उनका व्यक्तित्व असाधारण और मौलिक होता है। उनमें किसी विशेष सामर्थ्य और प्रतिभा के दर्शन होते हैं और अपनी पारदर्शक शक्ति से वे मानव के अन्तस्तल तक पहुँच जाते हैं। वे अपनी अलौकिक महत्ता से विश्व-मानवता को कृतार्थ करते हैं। योगिराजजी ऐसे ही महाजनों में हैं। आप का जीवन सचमुच अत्यन्त विस्तृत और व्यापक है। स्वामी जी की अपनी स्वतन्त्र सत्ता है, मौलिक व्यक्तित्व है; आत्मबल है; शालीनता है; असाधारण व्यवहार कुशलता है तथा रचनात्मक जीवन लक्ष्य है। निर्माण की ओर निरन्तर उन्मुख कर्तव्य-क्षमता और मानव को अमरत्व की ओर ले जाने की महती आकांक्षा है। इस प्रकार मानव मात्र को चिरन्तन स्वास्थ्य-सुख प्रदान करने और उसकी जीवन-वृत्तियों को उर्ध्वगामी बनाने के लिये प्रयत्नशील स्वामी जी सचमुच परमात्मा के वरद दूत हैं। आपके आयोजनों में मानव-कल्याण की झांकी मिलती है। आपकी बहुमूल्य सेवायें मानव के लिये वरदान हैं। स्वामी जी कर्तव्य परायणता की प्रतिमूर्ति हैं। यही कारण है कि राष्ट्र के लोक-जीवन को उच्च संस्कार और व्यवहार कुशलता से सम्पन्न बनाने में आपके प्रयोग सदैव सफल रहे हैं। चाहे जैसे सांघातिक रोगों से मानव जर्जरित हो, आत्मा के विश्वास से उद्भूत स्वामी जी की आशा और आश्वासनपूर्ण अमृतवाणी रोगी के आधे रोग को समाप्त कर देती है। जिन लोगों को स्वामी जी के सान्निध्य में योगाभ्यास करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है; वे रोगी या नीरोगी-भली-भांति जानते होंगे कि स्वामी जी अपने इस शुभ अनुष्ठान को कितनी तत्परता और कितनी लगन के साथ संचालित कर रहे हैं। कितने ही ऐसे रोगी-जीवन से निराश हो चुके थे—स्वामी जी के सान्निध्य में आते ही तन और मन से पूर्णतया आरोग्य हो गये। ऐसे अनेकशः असाध्य रोगियों का उद्धार स्वामी जी ने किया है और उन्हें आशामय एवं सुखी गृह-संसार का स्वर्गीय आनन्द प्राप्त करने के योग्य बना दिया है। जिन रोग मुक्त लोगों ने स्वामी जी की देखरेख में योग और आरोग्य की साधना की, शारीरिक

और मानसिक रूप से और भी अधिक चैतन्यमय बनकर ऐहिक और पार-मार्थिक सफलता का रसास्वादन कर रहे हैं और मानव-जीवन का सफल सदुपयोग कर रहे हैं ।

अस्तु, भारत ऐसे ही महान् योगियों, आध्यात्मिक नेताओं और व्यावहारिक जीवन दर्शन-अनुष्ठाताओं तथा शिक्षकों का देश रहा है । यहां ऐसी दिव्य विभूतियों का सदा अवतरण होता आया है, जो भौतिकता के जड़वादी अन्धकार को चीरकर अपनी उर्ज्वसित आत्म ज्योति का प्रकाश फैलाती आ रही हैं । आज भी भारत की यह परम्परा अक्षुण्ण है । आज हमारे बीच योगिराज श्री उमेशचन्द्रजी महाराज ऐसी विराट् शक्ति और दिव्य ज्योति के रूप में विद्यमान हैं, जिन्होंने अपने शुभ प्रयासों और शुभाशीर्वाद के प्रभाव से अनेक मानवों के निराश जीवन मरुस्थल को आशा का नन्दन निकुञ्ज बना दिया है, पराजय की भावना को विजयोल्लास से भर दिया है, अभिशाप को वरदान में बदल दिया है । जहां दुःख और कलह का रुदन होता रहता था, वहां शान्ति का उल्लासमय साम्राज्य फैला दिया और जीवन के मधुर संगीत के कलरव से आस पास के वातावरण को पुलकित कर दिया है ।

श्री रामतीर्थ योगाश्रम

यद्यपि भारत के राष्ट्रीय चरित्र में अनेक त्रुटियां दिखाई देने लगी हैं और विविध जातियों के समागम में आने के कारण भारतीयों की श्रद्धा परमात्मा के अस्तित्व की अवहेलना करने लगी है और लोग मनमाना आचरण करने लगे हैं । अनेकशः विचारवान् लोग भी भारतीय चरित्र की इस अवदशा को देखकर आकुल और निराश हो रहे हैं । किन्तु मैं इस निराशावाद का समर्थन कर नहीं सकता और न उसे स्वाभाविक ही मान सकता हूं कि अब भारत के चरित्र में सुधार की आशा नहीं और भविष्य में देश अत्यन्त हीन स्थिति पर पहुंच जायेगा, क्योंकि हमारी सन्त-परम्परा आज भी अक्षुण्ण है और महात्मा तुलसीदास, स्वामी विवेकानन्द, स्वामी

रामतीर्थ, महर्षि अरविंद घोष, चैतन्य महाप्रभु, सन्त नामदेव और महात्मा गांधी आदि आध्यात्मिक महापुरुषों की जन्मदात्री भारत-भूमि में अद्यापि ऐसे सन्त-महात्माओं का अस्तित्व विद्यमान है, जिनकी पुण्यमयी पवित्र प्रवृत्तियों और सद्बिचारों तथा सद्गुणदेशों ने भारतीय जनता को प्रभावित किया है और उसके जीवन में एक हलचल उत्पन्न की है; उसे अपनी स्थिति पर दृष्टि डालने के लिये बाध्य किया है। योगिराज श्री उमेशचन्द्रजी भी ऐसे ही विरल महात्माओं में से हैं। ऐसे लोकोत्तर जीवनदर्शी सत्पुरुष जगत् में निरर्थक जन्म धारण नहीं करते। निश्चय ही इन महात्माओं के अस्तित्व का महत् उद्देश्य है। श्री योगिराजजी के जीवन का आदर्श है सत्य, प्रेम और जन-सेवा। अपने स्नेह और प्रेमपूर्ण उद्गारों से आप पीड़ित माचवता को अभय-वरदान देते हैं। आपकी सराहना करने के लिये आपके समागम में आने वाला प्रत्येक व्यक्ति स्वभावतः उत्कण्ठित और उत्साहित हो उठेगा। यह सराहना कृत्रिम नहीं होती, प्रत्युत सराहना करने वाले की आत्मा की आवाज होती है। बम्बई में श्री योगिराजजी के कर कमलों से स्थापित श्री रामतीर्थ योगाश्रम है, जिसमें योगिराजजी स्वयं साधकों को योग-शिक्षा देते हैं, फलतः आश्रम का कर्तव्यानुष्ठान सकल और यशस्वी रहा और आश्रम निरन्तर विकसित, उन्नत और लोकप्रिय बनता गया। शास्त्रीय योगशिक्षा का यह महान् प्रतिष्ठान है। यह मानव के त्रितापों का उपशम कर उसके भौतिक, मानसिक और नैतिक स्तर को उच्चतम बनाता है। उदभ्रान्त चित्त और अर्धविक्षिप्त मानवों को स्थिर बुद्धि प्रदान कर उन्हें संसार के व्यावहारिक और पारमार्थिक कर्तव्यों की ओर उन्मुख करता है। अपने साधकों को जीवन-व्यवहार की सच्ची शिक्षा और योग्यता प्रदान करते हुए श्रीरामतीर्थ योगाश्रम के संचालक श्री स्वामीजी महाराज असीम धैर्यपूर्वक उस सुअवसर की प्रतीक्षा करते रहते हैं, जब उनका साधक शिष्य मानवता से भी ऊपर उठकर देवत्व की स्थिति को प्राप्त करता है, अर्थात् तन-मन से निरामय, निर्विकार तथा नीरोग होकर चतुर्दिक् अपने जीवन

के आह्लादकारी सौरभ का प्रस्फुटन करता है। अपने प्रिय शिष्य के लिये स्वामीजी वह दिव्य द्वार खोल देते हैं। जिसमें प्रवेश करते ही साधक का जीवन सौन्दर्य और उल्लास, बल, शक्ति, साहस और कर्ममयी क्षमता से सराबोर हो उठता है। साधक की भूतकालीन निर्बलता, दरिद्रता और दुःख को स्वामीजी शक्तिमत्ता, सम्पन्नता-समृद्धि और सुखों में रूपान्तरित कर देते हैं। साधक का अन्धकारमय जीवन प्रकाश से जगमगा उठता है और शारीरिक तथा मानसिक सम्पत्ति से पुरस्कृत होकर वह इहजीवन में वासन्ती वैभव की अनुभूति से प्रफुल्ल हो उठता है। तमसावृत्त और अहंकार के बन्धन से विजड़ित लोगों को चाहिये कि वे स्वामीजी के साधना-शिक्षा-कक्ष में प्रविष्ट होने के बाद अपने आपको उस साधना में तल्लीन कर दें—तन्मय कर दें। उस समय उनका एक ही लक्ष्य हो—साधना। वे अपने शरीर और मन को साधना के साथ पूरी तरह जकड़ दें और फिर देखें कि एकबार पुनः उनको नवीन जीवन प्राप्त हो गया है, वे नवीन चेतना से उत्फुल्ल हो उठे हैं और उनके जीवन का वास्तविक पथ प्रशस्त हो गया है। यदि तुम फिसल पड़े हो, गिर गये हो, तुम्हारे जीवन को त्रुटियों और नैतिक कमजोरियों ने दबा दिया है तथा तुम नितान्त निर्बल और आत्महीनता के विचारों से जर्जरित हो गये हो, यदि आपकी इच्छाशक्ति आपका साथ छोड़कर चली गई है और दुर्व्यसन तुम्हारे जीवन को असार और खोखला बना देने के लिये रोगमूलक कीटाणुओं की तरह तुम्हारे साथ चिपटे हुए हैं, तो योगिराज श्री उमेशचन्द्रजी की शरण में आओ-उनका आश्रय ग्रहण करो। वे तुम्हारी भर्त्सना (निंदा) न करेंगे, निर्बलताओं और त्रुटियों के लिये उलाहना न देंगे, तुमसे घृणा न करेंगे। स्वामीजी मनो-वैज्ञानिक हैं। वे मानव की मानसिक स्थितियों—उसकी कमजोरियों को अच्छी तरह समझते हैं। स्वामीजी पतित को उच्चतम सतह पर पहुंचा देने की विद्या जानते हैं। चिर रोगी को चिर आरोग्य प्रदान करना तो उनके जीवन का अहर्निशव्यापी अनुष्ठान है। भूले-भटके लोगों को सच्ची राह

बताने को स्वामीजी अपना नैतिक कर्तव्य समझते हैं। स्वामीजी तुम्हारे अभावग्रस्त जीवन को भावी भौभव की सम्भानाओं से भर पूर बना देंगे, और तुम्हारे जर्जरित जीवन की झोपड़ी गगनचुम्बी और दर्शनीय प्रासाद (महल) बन जायेगी। स्वामीजी तुम्हारे जीवन की अपूर्णता (त्रुटियों) को पूर्णत्व में परिणत कर देंगे। वे निरर्थकता को भी सार्थकता में परिवर्तित कर देने की क्षमता रखते हैं। तनिक सोचने-समझने की बात है, क्या कोई ऐसे कल्याणकारी विधान की अवहेलना कर सकता है? जीवन-साफल्य की सच्ची दिशा की खोज में व्यस्त ऐसा कौन अभागी व्यक्ति होगा, जो इस सरल, सुलभ और सुव्यवस्था से लाभ उठाने के लिये लालायित न हो उठेगा?

स्वामी जी की विशेषता यही है कि अहर्निश जन-सेवा में संलग्न रहकर भी आत्महीनता का अनुभव नहीं करते, सतत कार्य-तत्पर रहकर भी उनका शरीर विथकित और विजड़ित नहीं होता। बल्कि इसके विपरीत अपने प्रिय शिष्य-साधक-की क्रमोन्नति देखकर आत्म गौरव, आत्म-सन्तोष और आत्मोत्साह से भर उठते हैं। स्वामी जी कहते हैं—‘प्रिय साधक ! मुझे अपने जीवन में प्रवेश करने का अवसर दो और फिर तुम देखोगे कि तुम्हारा जीवन आल्लाद, आनन्द और सन्तोष से ओतप्रोत हो उठा है। तुम्हारे जीवन में प्रवेश करते ही मैं तुम्हें नवीन चेतना से अनुप्राणित करने लगूँगा, तुम्हारे जड़ मन को चैतन्यमयी आत्मा के साथ सम्बद्ध कर दूँगा, और तुम निरोग, प्राणवान्, शक्तिवान् और स्फूर्तिवान् बनकर अपने दैनिक कर्तव्यों के प्रति अधिकाधिक सक्षम और सजग बन जाओगे। कठिन से कठिन काम भी तुम्हारे लिये सरल बन जायेगा और तुम उसे काम नहीं खेल समझने लगोगे। दुर्लभ पहाड़ तुम्हारे लिये घूलिकण बन जायेगा और संसार सागर को तुम गोष्पद की तरह पार कर जाओगे। जो हो, जनता की शारीरिक और मानसिक व्याधियां स्वामी जी की सार्वजनिक सेवा को सुअवसर प्रदान करती हैं और वे बड़े उत्साह के साथ अपने कर्तव्यानुष्ठान

में तन्मय और तदाकार हो जाते हैं। साधक मन्त्र-मुग्ध की तरह अपने शारीरिक और मानसिक परिवर्तन को देखता रहता है और उसका तम-साच्छन्न अन्तरतम दिव्य प्रकाश से देदीप्यमान हो उठता है। लोग साधक के मुखमण्डल को आन्तरिक उल्लास से उद्दीप्त देखकर आश्चर्य चकित हो उठते हैं। सचमुच देखा जाये, सोचा जाये, समझा जाये तो यही जीवन का वास्तविक लक्ष्य है, सच्चा मार्ग है; शान्तिपूर्ण स्वर्ग है।

प्राकृतिक चिकित्सा के प्रचारक

प्राकृतिक चिकित्सकों का दावा है कि परमात्मा या प्रकृति ने मनुष्य को जीवन के दिन गिनकर नहीं दिये और न उसे आजीवन रोगी रहकर जीने के लिये उत्पन्न किया है। इसका तात्पर्य यह है कि मनुष्य की मृत्यु-तिथि निश्चित नहीं और न रोगों से पीड़ित रहने के लिये वह बाध्य है। अपनी अज्ञानता और भूलों के कारण ही मनुष्य रोगों के चंगुल में फँस जाता है। अप्राकृतिक जीवन नीरोग नहीं रह सकता और प्राकृतिक जीवन रोगों की विभीषिका से मानव को सदैव मुक्त रखता है। अप्राकृतिक आचरण से शरीर रोगी बन जाता है तथा दवाओं एवं इंजेक्शनों का निरन्तर प्रयोग रोग की विभीषिका को तत्काल दबा देता है सही, किन्तु कालान्तर में यही अन्दर दबा हुआ रोग अत्यन्त भयङ्कर रूप में पुनः प्रकट होता है, फलतः मनुष्य जीवन की आशा छोड़ बैठता है, परन्तु वस्तुतः ऐसा होना न चाहिये; होता भी नहीं। प्राकृतिक चिकित्सकों के मतानुसार यदि प्रकृति का आश्रय लेकर तदनुसार आचरण किया जाये एवं अपनी पूर्वकृत भूलों को सुधारकर प्रकृति के आदेशानुसार रोग-निवारण का प्रयास किया जाये तो निस्सन्देह पुनः नवजीवन प्राप्त किया जा सकता है; भावी जीवन को पुनः स्वास्थ्य-सुख-सम्पन्न बनाया जा सकता है।

मानव शरीर आकाश, वायु, जल, तेज और पृथ्वी तत्त्वों के योग से निर्मित हुआ है। यही पंचतत्त्व शरीर के आधार और अधिष्ठान हैं। ऐसी दशा में शरीर में इन पंचभूतों की संतुलित और यथोचित स्थिति ही मानव

शरीर को निर्विकार और नीरोग रख सकती है। इन तत्त्वों का असन्तुलन अर्थात् असम परिमाण ही रोगों का मूल कारण है अर्थात् शरीर में यदि पृथ्वी तत्त्व की मात्रा कम हो जायेगी तो उसके फलस्वरूप जीर्ण ज्वर, वीर्य दोष, शारीरिक क्षीणता, धातुदौर्बल्य आदि विकार उत्पन्न हो जाते हैं। इसी प्रकार पृथ्वी तत्त्व के अधिक बढ़ जाने से मेदवृद्धि, मेदरोग आदि आक्रमण करने लगते हैं। इसी प्रकार अन्य तत्त्वों की घटवृद्धि भी प्रतिकूल परिणाम प्रकट करती है। प्राकृतिक चिकित्सक इन पंचभूतों को समुचित स्थिति पर लाने का ही प्रथम प्रयास करता है। पंचभूतों को यह सम स्थिति ही आयुर्वेद के त्रिदोषों की सम स्थिति है। अस्तु, प्राकृतिक चिकित्सक शारीरिक और मानसिक विकारों को निकाल फेंकता है एवं कृत्रिम जीवन की मृगमरीचिका से पराङ्मुख कर प्राकृतिक जीवन जीने की कला सिखाता है। प्राकृतिक चिकित्सक की अप्रतिहत कर्तव्य निष्ठा और साधक की अभूतपूर्व प्रबल इच्छा शक्ति कालान्तर में निस्सन्देह सफलता और सिद्धि के रूप में प्रतिफलित हो उठती हैं। रोग की स्थिति में कृत्रिम औषधियों और नीरोगी अवस्था में नाना प्रकार की कृत्रिम और अग्राह्य वस्तुओं के अत्यधिक सेवन से शरीर में जो विष, मल (विजातीय द्रव्य) एकत्रित हो जाता है; प्राकृतिक चिकित्सक सर्वप्रथम उसको बाहर निकालने का ही प्रयास करता है; क्योंकि उसके मतानुसार शरीर की निर्मल (विषहीन) स्थिति ही आरोग्य का प्रमुख लक्षण है। प्राकृतिक चिकित्सक शरीर और मन के विष-विकार और मल को बाहर निकाल फेंकता है और रोगी का शारीरिक तथा मानसिक आरोग्य निखर उठता है। कहा जाता है कि अत्यन्त स्थूल (विकृत) और अत्यन्त क्षीणकाय शरीर को प्राकृतिक चिकित्सक संतुलित और गठीला बना देता है। प्राकृतिक जीवन यापन की कला सीख लेने और तदनुसार आचरण करने से रोगी के शरीर का कायाकल्प हो जाता है। उसमें नवजीवन की लहर दौड़ पड़ती है और जीवन नवीन हरियाली से लहलहा उठता है। रोगी की आयु बढ़ जाती है और इसी जीवन में उसे

पुनर्जन्म प्राप्त करने का सौभाग्य प्राप्त होता है । आज की औषधियों के लिये तो यह कहना असंगत न होगा कि वे रोगों को जड़-मूल से नष्ट करने में असमर्थ हैं, परन्तु सूर्य, मिट्टी, जल, अग्नि, वायु आहार-परिवर्तन और अन्य प्राकृतिक साधनों का उचित उपयोग कर प्राकृतिक चिकित्सक मानव के रोग को समूल उखाड़ फेंकता है और नवजीवन की चेतना से अनुप्राणित कर देता है । खोया हुआ स्वास्थ्य औषधियों से अथवा लाखों रुपये खर्च कर देने पर भी प्राप्त हो नहीं हो सकता । इसके लिये दृढ़ निश्चय पूर्वक प्राकृतिक जीवन का अनुसरण करना पड़ेगा, कठिन तपस्या करनी पड़ेगी । बड़े ही धैर्य, लगन और साधना से उद्देश्य-सिद्धि होगी, अर्थात् रोगी-रोग मुक्त होगा और चिकित्सक की सलाह-सूचना के अनुसार अपना जीवन-लक्ष्य बना लेने पर मानव कभी रोगी नहीं हो सकता ।

क्या प्राकृतिक चिकित्सा मंहगी है ?

यह सत्य ही माना जाता है कि स्वास्थ्य ही सम्पत्ति है; तन-मन का आरोग्य ही मानव को धर्म-साधना और कर्तव्य-कर्म को यथार्थ रूप में सम्पन्न करने के लिये उत्साहित और प्रेरित करता है । यदि स्वास्थ्य नहीं, तो संसार भर का विपुल वैभव संग्रहीत हो जाने पर भी उसका हमारे जीवन में क्या उपयोग है, क्या महत्त्व है ? प्राकृतिक चिकित्सक रोग के विरुद्ध अपनी प्रति क्रिया मूलक प्रक्रिया में जिन वस्तुओं को उपयोग में लाता है; वे मिट्टी, जल, वायु, सूर्य-प्रकाश और आहार संयम आदि साधन बिना मूल्य सर्वत्र उपलब्ध हैं, और रस, भस्म, इंजेक्शन आदि औषधिक उपचार बहुव्यय साध्य हैं । प्रकृति की देन होने के कारण सूर्य, चन्द्र और अन्य प्रसाधन निस्संदेह प्राणिमात्र को आरोग्य प्रदान करने की क्षमता रखते हैं । परन्तु उनके यथोचित उपयोग की पद्धति को बिना जाने मनुष्य उनसे लाभ उठा नहीं सकता, बल्कि हानि हो सकती है । परन्तु जब विशेषज्ञ मार्गदर्शक की देख रेख में यह प्राकृतिक प्रयोग सुयोजित रूप से सीखे जाते हैं,

तब वे सम्पूर्ण सफल और लाभदायक बन जाते हैं। यदि मानव स्वयं इन प्राकृतिक वस्तुओं का उचित उपयोग करने में समर्थ होता तो आज घर-घर में रोगी क्यों दिखाई देते ? और स्थान-स्थान पर अस्पतालों का निर्माण क्यों करना पड़ता ? गली-गली में, घर-घर में डॉक्टर गैद्यों की भरमार क्यों होती ? इससे स्पष्ट है कि हम सूर्य, जल, मिट्टी, वायु, आहार, उपवास आदि प्राकृतिक विधानों का यथोचित प्रयोग करना नहीं जानते अथवा उनके आरोग्य विधायक गुणों से ही अपरिचित हैं। इसीलिये हम स्वास्थ्य को पैसे देकर खरीदने की इच्छा रखते हैं और खरीदते भी हैं। दवाओं का व्यापक प्रयोग हमारे इस कथन का साक्षी है।

अस्तु, खेद तो इस बात का है कि नित्य नई दवाओं का आविष्कार होने पर भी नित्य नये और अकल्पनीय रोगों का आक्रमण होता रहता है और मानव जिन पैसों से दूध, घी, फल आदि पौष्टिक और आरोग्यवर्धक वस्तुओं का सेवन कर अपने शरीर और मन को उत्साहपूर्ण, बलवान, स्फूर्तिमय और कर्म शक्ति से भरपूर बना सकता था, उन्हीं पैसों से वह विविध डॉक्टरी दवायें खरीदकर अपने पेट में उँडेलता रहता है और भी कुछ अभीष्ट-सिद्धि न होने पर और रोग से मुक्ति न पाने पर आजीवन रोगी और दुःखी बना रहता है। धन और आरोग्य से वंचित रहकर वह हताश और अवसन्न हो जाता है। विधि की यह कैसी विडम्बना है ! ऐसी दशा में प्राकृतिक चिकित्सक-प्राकृतिक जीवन का मार्ग दर्शक अपनी अविचल निष्ठामयी इच्छा शक्ति से यदि आपको प्राकृतिक जीवन-यापन की कला सिखाता और तदनुसार आचार-व्यवहार बनाने की प्रबल प्रेरणा से पुरस्कृत करता है तथा अपने कर्तव्यों के प्रति सजग एवं दृढ़व्रती रहने की इच्छा शक्ति से सम्पन्न बना देता है, ऐसी दशा में आप उस प्राकृतिक चिकित्सा का क्या मूल्यांकन करेंगे ? इस परिश्रम और सेवा के बदले में आप उसे क्या पुरस्कार देना चाहेंगे ? यह सच है कि प्राकृतिक चिकित्सक के पास औषधियां नहीं रहतीं, इंजेक्शनों का उपयोग

वह नहीं करता; आपरेशन अर्थात् शस्त्रोपचार करना वह नहीं जानता; उसका उपचार केवल प्राकृतिक तत्वों पर आधार रखता है, लेकिन इन प्राकृतिक प्रयोगों के लिये भी उसे आवश्यक उपकरणों का संग्रह करना पड़ता है। इन्हीं पवित्र प्राकृतिक उपादानों की सहायता से वह आपके तन-मन की मलिनता और विकारों को धो देता है और आप सर्वांगीण नीरोगी, निर्मल और निर्विकार हो उठते हैं। आपका जीवन निखर उठता है; आपकी हताशा आशा में रूपान्तरित हो जाती है; अतएव प्राकृतिक चिकित्सक की इस प्रतिक्षण की सेवा—सुश्रूषा, साधना और तत्सम्बन्धी उसके अविरत प्रयासों का कितना मूल्य है; इसका भान आपको तभी होगा, जब किसी शारीरिक या मानसिक व्याधिग्रस्त मानव को किसी प्राकृतिक चिकित्सा-प्रतिष्ठान में इस प्रकार के लाभ उठाने का सुअवसर मिलेगा। हमारे चरितनायक श्री योगिराजजी महाराज ऐसे ही सिद्ध प्राकृतिक चिकित्सक हैं, यह कहने में कोई अतिशयोक्ति नहीं।

प्राकृतिक चिकित्सा की सुदक्षता

स्वामीजी प्राकृतिक चिकित्सा में भलीभांति निपुण हैं। सुना है कि आपने जिस केस (रोगी) को अपनी छत्रछाया में लिया, वह कभी हताश नहीं हुआ। सतत योगाभ्यास के कारण स्वामीजी आत्मशक्ति से भरपूर हैं। इसी विराट् आत्मशक्ति से स्वामीजी रोगी की सुप्त रोग-प्रतिरोधक इच्छा-शक्ति को सजग बना देते हैं। स्वामीजी रोगी के रोम-रोम में एक स्फुरण उत्पन्न करते हैं, और रोगी की चेतना उद्बुद्ध होकर शरीर और मन में नये प्राण का संचार करने लगती है। स्वामीजी के प्रबल अन्तःकरण का स्पर्श पाकर रोगी की आन्तरिक प्रवृत्तियों में एक शुभ परिवर्तन संघटित होता है। यदि किसी की मनःस्थिति निर्बल है और ईर्ष्या, द्वेष, घृणा, निन्दा आदि विकारपूर्ण विचारों से ग्रस्त है और फलस्वरूप उसकी शारीरिक और मानसिक शक्ति क्षीण हो गयी है। स्वामीजी अपनी विराट् अन्तःशक्ति का प्रतिबिम्ब रोगी पर डालते हैं, फलतः रोगी के विचारों में एक चम-

त्कारपूर्ण परिवर्तन होता है और वह निर्विकार और नीरोग होकर अपने सांसारिक कर्तव्यों का निष्ठापूर्वक पालन करने लगता है ।

मन के इस प्रकार प्रसन्न और स्थिर होने पर शारीरिक स्थिति भी प्राणवान् और गतिशील बनने लगती है । स्वामीजी दुर्गति को सद्गति में बदल देने की क्षमता रखते हैं । स्वामी जी की उर्ध्वमुखी प्रतिभा रोगी की रग-रग में प्रवेश करती है । प्राकृतिक चिकित्सा के उपकरणों-योगाभ्यास, मानसोपचार, जल-चिकित्सा, सूर्य-किरण-चिकित्सा, आहार-विनियोजन, तेल-मालिश, टहलना आदि-का आधार लेकर स्वामीजी अपनी प्रबल आत्मशक्ति, अपना दृढ़ अत्मविश्वास, अपनी सजग आत्मचेतना और उल्लसित आत्मस्फूर्ति रोगी की नस-नस में भर देते हैं । स्वामीजी के पास वह शक्ति है, जिसके बल पर वे उक्त विभूतियों के नित्य स्वयंसंग्राहक हैं । स्वामीजी की आन्तरिक चेतना प्रतिक्षण उद्बुद्ध रहती है और इसी चेतना से वे अपने शिष्यों को सदैव पुरस्कृत करते रहते हैं ।

योगिराजजी का संक्षिप्त जीवन-वृत्त

भगवान् परम दयामय हैं । उनकी कृपा और महिमा अपार है । वे मानव को उसके वास्तविक जीवन-लक्ष्य की शिक्षा देने और उसे यथार्थ मार्ग की ओर ले जाने के लिये विविध रूपों में जगत् में अवतरित होते रहते हैं । सन्तों, महात्माओं और पवित्रात्माओं के रूप में उस विश्व-मंगलकारी की अदृश्य सत्ता का आविर्भाव हमारे बीच सदा होता आया है । यह महान् विभूतियां महान् आदर्शों और उपदेशों के द्वारा हमें मानव-जीवन के वास्तविक मार्ग की ओर प्रेरित करती हैं और हमें शान्ति और नित्यानन्द की अनुभूति कराती हैं । ऐसे ही महज्जनों में योगिराज श्री उमेशचन्द्रजी का भी समावेश है । सन् १९१० ई० की ४ थी मार्च को कारवार (उत्तर-कर्नाटक) में योगिराजजी का उदय हुआ और बाल्यकालीन पठन-पाठन मंगलोर (दक्षिण-कर्नाटक) में हुआ । सुधांशु की अमृत-किरणों

के समान आपका स्वभाव अतीव शान्त, शीतल और मधुर है। आप बाल्यावस्था से ही सात्विक गुणसंवलित एवं शालीन स्वभाव के रहे हैं, अतः आपको विशेष दौड़धूप, धूमधाम और सहपाठियों तथा मित्रों के साथ झगड़ा, वादविवाद आदि बिल्कुल पसन्द नहीं था। मित्रगण आपकी शान्ति, सुशीलता, सौजन्य आदि से अत्यधिक प्रभावित थे और एतदर्थ आपकी सराहना करते रहते थे। किशोरावस्था में एक दिन कुएँ से पानी निकालते समय स्वामीजी सहसा कुएँ में गिर गये, किन्तु इस सांघातिक दुर्घटना का कोई दुष्प्रभाव नहीं हुआ, अर्थात् न तो स्वामीजी के किसी अंग को चोट-क्षति पहुंची और न किसी प्रकार का आन्तरिक आघात पहुंचा। इस घटना के अन्तर्गत स्वामीजी ने विश्वनियन्ता की असीम शक्ति के दर्शन किये और उनके हृदय में उस असीम अदृश्य शक्ति (ईश्वर) के प्रति दृढ़ आस्था उत्पन्न हो गई। उस अदृश्य शक्ति की महती महिमा स्वामीजी के रोम-रोम में रमने लगी।

विद्योपासना साधना-व्रत और कला-प्रेम

स्वामी जी बचपन से ही विद्याव्रती, साधनाशील और कला-प्रेमी रहे हैं। बहुभाषा ज्ञान और अष्टांग योग की सर्वाङ्गीण साधना इसके प्रत्यक्ष और अत्युत्तम उदाहरण है। स्वामी जी ने अष्टांग योग का संपूर्ण शास्त्रीय अध्ययन और मनन तो किया ही है, साथ ही उसकी सर्वतोमुखी व्यावहारिक साधना भी की है, अतः यह निस्सन्देह कहा जा सकता है कि श्री योगिराज जी योग शास्त्र के पारंगत विद्वान् और अद्वितीय सफल साधक हैं। सचमुच स्वामी जी की योग विद्या-बुद्धि और योग-साधना में परस्पर होड़-सी लगी रहती है। स्वामी जी के निकट-समागम में रहकर भी यह समझ लेना सम्भवतः कठिन ही होगा कि विद्वत्ता का पलड़ा वजनदार है अथवा साधना का। योगिराज जी की दोनों ही शक्तियां समयानुसार अपनी-अपनी महत्ता का परिचय देती रहती हैं। १९२४ ई० में जब स्वामी

जी महाराज ने ऋषिकेश की यात्रा की थी, तब वे योग के विद्यार्थी थे और अध्ययन और साधना दोनों की ओर उनका अनवरत अध्यवसाय चल रहा था। तदुपरान्त काशी में संस्कृत और हिन्दी-भाषा का अध्ययन किया। ऋषिकेश जाने से पहले मङ्गलोर में भी विद्याध्ययन किया। स्वामी जी बहुभाषाविद् हैं। कन्नड़, मराठी, हिन्दी, गुजराती, कच्छी, कोंकणी, मलयालम, अंग्रेजी आदि भाषायें आपके लिये हस्तामलकवत् हैं। आप उक्त भाषाओं के अच्छे पण्डित हैं। योगाभ्यास के सिलसिले में श्री योगिराजजी महाराज को उत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेश में भी अधिक समय तक रहना पड़ा, इसलिये अंग्रेजी की योजनाबद्ध शिक्षा प्राप्त करने की ओर आपकी विशेष प्रवृत्ति नहीं हुई। बचपन में जो रुपये-पैसे मिल जाया करते थे, उनका अधिकांश योग, वेदान्त, उपनिषद् और अन्य आध्यात्मिक ग्रन्थों को खरीदने में व्यय हो जाता था। इसके अतिरिक्त स्वामी जी का कला-प्रेम भी हमारी दृष्टि के समक्ष बरबस आ खड़ा होता है। बहुज्ञ बनने की यह महत्वाकांक्षा सचमुच प्रशंसनीय और अनुकरणीय है। स्वामी जी विविध कलाओं में कुशल हैं। योग कला तो आपकी आज्ञावन साधना एवं चिर-परिचित अनुष्ठान है इसके अतिरिक्त वक्तृत्व शक्ति (कला) और तदन्तर्गत विषय प्रतिपादन-शक्ति, अपनी बात को श्रोता के हृदय में बैठा देने की शक्ति और उसे अभीष्ट दिशा में उन्मुख कर देने की कला में स्वामीजी पूर्णतया पारंगत हैं। लेखन-कला में भी स्वामीजी अद्भुत क्षमता रखते हैं। योग—यम, नियम, आसन; प्राणायाम; मलशोधन—कर्म आदि के विषय में आपके लेख भारत की पत्र-पत्रिकाओं में प्रायः प्रकाशित होते रहते हैं, जिन्हें पढ़कर आपकी विषय प्रतिपादन और सिद्धहस्त लेखन शक्ति का स्पष्ट दर्शन होता है। तैरना, कुश्ती लड़ना (मल्लयुद्ध करना), मोटर चलाना, बिगड़ जाने पर मोटर को सुधार लेना आदि विविध कलाओं में स्वामीजी भलीभाँति सुदक्ष हैं। व्यापार—प्रवृत्ति के तो आप अग्रणी कला—निपुण हैं। इसके अतिरिक्त तन्त्रयोग, मन्त्र योग, भक्ति योग, शिव स्वरोदय आदि में

स्वामी जी की पूर्णतया गति है। सूर्य-नमस्कार, अश्वारोहण, साइकल चलाना, दण्ड बैठक, मलखम्भ आदि कठोर व्यायाम भी स्वामी जी की विराट् साधना के चिर-सहचर रहे हैं। स्वामी जी इन सभी कलाओं के सफल प्रयोक्ता हैं। सामाजिक रूप में स्वामी जी के विचार उदार हैं। मौलिक संस्कृति की परम्पराओं की सुरक्षा के साथ-साथ आवश्यक परिवर्तनवाद के भी स्वामी जी हिमायती हैं और समाज को एक सुयोजित जीवनचर्या के अन्तर्गत लाने के लिये प्रयत्नशील हैं।

श्रीरामतीर्थ योगाश्रम की स्थापना और कार्य का श्रीगणेश

सन् १९३३ ई० में श्रीरामतीर्थ योगाश्रम की स्थापना हुई और तभी से इसके कार्य का भी श्री गणेश हुआ। प्रारम्भ में योगाश्रम का कार्य बहुत सीमित क्षेत्र में रहा। तदुपरान्त श्री योगिराजजी की व्यवहार कुशलता, कार्यपटुता और शिक्षा-सुदक्षता आदि गुणों के प्रभाव से आश्रम के कार्य-क्षेत्र का विस्तार बढ़ने लगा और इस शुभ अनुष्ठान का सुयश चारों ओर फैलने लगा। जनसाधारण ने योगाश्रम के इस जन-कल्याणकारी आयोजन का स्वागत किया और उससे लाभ उठाने के लिये वह प्रवृत्त हुए। फलतः १९३७ ई० तक योगाश्रम का कार्य-क्षेत्र व्यापक बन गया और उसकी जन-सेवा की जिम्मेदारी उत्तरोत्तर बढ़ चली। वह आसन प्राणायाम, आत्मसंयम, सेवा जप-कीर्तन आदि की दिव्य साधनाओं और भावनाओं को बल देकर जन-जीवन का शारीरिक और मानसिक परिष्कार करने लगा। उच्च विचारों का उदय कर मन को सचेत, सतर्क और शक्तिशाली बनाये रखने के मंत्र से दीक्षित किया। बुद्धि को सूक्ष्म और कुशाग्र बनाने की प्रेरणा प्रदान की। सेवा, दान तथा विश्वप्रेम में निमग्न रहने के दिव्य मन्त्र से दीक्षित कर जन-मानस को बलवान्, विशाल, प्रेमपूर्ण और सहिष्णु एवं शुद्ध बनाये रखने का शाश्वत सामर्थ्य प्रदान किया और आज के व्यस्त और झंझटी मानव जीवन को सुख शान्ति की ओर ले जाने और उसे

व्यवहारकुशल तथा वर्तमान विश्वस्थिति के अनुकूल ध्येयनिष्ठ बनाने के अपने निर्धारित लक्ष्य का सम्यक् रूप से पालन किया। सचमुच श्रीरामतीर्थ योगाश्रम ने जनजीवन की महती सेवा की है तथा उसे स्वास्थ्य-वैभव, चिरायु, शारीरिक सम्पत्ति, आत्मिक ऐश्वर्य और मानसिक सामर्थ्य तथा स्वर्गीय सुख-शान्ति प्रदान कर कृतार्थ किया है।

बचपन में श्री स्वामीजी का नाम श्री उमेशचन्द्र माधवजी जोशी था। अष्टांग योग की साधना में प्रवृत्त और पारंगत होने के पश्चात् आपका नाम योगिराज श्री उमेशचन्द्र हो गया। अपने गुरु द्वारा उपलब्ध उपाधिसमलंकृत नाम-योगिराजजी के नाम से आप जनता के बीच ख्याति लाभ करने लगे। योगिराजजी को योग-शिक्षा देने वाले गुरु एक दण्डी स्वामी थे। वे महान् विद्वान् और योग के साधक महात्मा थे। दूसरे शिक्षक एक गृहस्थाश्रमी योगविद्या के विशेषज्ञ सज्जन थे। स्वामीजी ने अनेक तीर्थ यात्रायें की हैं और इस अवसर पर उन्हें अनेक ऋषि-महर्षियों, सन्त-महात्माओं विद्वद्गुरुओं और महापण्डितों के दर्शन करने और उनके उपदेश ग्रहण करने का सद्भाग्य प्राप्त हुआ है। इसीलिये कहते हैं कि स्वामीजी के जीवन में अनेक सुख-दुःखों का अनुभव हुआ। फिर भी, स्वामीजी कभी विचलित नहीं हुए और उनके सुख-शान्तिमय जीवन में कभी व्यतिक्रम नहीं हुआ। श्री योगिराजजी की इस नित्य शान्ति का कारण यही है कि वे मानव-सेवा और जीवदया में अहर्निश तन्मय रहते हैं। मानव-सेवा ही प्रभु की सच्ची सेवा है। इससे प्रभु प्रसन्न होते हैं और साधक के मन में चिरस्थायी सुख-शान्ति की प्रतिष्ठा करते हैं। स्वामीजी स्थितप्रज्ञ हैं। सुख-दुःख, मानापमान, निन्दा-स्तुति, हानि-लाभ आदि विविध जीवन-स्थितियों के प्रति आपकी निश्चल सम-बुद्धि है। आपको धन, ऐश्वर्य, प्रतिष्ठा आदि का तनिक भी अहंकार नहीं। आप आडम्बरहीन, निरहंकार, सरल, सादा जीवनयापन करते हैं। चाय, गांजा, भांग, तम्बाकू, बीड़ी-सिगरेट तथा अन्य दुर्व्यसनों से दूर हैं। आपका जीवन सम्पूर्ण व्यसनहीन

है व्यवहार और परमार्थ का सम्पादन आप सुचारु रूप से कर रहे हैं। आपकी जीवनचर्या भूतकाल में सुयोजित थी और वर्तमानकाल में तदनुसार एक सुयोजित कार्यक्रम को लेकर आप की जीवन-चर्या प्रारम्भ होती है। वचनसे ही स्वामीजी की वृत्ति निरीक्षक और परीक्षक की रही है और यही उनका वास्तविक स्वभाव भी रहा है, अतएव वे जीवन का मूल्यांकन करने की कला से अच्छी तरह परिचित हैं, अर्थात् स्वामीजी जानते हैं कि जीवन को उर्ध्वगति अथवा अधोगति की ओर ले जाने वाले मार्ग कौन से हैं और तदनुसार उन्होंने अपना मार्ग चुन लिया है। यह मार्ग अब स्वामीजी के लिये पूर्णतया सुगम हो गया है। जिन दिनों स्वामीजी ब्रह्मचर्य व्रत का पालन कर रहे थे और योगाभ्यास में निरत थे; उन दिनों एकबार हरिद्वार के समीप गंगा-तटपर बैठकर विचार करने लगे कि निवृत्तिमूलक (सन्यासी) जीवन व्यतीत करना विशेष सुखःशान्तिदायी और सफलता का द्योतक होगा; इसलिये सन्यस्त अर्थात् गृहत्यागी जीवन धारण करना अधिक उप-युक्त होगा; परन्तु तुरन्त ही ये विचार विलीन होने लगे और इनके स्थान पर अन्य विचारों का उदय होने लगा। योगिराजजी सोचने लगे कि निवृत्त त्यागी जीवन बिताने वाले अनेक साधु-सन्यासी आलसी और प्रमादी बनकर उदर-पूर्ति की चिन्ता अधिकतर करते हैं; फलतः समाज को उनसे कोई लाभ नहीं पहुँचता। उनकी प्रवृत्तियाँ समाज के लिये कल्याणकारिणी नहीं हैं। वे जो कुछ करते हैं, केवल अपने लिये करते हैं; समाज के उद्धार की दिशा में उनका कोई आयोजन नहीं। अतः स्वामीजी ने—उन महामना स्वामीजी ने, जिनको परमात्मा ने सन्यासी बनने के लिये नहीं; प्रत्युत् जन-गण की किसी विशेष सेवा के लिये इस घराघाम में भेजा था—संसार को त्यागकर हिमालय की निर्जन गुफाओं की ओर भागने को साधारण महत्त्वमण्डित समझा और गृहस्थाश्रम में प्रविष्ट होकर जनसेवा के व्रत का शुभ अनुष्ठान प्रारम्भ किया। वर्तमानकाल में स्वामीजी को कई पुत्र-पुत्रियाँ भी हैं। स्वामीजी गृहस्थाश्रम के कर्तव्यों का यथोचित रूप से पालन कर

रहे हैं।

योगाश्रम के व्यय की पूर्ति केवल साधकों की ओर से उपलब्ध शुल्क के आधार पर नहीं हो पाती, क्योंकि योगाभ्यास के लिये आने वाले सुयोग्य अधिकारी साधकों से शुल्क (फीस) नहीं लिया जाता अथवा अल्प परिमाण में लिया जाता है। यही कारण है कि आश्रम के व्यय-निर्वाह के लिये आसन-चित्रपट और यौगिक साहित्य का प्रकाशन किया जाता है। मस्तिष्क और बालों की पुष्टि और शरीर की मालिश के लिये लाभप्रद ब्राह्मी तेल बाजार में सर्वत्र उपलब्ध है। यह तेल आश्रम के खर्च को पूरा करने में सहायक है। इस योगाश्रम से अब तक देश विदेश के तीन-लाख स्त्री-पुरुषों से भी अधिक लोग प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से योगाभ्यास की शिक्षा ले चुके हैं वर्तमानकाल में सैकड़ों स्त्री-पुरुष साधक (धनवान्, गरीब, डॉक्टर, वैद्य, वकील, पण्डित) अधिकारी लोग श्रीरामतीर्थ योगाश्रम में योग की आयोजनाबद्ध शिक्षा पा रहे हैं और अपने जीवन को सफल, कर्मवान् एवं सुख-शान्तिमय बनाने के लिये निरन्तर प्रयत्नशील हैं।

योगाभ्यास की महत्ता और उससे मिलने वाले लाभों का मूर्तिमान् प्रत्यक्ष दर्शन स्वामीजी के जीवन में किया जा सकता है; अर्थात् वर्तमान-काल में अनेक प्रकार के व्यावहारिक और पारमार्थिक कार्यों में निरन्तर व्यस्त रहने पर भी वे न तो मानसिक थकावट या शारीरिक शैथिल्य ही अनुभव करते हैं और न उनकी अधिक आयु मालूम होती है। ६५ वर्ष की आयु पर पहुँच जाने पर भी उनका शरीर ३५ वर्ष के नवयुवक के समान सुगठित, कार्यक्षम, उत्साहपूर्ण और तेजस्वी है। यही तो सुनने और समझने योग्य बात है। स्वामीजी प्रातःकाल ५ बजे से रात ९।१० बजे तक अविराम कार्य करते रहते हैं आपके जीवन का दैनिक कर्मस्रोत अविच्छिन्न गति से प्रवाहित होता रहता है। तैलाभ्यंग (मालिश), स्नान, सन्ध्या, आसन, मुद्रा आदि यौगिक क्रियाओं का साधन, समागत सज्जनों से भेंट-वार्तालाप, पत्र-व्यवहार और व्यापारादि प्रवृत्तियों में सलाह सूचना, पठन-पाठन,

व्याख्यान, प्राकृतिक चिकित्सा की व्यवस्था करना, साहित्य-सेवामूलक प्रवृत्तियाँ और उपयुक्त समय-अवकाश मिलने पर धारणा-ध्यान-समाधि का अभ्यास आदि विविध प्रवृत्तियों में संलग्न रहने पर भी स्वामीजी अशक्ति, मानसिक दौर्बल्य, जीवन की नीरसता अथवा निराशा तथा व्याधि-उपाधि से सर्वथा मुक्त दिखाई देते हैं। वस्तुतः स्वामीजी ने चिरन्तन आरोग्य की कुंजी हस्तगत कर ली है।

सूक्ष्म निरीक्षण करने पर कुछ कारण स्वतः हमारे समक्ष आ खड़े होते हैं। हमारे सर्वसाधारण के बीच कुछ ऐसे लोग भी हैं, जिनका जीवन किसी न किसी कारण नीरस और निराशापूर्ण बना रहता है और कुछ लोग आध्यात्मिक जीवन में पारंगत होने पर भी व्यावहारिक जीवन में इतने अयोग्य और प्रतिकूल होते हैं कि थोड़े ही दिनों में मुक्त हो जाते हैं। अस्तु, स्वामीजी का जीवन व्यवहार और परमार्थ में अपनी कुशलता का परिचय कैसे दे रहा है; इसका सूक्ष्म निरीक्षण करने पर मुझे पता चला है कि कुछ अपवादों और अत्यावश्यक स्थितियों को छोड़कर स्वामीजी जन-समुदाय के बीच में नहीं रहते हैं। सिनेमा और मौज-शौक की वस्तुयें स्वामीजी को आकर्षित कर नहीं सकतीं। जैसा कि नैसर्गिक जीवन में कहा गया है, तदनुसार स्वामीजी शुद्ध जल-सेवन, पवित्र वायु-सेवन, आहार में कच्चे आहार का उपयोग (टमाटर, गाजर, पत्तागोभी, नारियल, ककड़ी, मूली, हरी धनिया की पत्तियाँ-इन सबका मिश्रण जिसे सलाद भी कहते हैं—गन्ना अथवा उसका रस, नीबू का शरबत, फल—पपीता, सन्तरा, सेव, अंगूर, आम, अंजीर, अखरोट, बादाम, पिस्ता आदि, गाय अथवा बकरी का दूध आदि सात्विक वस्तुओं का उपयोग) करते हैं। भोजन के समय में दाल, भात, रोटी, साग-सब्जी का उपयोग करते हैं। परन्तु ये सब वस्तुयें अल्प परिमाण में ही रहती हैं। मिर्च-मसाला, इमली, नमक आदि उत्तेजक पदार्थों का उपयोग बहुत कम मात्रा में करते हैं। महीने में कम से कम दो उपवास (प्रति एकादशी को) करते हैं। उपवास के दिन नारियल का जल,

नींबू का शरबत आदि द्रव पदार्थों को ग्रहण करते हैं। यह कितना आरोग्य-दायक सात्विक आयोजन है !

एक दिन की बात

एक दिन कुछ समय का अवकाश देखकर मैंने स्वामीजी से विनम्रतापूर्वक पूछा—“आप इस मोहमयी मायानगरी बम्बई में सुदीर्घ काल से रह रहे हैं। यहां का जल-वायु, आहार, वातावरण अशुद्ध (अप्राकृतिक) है। अपने निजी अनुभव से मैं जान सका हूं कि बम्बई—जैसे विशाल नगरों में रहने वाले लोग किसी न किसी शारीरिक और मानसिक रोग से पीड़ित हैं। वे शरीर तथा मन से दुर्बल तथा व्याधि ग्रस्त रहते हैं। आपका अनुभव क्या कहता है ? क्योंकि जनसेवा को प्रभु-सेवा मानकर ही आपका जीवन व्यतीत हो रहा है। मानव का यह स्वभाव है कि वह अन्य सुविख्यात महात्माओं की तरह जगत्-प्रसिद्ध श्रीरामतीर्थ योगाश्रम के संचालक और अन्य अनेक संस्थाओं के ट्रस्टी तथा उन्हें सत्परामर्श और निर्देश देने वाले विरल व्यक्तित्वधारी मानव के जीवन की विविध प्रवृत्तियों से परिचित हो और उससे यथोचित लाभ उठाये। मानव स्वभावतः अनुकरणवृत्ति का होता है, इसलिये वह महापुरुषों के जीवन-चरित्रों को पढ़ता, मनन करता और तदनुसार आचरण करने के लिये उत्सुक और उत्साहित होता है। आपका जीवन सचमुच ही एक दिव्य दीपशिखा के समान दीप्तिमान है। इसके शान्त और सौम्य प्रकाश में ऐसे लोग भी अपने जीवन के वास्तविक पथ को देख सकेंगे, जो अन्धकार में भटक रहे हैं और अधोगति की ओर निरन्तर आंख मूंदकर बढ़ेचले जा रहे हैं, जिनका जीवन आसुरी है और द्यूत (जुआ) आदि अनिष्टकारी आचरणों में ही अपने जीवन के अमूल्य क्षण नष्ट कर रहे हैं, जो काम-क्रोधादि मनोविकारों से जकड़े हुए हैं, निस्सन्देह ऐसे हीनवृत्ति मनुष्य भी सफलता और सिद्धिप्राप्त महापुरुष की उदात्त जीवन गाथा को पढ़-सुनकर उध्वंगामी विचारों से भर उठते हैं और स्वयंसिद्ध

स्थिति पर पहुंचने के प्रयत्न प्रारम्भ कर देते हैं। सत्संग, सात्त्विक आहार, पवित्र स्थान में निवास, सद्ग्रन्थों का पठन, ब्रह्मविद्या का व्यासंग, योगाभ्यास, दान-पुण्य शान्ति, तितिक्षा, उपरति आदि कर्तव्यों के पथ पर दृढ़तापूर्वक चलकर अपने जीवन के वास्तविक प्रश्न को हल कर लेते हैं। उनके जीवन में एक अभिनन्दनीय और मंगलकारी परिवर्तन होता है और वही समाजविरोधी मानव समाज के संरक्षक, समाज के हितैषी और उसके प्रिय बन जाते हैं। अतः आप अपने जीवन व्यापी कार्यों के अनुभव अवश्य प्रकट करने की कृपा करें। आपकी उदात्त जीवन-प्रवृत्तियों से परिचित होकर मानव निस्सन्देह अपने जीवन को उन्नत बनाने के लिए उत्कण्ठित होगा।”

स्वामीजी का विवेचनात्मक और सारगर्भित उत्तर

उत्तर में स्वामीजी ने मधुर और अर्थगर्भित वाणी में मुझे समझाया कि पंचमहाभूतों के योग से निर्मित मानव के इस जड़ शरीर का सदुपयोग यही है कि वह इससे व्यवहार और परमार्थ का साधन यथाशक्ति कर ले। ऐसा करने से मन तथा शरीर के सप्तधातु प्रसन्न परिष्कृत और शुद्ध रहते हैं। तात्पर्य यह कि यथासम्भव अवकाशयुक्त ऐकान्तिक पवित्र स्थान में निवास करना चाहिये। शरीर की तरह घर भी देव-मन्दिर के समान है, इसे हमेशा पूर्णतया शुद्ध रखना चाहिये। ऐसा करने से हमारा मन भी स्वच्छ, प्रसन्न और पुलकित रहेगा। जहां स्वच्छता होती है; वहां सरस्वती और लक्ष्मी अविचल निवास करती हैं। इस परमानन्दपूर्ण स्थितप्रज्ञ अवस्था में ही हम शतहस्त होकर विद्या, ज्ञान, धन, जीवनकला और व्यवहार प्रवणता का अर्जन करते हैं—बटोरते हैं और सहस्रहस्त होकर जन-कल्याणार्थ उसका व्यय करते हैं—सदुपयोग करते हैं। यह अवस्था सिद्ध हो जाने पर मानव सामान्य स्थिति से बहुत ऊंचे उठ जाता है और वह समाज का एक विरल-विशेष व्यक्ति के रूप में सर्वत्र पूजित और समादृत होता है। इसके अतिरिक्त शारीरिक और मानसिक प्रकृति को नीरोग बनाये रखने में आहार का महत्व भी कम नहीं है। शुद्ध, सात्त्विक आहार से शुद्ध ओजस्

बनकर पवित्र मन, बुद्धि, शक्ति, चित्त और अहंकार बनते हैं, अतः आत्मा के इन विभिन्न सूक्ष्म उपकरणों को पवित्र और निर्विकार बनाये रखने की दिशा में सतत प्रयत्नशील रहना चाहिये ।

पुष्प का आध्यात्मिक महत्त्व

सत्संग और सद्ग्रन्थों का पठन भी दैनिक जीवन का आवश्यक कर्तव्य होना चाहिये । जैसे प्रतिदिन सुगन्धियुक्त पुष्पों के समागम में पहुँचने, उनकी सुगन्ध में श्वासोच्छ्वास लेने और उनके समीप-दर्शन से हमारी आंखों द्वारा हमारे शरीर में जो जीवनतत्त्व प्रविष्ट होता है; वह अपनी ही तरह हमें प्रफुल्ल और रसमग्न बना देता है । पुष्प अपनी सुगन्ध और सुन्दरता से अनायास ही सबको अपनी ओर आकर्षित होने को बाध्य करता है । बम्बई में अनन्त पुष्पराशि देव-प्रतिमाओं पर चढ़ती है । सुकुमार पुष्प का रूप-विधान कितना मोहक है । मानव भी पुष्प की इन विशेषताओं का मूल्यांकन करता है । वह उसे अपने देवता पर चढ़ाता है और देव-प्रतिमा के अंग प्रत्यंगों को फूल और फूलमालाओं से ढक देता है देव-प्रतिमा इस प्राकृतिक श्रृंगार से सजीव होकर मुस्करा उठती है और हम पर कल्याणकारी आशीर्वादों की वर्षा करने लगती है । भारतीय गृह देवियां जब फूलों के विविध अलंकारों से अपने शुभागों को सजाती हैं, तब वे प्रत्यक्ष जगदम्बा के रूप में हमें अपना दर्शन कराती हैं । फूल हमारे सर्वांग पर सुन्दर प्रभाव डालता है और उत्फुल्ल तथा विकसित बनाने में समर्थ होता है और हमारी आत्मा उसे देखकर आनन्दोच्छ्वसित हो उठती है । अस्तु, प्रत्यक्ष और जड़ रूप में हम भले ही फूलों से उपलब्ध लाभों का अनुभव कर न सकें । फिर भी, फूलों से हम ऐसे अदृश्य लाभ उठाते रहते हैं जो आश्चर्य हैं । यही कारण है कि सभी सामाजिक और व्यक्तिगत शुभ कार्यों में फूलों का अग्रस्थान है । व्याख्यान, मानपत्र, पूजा-पाठ, जप-तप आदि विविध सांसारिक और पारमार्थिक अनुष्ठानों में सुगन्धियुक्त और मनमोहक फूलों का उपयोग सर्वव्यापी बना हुआ है । इसी प्रकार शुद्ध जल

आदि का सेवन यथोचित रूप में करते रहना चाहिये । इस जड़ शरीर को नीरोग बनाये रखने में शुद्ध जल का भी एक महत्वपूर्ण स्थान है । केवल इतना ही योगाभ्यास की पूर्णता के लिये पर्याप्त नहीं है । इन सब कर्तव्यों के साथ शुद्ध खादी के वस्त्र का परिधान करना, सुख दुःख में मन को संयत, शान्त और सावधान रखना भी अनेकशः कर्तव्यों के साथ एक अनिवार्य कर्तव्य है ।

सूक्ष्म दृष्टि डालने पर भलीभांति मालूम हो जायेगा कि निर्जन, सुशान्त और दिव्य नैसर्गिक दृश्यों के साथ मानव-जीवन का घनिष्ठ सम्बन्ध सनातन काल से चला आ रहा है । हम देखते हैं कि ऋषि-महर्षि, साधु-सन्त, योगी, पण्डित आदि साधननिष्ठ जनों को प्रायः ऐकान्तिक जीवन ही रुचिकर था । याज्ञवल्क्य, विश्वामित्र, वाल्मीकि, अगस्त्यादि महर्षि, जनक युधिष्ठिरादि राजा, विदुरादि नीतिज्ञ आदि विद्यादान, प्रजापालन आदि कर्तव्य का यथावत् पालन करने के पश्चात् ऐकान्तिक जीवन बिताने की ओर प्रवृत्त हुए । भारतवर्ष में यह नियम था कि जनसाधारण या विशेष जन सांसारिक गृहस्थ-जीवन में रहने के पश्चात् वृद्धावस्था आ जाने पर या किसी विशेष अवधि के बाद वन, पर्वत, गंगादि नदियों के तटवर्ती स्थानों पर रहने लगते थे । इससे स्पष्ट होता है कि इन प्रशान्त और स्वयंसुन्दर स्थानों पर उन्हें परम सुख-शान्ति और आनन्द की अनुभूति हुई होगी ।

प्राकृतिक जीवन में वन-पर्वतों का महत्व

प्राकृतिक जीवन में वन-पर्वत भी अपना महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं, वहां का शान्त और शुद्ध वातावरण मानव को दिव्य शान्ति का अनुभव कराता है । भारतीय संस्कृति में वन-पर्वतों की सनातन काल से प्रतिष्ठा है । वन-पर्वत भारतीय जीवन के अविच्छिन्न अंग रहे हैं और वे हमारे जीवन के साथ ओतप्रोत हैं । हमारा मन वन-भ्रमण के लिये लालायित होता है । अस्तु; निरन्तर कार्य-व्यस्त रहने के बाद जब कभी मेरे जड़ शरीर

में थकावट, मन में दौर्बल्य के चिन्ह जान पड़ते हैं, ऐसी दशा में—भले किसी को हमारी इस अभियात्रा की जानकारी न हो, और मैं भी अल्प अवधि के लिये ही क्यों न जाऊँ—तुरन्त मैं बम्बई से कुछ मील के अन्तर पर अवस्थित वन्य और पहाड़ी क्षेत्रों में मोटर, बस अथवा रेलवे द्वारा जा पहुंचता हूं और इन नैसर्गिक पवित्र स्थानों पर योगाभ्यास करता हूं। आशामय विचारों में तन्मय होकर उस प्राकृतिक सौन्दर्य में अपने जीवन को ओतप्रोत कर देता हूं और अलौकिक आनन्द की अनुभूति में निमग्न हो जाता हूं। यद्यपि पर्वतों की चढ़ाई में कुछ कष्ट होता है। परन्तु परम्परागत प्राप्त और क्रमशः पूर्णविकसित इच्छाशक्ति इन कष्टों को स्वतः दबा देती है। कभी-कभी सपरिवार भी वन-पर्वत-प्रदेश पर भ्रमण के लिये जाता हूं। कम से कम सप्ताह में एक बार अवश्य ही प्रशान्त प्रदेशों के दर्शन का आनन्द लेता हूं। इसके प्रतिफलस्वरूप मैं सदैव स्फूर्ति, आनन्द और स्वास्थ्यपूर्ण स्थिति का अनुभव करता रहता हूं। यह वही आरोग्य और आनन्द है, जिसे प्राप्त करने के लिये सर्वसाधारण स्त्री-पुरुष विविध प्रकार की औषधियां इंजेक्शन, जीवनतत्त्वयुक्त गोलियों का सेवन करते हैं। वे इसीलिये नाना-प्रकार के व्यसनों में पड़जाते हैं और रहन-सहन, वेषभूषा आदि विलासितापूर्ण एवं मौज-शौक की वस्तुओं को अपनाकर अपने नैसर्गिक सौंदर्य को कृत्रिम उपादानों से सर्वांग आच्छादित करते हैं। फिर भी, उनके शरीर और मन को अभीष्ट आनन्दानुभूति नहीं होती और वे दुःखी रहते हैं। इसके विपरीत थोड़ी ही देर के लिये क्यों न हो; प्रकृति की गोद में मैं लेट जाता हूं और जितनी आवश्यक है, मुझे आत्मिक शान्ति उपलब्ध हो जाती है। इसी संचित शक्ति के आधार पर मैं सप्ताह भर निरन्तर कर्मरत रहता हूं। मेरा यह आयोजन अब मेरे पीछे व्यसन बनकर लग गया है। जैसे किसी व्यसनग्रस्त मानव को अभीष्ट वस्तु न मिलने पर उसके मानसिक विचार वारंवार उस ओर उत्कण्ठित होकर दौड़ते रहते हैं; उसी तरह मेरी मानसिक भावनायें वन-पर्वतादि नैसर्गिक दृश्यों के दर्शन की प्रबल इच्छाशक्ति

को जन्म दे देती हैं और मैं अनायास ही उनकी शोर चल पड़ता हूँ। परी-
क्षार्थ पारिवारिक जनों से मैं पूछता हूँ कि आज छुट्टी का दिन है; कहां जाने
की इच्छा है। सब लोग एक स्वर से यही उत्तर देते हैं कि पर्वतीय क्षेत्रों में
(थाना, मुलुण्ड, नासिक के रास्ते में अवस्थित खण्डालाघाट, केनेरी गुफा,
गोरेगांव का पर्वत-क्षेत्र, घोड़ बन्दर के पर्वतीय क्षेत्र आदि में) चलिये।
उनका यह उत्तर सुनकर मेरा मन प्रसन्न हो उठता है। इसका कारण यह
है कि आजकल के अधिकांश अल्पवयस्क किशोर और नवयुवक पर्वतीय
प्रयाण के कष्टप्रद कार्य और मौज-शौक से रहित जीवन को बिल्कुल
पसन्द नहीं करते। अपने आप इस प्रकार की इच्छा प्रकट करने का कारण
हमारे पारिवारिक जनों का सुसंस्कृत और अनुशासनबद्ध जीवन है। उनके
जीवन का यह स्वभावगत ध्येय बन गया है; फलतः उनका स्वास्थ्य सन्तोष-
प्रद रहता है।

अस्तु; केवल वन-प्रदेश में घूमने से ही सम्पूर्ण उद्देश्य-सिद्धि सम्भव
नहीं। जैसे षट्‌रसों से मानव-शरीरगत सप्तधातुओं का निर्माण होता है;
उसी तरह निद्रा भी जीवनचर्या का एक आवश्यक अंग है। मैं प्रतिदिन
कम से कम ८ घण्टे की प्रगाढ़ निद्रा में सोता हूँ। स्थूल, सूक्ष्म और सूक्ष्म से
कारण शरीर में प्रवेश करने की स्थिति निद्रा है। अर्थात् मानव का यह
शरीर मन्दिर अन्नमय कोश, प्राणमय कोश, मनोमय कोश, विज्ञानमय कोश
और आनन्दमय कोश से बना है, अर्थात् आत्मा के पंचकोश हैं। इसी प्रकार
कारण शरीर के साथ सम्बन्ध रखना आत्माके निकट निवास करना है-आत्मा
के सहवास में रहना है। आत्म-शक्ति के आधार पर ही स्थूल, सूक्ष्म, कारण
और महाकारण शरीर अपने-अपने कार्य को यथोचित सम्पन्न करते हैं।
समस्त दिन काम करने के बाद खर्च किये गये बल (सामर्थ्य) को पुनः
प्राप्त करने के लिये आहार, जल, विहार, विचार आदि अनेक साधनों और
उपसाधनों की आवश्यकता है; उसी तरह निद्रा भी जीवन का अत्यावश्यक
अंग है। कुछ लोगों की धारणा है कि योगाभ्यासी और त्यागी लोगों को

कम निद्रा लेनी चाहिये। जो लोग शारीरिक परिश्रम से सर्वथा वंचित हैं, जिन्हें केवल बौद्धिक श्रम ही करना पड़ता है और जो लोग बैठे-बैठे, पढ़ते-पढ़ते अथवा प्रवास के समय कुछ देर के लिये निद्रा जैसी अवस्था पर पहुंच जाते हैं और कुछ लोग दोपहर में १ से ४ बजे तक सोते हैं, वे लोग रात्रि-कालीन गहरी निद्रा का आनंद कैसे पा सकते हैं? भले ऐसे दिन में सोने वाले लोग रात में अल्पकालीन निद्रा लेकर सन्तुष्ट हो जायें, परंतु अन्य लोगों को जिन्हें विशेष परिस्थितिवश दिन में बिल्कुल सोने को नहीं मिलता, कम से कम ८ घण्टे की निद्रा अवश्य लेनी चाहिये। शान्त और गहरी निद्रा शरीर और मन को उत्साह और नवीन उल्लास से भर देती है और मानव तरोताजा होकर पुनः अपने दैनिक कार्यों में योग्यता पूर्वक तत्पर रहता है।

वन-भ्रमण का विशेष प्रेम

कोई विशेष प्रसंग उपस्थित होने पर श्रीरामतीर्थ योगाश्रम की मोटर में हजारों मील की यात्रा करनी पड़ती है। इस अभियात्रा-काल में रास्ते में पर्वतों पर अथवा गंगादि नदियों के तट पर, निर्जन स्थानों में जहां कहीं भी तीर्थस्थान, मन्दिर आदि मिलते, उनके दर्शन करता हूं और वहां के नैसर्गिक दृश्यों के आनन्द का भी अनुभव करता हूं। कभी-कभी रेलवे या वायुयान (विमान) से भी हजारों मील की लम्बी यात्रा करनी पड़ती है, ऐसे अवसर पर जहां कहीं भी समयावकाश मिलता है, तुरन्त योगाभ्यास और अन्य क्षेत्रों में भ्रमण-विहार अवश्य करता हूं। मेरी इन प्रवृत्तियों के फलस्वरूप अभी तक मेरा शारीरिक आरोग्य यथावत् सुरक्षित है, मनो-बल और आत्मिक शान्ति की अमृतवर्षा का जीवन-रस पानकर मैं परम तृप्ति से संवलित रहता हूं। आयु के अनुसार उसका जैसा प्रभाव और लक्षण शरीर पर प्रकट होना चाहिये, वैसा होता नहीं, बल्कि अल्पवयस्क नवयुवकों के समान शरीर के सभी हाव-भाव, हलचल प्रत्यक्ष लक्षित होते हैं। लगभग १५ से २० वर्ष पहले जिन लोगों ने मुझे देखा था, वे अचानक

मिलने पर बिना सोचे और पूछे ही कह बैठते हैं कि स्वामीजी आपकी शारीरिक हलचल में आयु दृष्टि से जैसा परिवर्तन होना चाहिये, वैसा प्रकट नहीं होता, अर्थात् अब भी आपका शरीर सशक्त, स्वास्थ्य सम्पन्न, कुशाग्र बुद्धियुक्त और कार्यकुशलता में अग्रगण्य जान पड़ता है ।

सन्तों का परोपकारी जीवन

स्वामीजी का यह स्वानुभव सुनकर और कुछ आदर्शों के प्रति उनकी आदरभावना को देखकर मुझे अतीव आनन्द हुआ । स्वामीजी समाज की सक्रिय सेवा करते हैं । आज कल लोगों में पुस्तकीय अध्ययन-ज्ञान होता है और वे कथन तक ही सीमित रहते हैं, तदनुसार कहने के अनुसार कर्म में प्रवृत्त होने वाले और अपने आयोजनों से जनसाधारण को लाभ पहुंचाने वाले इस देश-दुनिया में बहुत कम पाये जाते हैं । मैं तो स्वामीजी के समस्त सद्गुणों सत्कार्यों और स्वानुभवों से परिचित नहीं हूं । फिर भी सन्त-महात्माओं के सम्बन्ध में सत्य ही कहा है —

सरवर, तरुवर, सन्तजन,
 चौथे वरसे-मेह ।
 परमारथ के कारणे,
 इन चारों धारी देह ।

अथवा—

‘तुलसी’ सन्त, सुअम्बतरु,
 फूल-फलहिं परहेत ।
 इतते ये पाहन हने,
 उतते वे फल देत ।

स्वयं सिद्ध साधक स्वामीजी

उपर्युक्त कहावत के अनुसार सचमुच ही श्रीरामतीर्थ योगाश्रम की

प्रवृत्ति, उद्देश्य और उसके शुद्ध वातावरण पर दृष्टिपात किया जाये तो वह सम्पूर्ण श्रद्धा रखने योग्य है। स्वामीजी का जीवन जन-कल्याण के कृपाभाव से ओतप्रोत है। आपके पास आनेवाले-व्याख्यान के समय, योगाभ्यास के समय अथवा अन्य विशेष स्थितियों और कारणों को लेकर आनेवाले-जनों-वे भोगी हों या त्यागी, पण्डित हों या अपण्डित, महात्मा हों या हीनात्मा, गृहस्थ हों सन्यासी, पूंजीपति हों या निर्धन, स्त्री, बालक, वृद्ध-कोई भी हो—सब ने स्वामी जी के सान्निध्य में आकर कुछ न कुछ लाभ अवश्य ही उठाया है। किसी को शारीरिक स्वास्थ्य, किसी को मानसिक शान्ति-स्थिरता, किसी को आत्मदर्शन, किसी को आर्थिक लाभ और किसी को व्यवहारिक उन्नति का प्रशस्त पथ दिखाकर तदनुकूल आचरण करने की प्रेरणा प्रदान की है। जिा का मन स्वभावतः शुभभावना में निमग्न रहता है, वे लोग अधिकाधिक लाभ उठाते देखे जाते हैं। साधक की प्रसुप्त शुभ और शुद्ध मनोवृत्तियाँ एक अदृश्य मंगल स्पर्श पाकर सजग हो उठती हैं और साधक उठकर चल पड़ने के लिए उत्साहित हो उठता है। अशुभ भावनावाले भी स्वामी जी के समागम में आये और स्वामीजी ने अपनी बलवती स्वाभाविक शुभचंचला-शक्ति से उन्हें ऐसा प्रभावित किया कि उन्हें पश्चात्तापपूर्वक अपने अशुभ भावों को दूर भगाना पड़ा। प्रभावित मानव के मनपर दीर्घकाल से जड़ जमाकर बँठी हुई मनोदशाओं में उत्क्रान्ति उत्पन्न करना-उसे परिवर्तित कर देने का प्रयास करना किसी साधारण व्यक्ति का काम नहीं। इसके अन्तर्गत अदृश्य प्रबल आत्मशक्ति, अप्रततिहत मनोबल और उस सिद्ध जीवन-कला का गुप्त हाथ रहता है, जो विरल शक्तियों के पास होती है। स्वामीजी की यह मनोवैज्ञानिक उपचार-कला सैकड़ों लोगों को आध्यात्मिक मार्ग का अनुयायी बना चुकी है। स्वामीजी साधनों को अपनी चिर-सहचरी बनाये हुए हैं। उनका जीवन 'साधन' का मूर्तिमान प्रतीक है स्वामीजी स्वयं सिद्ध साधक तो हैं ही; साधकों के निर्माता भी हैं। उनका अधिकांश जीवन साधना करने और साधकोंका निर्माण करने में ही व्यतीत

हुआ है। स्वामीजी के अधिकांश साधक शिष्य अपनी साधना को सफल बना कर साध्य-लक्ष्यको सिद्ध करके-प्राप्त करके आज अपने सांसारिक और पारमार्थिक कर्तव्यों का पालन कर रहे हैं। प्रसंगोपात यह भी पता चला कि जिन स्त्री-पुरुषों से स्वामीजी बिलकुल परिचित नहीं, वे भी श्रीरामतीर्थ योगाश्रम की सेवा-सिद्धियों के प्रति अपनी हार्दिक सहानुभूति प्रदर्शित करते हुए तन-मन-धन से उसकी सहायता कर रहे हैं: इसमें कोई सन्देह नहीं।

योगाश्रम के कार्य-विस्तार की महत्वाकांक्षा

स्वामीजी की हार्दिक इच्छा है कि योगाश्रम का कार्य-क्षेत्र बम्बई-नगर तक ही सीमित न रहे। स्वामीजी इतने से ही सन्तुष्ट होकर बैठ रहना नहीं चाहते; अपितु वे समग्र भारत में नगर-नगर और गांव-गांव में योगाश्रम के कार्यका विस्तार करना चाहते हैं, जिससे भारतीय जनगण योगाभ्यास के भौतिक और आध्यात्मिक लाभों से परिचित हों और योगाभ्यास के द्वारा अपने शरीर को बलवान् गठीला, और स्थितिस्थापकता की शक्तिसे भरपूर और मन को प्रसन्न, चैतन्यशील और उर्ध्वगामी बनाकर आत्मदर्शन के निजानन्द का रसास्वादन कर सकें। सभी स्त्री पुरुष संसार में रहकर अपने सांसारिक कर्तव्यों पंचमहाभूत-यज्ञादि का पालन करते हुए यथेच्छ सुख साधनों का सम्पादन करने में समर्थ हों। श्री स्वामीजी का आन्तरिक चिन्तन, हार्दिक अभिलाषा और अन्तिम उपदेश यही है कि सभी स्त्री-पुरुष आत्मानन्द में सदैव निमग्न रहते हुए सुखी जीवन-स्थिति प्राप्त कर सकें।

स्वामीजी के उपास्य

स्वामीजी के उपास्य देवता ब्रह्मा, विष्णु, शिव, होने पर भी वे निराकार के सूक्ष्म चिन्तन की ओर प्रवृत्त रहते हैं।

“आत्मवत् सर्वभूतेषु यः पश्यति स पण्डितः”—इस श्लोकार्धके अर्थ और भाव का मनन करते हुए समग्र चराचर जगत् ही जिस भावात्मक

स्थिति पर पहुंचकर निराकार प्रभुका ही साकार स्वरूप दृष्टिगोचर होता है; उस महान् शक्ति को हस्तामलक भाव करने वाले महानुभाव स्वभावतः निराकार और साकार में एक ही प्रभु को प्रतिबिम्बित होते हुए देखते हैं। ऐसे महापुरुषों के मननोन्मुख महान् भाव साकार और निराकार में एक ही चरम अनुभूति—एक दिव्य दर्शन पाते हैं। फिर भी, व्यापक भाव मूलक निराकार की ओर विशेष प्रेरणा रहना स्वाभाविक है।

प्रार्थनामय जीवन

श्री स्वामी जी प्रार्थना पर विशेष बल देते हैं और उनका जीवन भी प्रार्थनामय है। आप प्रार्थना को निर्झरिणी मानते हैं, जिससे अभिसिंचित होकर मानव का जीवन-मरुस्थल लहलहा उठता है। प्रार्थना में निरन्तर निरत रहते हुए प्रार्थी के जीवन में एक ऐसी भी शुभ घड़ी आती है, जब परम प्रभु का दिव्य संगीत वह अपने अन्तरतम में सुनने लगता है। हृदय से उद्गत प्रार्थना का यह प्रवाह कभी स्थायी नहीं होता। स्वामीजी का कहना है कि वाणी का सदुपयोग पवित्र प्रार्थनामय शब्दों के उच्चारण में है और उन शब्दों में भरा हुआ दिव्य प्रार्थी की आत्मा को एकता के सूत्र में आबद्ध कर देता है जब प्रार्थना हृदय के पवित्र भावोंसे सराबोर होकर प्रस्फुटित होती है; तब शरीर की रग-रग में एक शुभ आन्दोलन उठता है और हृदयका अणु परमाणु अलौकिक आन्दोलन रस में निमग्न हो जाता है। स्वामीजी का मत है कि जो लोग मस्त होकर प्रभु के गान में रसमग्न रहते हैं; उनके समग्र कार्य-व्यवहार प्रार्थना के रूप में मूर्त हो उठते हैं। हम जहां भी जाते हैं, वह स्थान पवित्रता से पुलकित हो उठता है और जीवन का प्रत्येक क्षण उत्साह का ओजस्वी अनुष्ठान बन जाता है। हम अपने सभी कार्यों में प्रभु-सेवा की अनुभूति करते हुए स्वतः उनका सम्पादन करने में लगे रहते हैं—हमें प्रत्येक कार्य में प्रभु-सेवा की दिव्य अनुभूति होती है। यही सच्ची प्रार्थना है और यही परम प्रभु को प्रसन्न करने और उनके नित्य सान्निध्य में पहुंचनेकी सरल

और स्वच्छ पगडण्डी है । भगवान् की अनन्त अनुकम्पा का दिव्य स्रोत हमारे चतुर्दिक् उमड़ता रहता है और हमारी जीवन-गति में कहीं किसी प्रकारकी बाधा नहीं आती । स्वामीजी ने यह भी बताया कि प्रार्थना अन्तःकरण के मलिन भावों को धोकर उसे निखार देती है और प्रार्थी प्रभु की भक्ति और उसके प्रेम में तन्मय और तदाकार होकर लोकोत्तर आनन्द और दिव्य शान्ति रस की सात्त्विक धारासे अपने जीवन को ओतप्रोत बना लेता है । उसकी मानसिक निर्बलतायें तिरोभूत हो जाती हैं एवं उसका मन शान्त, स्वस्थ और निर्विकार हो जाता है ।

दैनिक जीवन पर विचारों का प्रभाव

अस्तु, अनेक प्रसंगों में श्री स्वामीजी ने बताया है कि एक ही स्थानमें सम्पूर्ण विश्वास के साथ परम प्रभु की महिमा में तल्लीन और ध्यानस्थ होकर प्रतिदिन कम से कम १० मिनट तक प्रार्थना करनी चाहिये । मन को पूर्ण नियन्त्रित और एकाग्र बनाना पड़ता है । शास्त्रीय और मनोवैज्ञानिक दृष्टि से यह स्थिति स्वभावतः मानी जाती है कि प्रातःकाल शय्या से उठते समय जैसे विचार मन में उत्पन्न होते हैं; उसी तरह के उच्च या हीन, शुभाशुभ, पवित्र या अपवित्र विचार समग्र दिन मन को घेरे रहते हैं और उसी रूप में समग्र दिन व्यतीत होता है । प्रातःकाल जगते ही यदि भय, चिन्ता, निराशा, और शंकामूलक विचारों का प्रादुर्भाव होगा तो समस्त दिन इसी प्रकार के हीनताद्योतक विचारों से मन-मस्तिष्क कुंठित और उत्पीड़ित रहेंगे और यदि प्रातःकाल आशामय, सुखशान्तिप्रद और उल्लासपूर्ण विचारों का उदय होगा तो समग्र दिन वैसे ही शुभ और मन को प्रसन्न-प्रफुल्ल करने वाले दिव्य विचारों की परम्परा चलती रहेगी । उत्साह और उद्यम से मन आनन्दोद्दीप्त रहेगा । वस्तुतः मनुष्य को उच्च या हीन स्थिति पर पहुंचाने के लिए विचारों का बहुत बड़ा हाथ रहता है । मानव के जीवन-निर्माण में उसके विचार बहुत कुछ जिम्मेदार हैं ।

स्वामीजी का कहना है कि प्राचीन और अर्वाचीन कालमें राजा-महाराजाओं के प्रातःकाल शय्यात्याग करने पर (द्वापर युगमें भगवान् श्रीकृष्ण बिस्तर से उठने पर प्रातःकालीन प्रार्थना करते थे) आशा, निर्भीकता और प्रशंसायुक्त वाक्यों से उनकी प्रशस्ति की जाती थी । यह काम भट्ट-ब्राह्मण आदि करते थे और इसका उद्देश्य यह था कि राजाओं को उन के दिनभर के राजकार्यों में विजय और सफलता प्राप्त हो । यद्यपि भारत में आज राजाओं का अस्तित्व नहीं रहा; परन्तु जब वे राजपद पर थे, तब प्रतिदिन पूर्वोक्त विधि-विधान का पालन किया जाता था; अर्थात् इतने महान् सत्ता-धीश, प्रजा-परिपालक, धन-सम्पत्ति के अतुल भण्डार से परिपूर्ण, विपुल सेना से सुसज्जित, सुरम्य प्रासादों (महलों) से परितृप्त, परिचारकों से चतुर्दिक् घिरे, रानियों से सुशोभित और ऐहिक सुख-साधनों की प्रचुर राशि से सम्पन्न होने पर भी उन राजा-महाराजाओं के जीवन के एक अंगके रूप में प्रार्थना, प्रशंसा और स्तुति का आधार रखा जाता था ।

मंगलकारी और लोकप्रिय अनुष्ठान

अस्तु; स्वामीजी के उक्त आध्यात्मिक विचार निश्चय ही मानव को कल्याण-पथ पर पर ले जानेवाले हैं । स्वामीजी का जीवन-चरित्र मानवता की महत्वपूर्ण सेवा का उदात्त इतिहास है । इसके लिये न तो सन्यास लेना पड़ा और न मठाधीश बनना पड़ा । योगाश्रम की स्थापना के पश्चाद्वर्ती आप के सभी कार्यों से यही सिद्ध होता है कि आपने मानव को नीरोग, निर्विकार बनाकर उसे जीवन की नैसर्गिक स्थिति पर पहुंचा देने का व्रत धारण किया है और इसी पुष्पश्रद्ध अनुष्ठान में अपना सर्वस्व अर्पित कर दिया है । इसमें सन्देह नहीं कि आपने योगाश्रम की स्थापना की और अपनी तत्सम्बन्धी प्रवृत्तियों को इतना विस्तृत बना दिया कि इस बम्बई नगरी में, देश के अन्य नगरों और गांवों में आपके लाखों साधक शिष्य, भक्त और प्रशंसक पाये जाते हैं । किन्तु इन सारी बातों को, इस उपलब्ध लोकप्रियता

को मानव-सेवा की महत्वपूर्ण अभीप्सा और एतदर्थ प्राप्त प्रत्येक क्षण का सदुपयोग करते रहने का ही फल समझना चाहिए। स्वामीजी मन, वचन, कर्म से मुक्तहस्त होकर अपनी यौगिक साधना और आध्यात्मिक अनुभवों का वितरण कर रहे हैं, फलतः प्राणिमात्र का कल्याण तो होता ही है; साथ ही उसी के अनुपात में स्वामीजी के सुयश-सौरभ का विस्तार भी हो रहा है। जाति, सम्प्रदाय और मत-मतान्तरवाद से ऊँचे उठकर स्वामीजी जन-गण का शारीरिक और मानसिक परिष्कार योग्यतापूर्वक कर रहे हैं। अतः सर्वसाधारण के मानस में उच्च आसन पर स्वभावतः प्रतिष्ठित हो गये हैं। भारतीय जनता आपकी कृतज्ञ है। वह सुयोग्य और सर्वजन शुभेच्छु मानव का सन्मान करना जानती है। भारत के सुदीर्घकालीन इतिहास में अनेक प्रभावशाली सन्त-महात्माओं और ऋषि-महर्षियों की अविच्छिन्न परम्परा पाई जाती है, जिनका उद्बोधन पाकर जनता अपने कर्तव्यानुष्ठानों के प्रति सजग हुई है और इन उद्बोधक महात्माओं के चरणों पर अपनी हार्दिक श्रद्धा-भक्ति की पुष्पांजलि चढ़ाई है।

मानव में दिव्य जीवन की प्रतिष्ठा

अस्तु; मानवजाति का यह ज्ञान और अनुभव नया नहीं कि सन्त पुरुष जहाँ भी रहेगा; पुष्प की भांति अपने दिव्य सौरभ को चतुर्दिक्-सर्वत्र समान रूप से बिखेर कर अपने आसपास के वातावरण को पुलकित और अपने अनन्त आत्म-सौन्दर्य का दर्शन कराकर जन-जन को आल्लादित और रसमग्न बना देता है। वह अपनी शुभ्र आत्म-ज्योति से स्थानीय वातावरण में अपनी आलोक-किरणों को विकीर्ण करता है, जिनके धवलित प्रकाश में जनगण अपने वास्तविक पथ को भलीभांति पहचान लेते हैं और उसी पथ पर आगे बढ़कर अपने जीवन-लक्ष्य पर अनायास पहुँच जाते हैं। सन्त का अन्तरतम स्नेह और प्रेम-रस से छलकता रहता है तथा अपनी इस रस-माधुरी से वह जनगण को भी आप्यायित करता है। इस अमृत धारा का पानकर जनसाधारण की चिरसंचित पिपासा परितृप्ति की सांस

लेती है। वह कृतकृत्य हो जाते हैं। जन-कल्याण की अतृप्त अभिलाषा को लेकर ही सन्त आधिभौतिक और आधिदैविक शक्ति का अर्जन करता है और एतदर्थ उसे परमात्मा, आत्मा और प्रकृति की शक्तियों के साथ सामं-जस्य बनाये रखना पड़ता है। इसके लिये उसे तपस्या करनी पड़ती है और वह जीवन की विशेष स्थितियों के साथ संघर्ष करने के लिये बाध्य है। प्राकृतिक शक्तियों को स्वानुकूल बना लेने की उसमें अदम्य शक्ति वर्तमान रहती है और आत्मानुभूति में वह विश्व में सर्वोदय की भावना उत्पन्न करने में सदैव सजग रहता है। इसी सर्वकल्याणी परम्परा के मंत्र से जनगण को दीक्षित करने के लिये वह सदैव कटिबद्ध रहता है और इस व्यापक स्थिति पर पहुँच जाने के पश्चात् वह परमात्मा से तादात्म्य स्थापित करने के लिये कटिबद्ध होता है। सन्त का यह कठोर जीवन सचमुच वन्दनीय है और उसकी सर्वकल्याणी प्रवृत्तियाँ प्रणम्य हैं। सन्त जन-जन को उसकी अदृश्य शक्तियों के प्रति सजग बनाकर उसे उच्च कर्तव्यों की ओर उन्मुख करता है। यह वह अदृश्य शक्तियाँ हैं, जो विश्व का संचालन करती हैं। यह आध्यात्मिक चेतना सन्त को ईश्वरीय शक्ति के व्यापक एवं पारमार्थिक स्वरूप की अनुभूति कराती है। सन्त का आनन्द ऐकान्तिक होता है और उसके संकल्प (ओटो-सजेशन) बलवान् बन जाते हैं। अपनी बाह्य महानता और आन्तरिक सौन्दर्य की ज्योति को विकीर्ण करता हुआ सन्त ज्ञान और करुणारस अभिभूत सन्त, मुक्त हृदय होकर व्यवहार, व्यापार और जीवन-कर्तव्यों में संलग्न होता है। उसका समग्र जीवन-विधान परमात्म-प्रेरित होता है, इसीलिए कहा जाता है कि सन्तों के कार्य का लेखा-जोखा-हिसाब-किताब दिया जा नहीं सकता। संक्षेप में सन्त की प्रत्येक क्रियाशीलता, प्रत्येक हलचल प्रत्येक गतिविधि मानवमात्र में दिव्य जीवन की प्रतिष्ठा करती है।

साधकों की लोकोत्तर स्थिति पर पहुँचाने का शुभ संकल्प

स्वामीजी भारत की इसी ऋषि-परम्परा की महिमा से गौरवान्वित

हैं। स्वामीजी में भारत के इन सभी सन्त-महात्माओं के गुणों का संक्रमण हुआ है। स्वामीजी में सन्तों की समग्र प्रवृत्तियाँ पाई जाती हैं। स्वामीजी पूर्ण सन्त हैं, पूर्ण योगी हैं, पूर्ण साधक हैं और साधकों के निर्माता हैं। साधना के क्षेत्र में स्वामीजी साधक के स्वभाव और उसकी रुचि को प्रधानता देते हैं और तदनुसार परिस्थिति और प्रसाधन प्रदान कर साधक को क्रमिक उन्नति की ओर उन्मुख करते हैं। सुयोग्य साधकों को प्राकृतिक और पारमार्थिक शक्तियों के सम्पादन में सम्पूर्ण सहयोग प्रदान करते हैं और अयोग्य साधकों में साधन की ओर उन्मुख होने की इच्छाशक्ति का जन्म देते हैं। साधक की मनोदशा में उत्क्रान्ति उत्पन्न करना स्वामीजी के योग का चरम लक्ष्य है इस उत्क्रान्ति की विशेषता यह है कि यह साधक की जड़ और जीर्ण शारीरिक और मानसिक स्थिति में एक शुभ हलचल उत्पन्न करती है और साधक के बद्धमूल संस्कारों और विचारों की ग्रन्थियाँ खुल जाती हैं और उसके भावी जीवन की समस्या सुलझ जाती है। जीवन का नवप्रभात होता है और उस प्रकाश के आधार पर साधक अपने चरम लक्ष्य की ओर चल पड़ता है। स्वामीजी साधक को योगयुक्तात्मा बना देते हैं। साधक अपनी उच्च जीवन-यात्रा प्रारम्भ कर देता है और इसी प्रकार वह अपने शुभ लक्ष्य की पूर्ति के प्रयास करता रहता है। इस प्रकार योगिराज जी अपनी योग शक्तियों का उपयोग मानव मात्र को अभ्युदय और निःश्रेयस के पथ पर पहुँचाने में कर रहे हैं। स्वामीजी सचमुच योगिराज हैं। वे सर्वोदय के मन्त्रदाता हैं। वे जन-जन में जन कल्याण की भावना भरकर और उसे कल्याणकारी संस्कारों से सुसंस्कृत कर उसकी बहुत बड़ी सेवा कर रहे हैं। जनसाधारण भी स्वामीजी की इन सेवाओं को सम्मान की दृष्टि से देखते हैं। उनके सामीप्य में योगाभ्यास कर अपने भावी जीवन का शिलारोपण करते हैं और तदनुकूल आचरण कर जन-समाज में स्नेह भाजन बनते हैं स्वामीजी के जीवन का यही व्रत है। वे साधक को विजय रथ पर बैठा देते हैं और साधक निर्भीक होकर जीवन के प्रशस्त पथ पर

अग्रसर होता है। आसन, प्राणायामादि विविध यौगिक क्रियाओं का सफल साधक भौतिक (स्थूल) शक्तियों को सिद्ध करने के बाद धारणा-ध्यान-समाधि की साधना में निरत होकर आध्यात्मिक (सूक्ष्म) शक्तियों का सिद्ध विनियोजक बन जाता है और स्वेच्छानुसार उनका परिचालन करता है। स्वामीजी अपनी विद्या और कला का सफल विनियोग करना जानते हैं। इसका कारण यह है कि स्वामीजी अपने जीवन को अत्यन्त संयमित रखते हैं। योग की एकीभूत और अन्तिम स्थिति 'संयम' है। यह संयम स्वामीजी का चिरसहचर है। स्वामीजी इसी संयम-संकल्प की प्रबलता से जन-जीवन को प्रभावित करते हैं और उसकी मानसिक वृत्तियों को एक दूसरी ही दिशा की ओर मोड़ देते हैं। स्वामीजी में संयम का सम्पूर्ण परिपाक है। संयम की नित्यसंगृहीत विद्युत् शक्ति के प्रभाव से स्वामीजी की शारीरिक और मानसिक शक्तियाँ प्रतिक्षण सबल, सजग और क्रियमाण रहती हैं। वे नित्य ही नवीन चेतना, नवीन स्फूर्ति, नवीन उत्साह और शक्तियों से आत्मनिर्भर रहते हैं। स्वामीजी चरित्रगौरव हैं उनका जीवन सर्वांग पवित्र है। इसी रूप में साधकों की मनोदशा को ढालकर वे समाज की बहुत बड़ी सेवा कर रहे हैं।

देश को शक्तिशाली और सुयोग्य नागरिकों की प्राप्ति

आज के भौतिकता प्रधान युग में—जबकि मानव अपरिमित आकांक्षाओं की तृप्ति के लिये लालायित रहता है—जनता को सुसंस्कृत जीवन से दीक्षित कर स्वामीजी मानव के मन को संतुलित, संयम और सेवाभावी बना देते हैं। स्वामीजी योगयुक्तात्मा हैं और परमानन्दमय स्थिति पर पहुँच जाने की क्षमता रखते हैं। स्वामीजी का यह कर्मयोग है। स्वामीजी इसी कर्म-समाधि में अपने आपको लीन कर देते हैं, जिसके फलस्वरूप समाज और राष्ट्र को एक शक्तिशाली नागरिक प्राप्त होता है। योग से अनुशासित बनाकर स्वामीजी साधक को संयमित और नियमित जीवन

बिताने की विद्या सिखा देते हैं। फलतः साधक अबाध गति से अपने घर संसार को चलाता है। स्वामीजी निरलस, नियमबद्ध और प्राकृतिक जीवन बिताते हैं। उनमें कहीं कृत्रिमता के दर्शन नहीं होते। स्वामीजी प्राकृतिक शक्तियों के उपासक हैं और इन्हीं के बल पर वे अति सूक्ष्म आध्यात्मिक अनुभूति में भी निमग्न होते हैं।

सन्तोष का विषय है कि समाज स्वामीजी की इन सेवाओं का मूल्यांकन कर रहा है और उनकी शक्तियों से लाभ उठा कर अपनी गुणग्राहकता का परिचय दे रहा है। वह स्वामीजी की इन चिरस्पन्दित शक्तियों को अपने आप में संक्रमण कर धन्य हो रहा है और सामाजिक जीवन में सफलता प्राप्त कर रहा है।

अन्तिम अभ्यर्थना

निस्सन्देह स्वामीजी की जनकल्याण-परक प्रवृत्तियाँ आदरास्पद हैं। वर्तमान अर्थप्रधान युग में वे मानव की महत्वाकांक्षाओं पर संयम का अंकुश लगा देते हैं और उसकी दृष्टि का इतना विशाल बना देते हैं कि आधुनिक युग की अनेक हानिकारक प्रवृत्तियों—प्रान्तवाद, भाषावाद, सम्प्रदायवाद आदि से ऊपर उठकर साधक अपना और अपने देश का कल्याण-साधन करता है। स्वामीजी स्वयं शान्त, सहिष्णु और उदारमना हैं, स्वदेश तथा देशबन्धुओं के लिये कल्याणकारी आयोजनों के संचालक हैं और जन-जीवन पर इनका निस्सन्देह शुभ प्रभाव हुआ है। स्वामीजी जन-जीवन में उस जीवनी शक्ति का संचार कर रहे हैं, जिसके बल से योगाभ्यासी साधक प्रकृति की सतत परिवर्तनशीलता का सामना करने में शक्तिमान् होता है। स्वामीजी जड़ और स्थगित बुद्धि को एक चैतन्यमयी गति प्रदान करते हैं और साधक नई दृष्टि से अपना और जगत् का मूल्यांकन करने लगता है। योगिराजजी सचमुच भारत की मृत्युंजय संस्कृति के अग्रदूत हैं और उसीका प्रचार-प्रसारकर जन-जन को अमरत्व का प्रत्यक्ष अनुभव करा रहे हैं।

स्वामीजी उस भूतकालीन ऋषि-परम्परा के प्रतिनिधि हैं, जिसके अन्तर्भूत रहकर मनुष्य अभ्युदय और निःश्रेयस की स्थिति पर पहुँच जाता है। अस्तु; आज जब कि एक ओर वैज्ञानिक उत्क्रान्ति विविध परिवर्तनों की सम्भावनायें-मानवजाति को सार्वभौमिक उत्कर्ष की दिव्य आशा-सुरभि सर्वत्र आह्लाद का अनुभव करा रही है और दूसरी ओर कलह और सर्वनाश की विकट विभीषिकायें लोकजीवन के चतुर्दिक् घेरा डाले पड़ी हैं; मानव एक अनिश्चित स्थिति में डाँवाडोल हो रहा है; ऐसे समय संसार की निरंकुश प्रवृत्तियों पर योग का प्रतिबन्ध लगाकर स्वामीजी मानवजाति की बहुत बड़ी सेवा कर रहे हैं। वे जगत् को परम सुख-शान्ति और सर्वोदय का सन्देश देकर जनता के उज्ज्वल भविष्य का निर्माण कर रहे हैं। श्री योगीराजजी आज की कराहती हुई मानवता को सान्त्वना दे रहे हैं और शारीरिक सम्पत्ति, प्राकृतिक वैभव और आत्मिक ऐश्वर्य से पुरस्कृत कर उसे स्वावलम्बी, समृद्धिवान् और कृतकृत्य बना रहे हैं। सचमुच योगीराजजी की यह पावन प्रवृत्तियाँ विश्व-वन्दनीय हैं और लोक-जीवन में उनकी पूजनीय प्रतिष्ठा है। अतः भगवान् से प्रार्थना है कि वे स्वामीजी को स्वदेशबन्धुओं को एक विशेष-योगयुक्त स्थिति पर पहुँचाने के लिए नई शक्तियों से समृद्ध करते रहें। स्वामीजी अपनी स्वयंभू शक्तियों का अनन्त कोष अनन्तकाल तक वितरण करते रहें और अपने आत्मा के सौन्दर्य की अनन्त रस-राशि उंडेलते रहकर जन-गण के जीवन-घटकों को परितृप्त और परिपूर्ण करते रहें। श्री योगीराजजी का सुयश विश्वव्यापी और चिरप्रतिष्ठित हो और उनकी आत्मा का अमृत-रस पान कर भारतीय जन अमृत्व की अनुभूति में निमग्न होते रहें। जन-जन के उदात्त और शुभ संकल्प स्थायी संस्कारों में रूपान्तरित होते रहें; ऐसी मेरी आन्तरिक अभ्यर्थना है।

राधामोहन मिश्र

बम्बई

उमेश वाणी

(१) स्थल (पृथ्वी) से तीन गुणा अधिक जल है, जल से कई गुणा अधिक अग्नि, अग्नि से अनेक गुणा अधिक वायु, वायु से अनेक गुणा अधिक आकाश, आकाश से अनेक गुणा अधिक महत्त्व, महत्त्व से अनेक गुणा अधिक अहंकार, अहंकार से अनेक गुणा अधिक प्रकृति, प्रकृति से अनेक गुणा अधिक परमात्मा है। परमात्मा को अनन्त शक्तिवान्, आनन्द सागर, दिव्य-दर्शन और सर्वद्रष्टा कहा गया है, यह बात उपर्युक्त विधान से स्पष्ट सिद्ध होती है। अधिक वृष्टि से जल-प्रलय का भयानक दृश्य उपस्थित हो जाता है, अधिक अग्नि ज्वालामुखी का रूप धारण कर सर्वत्र हाहाकर मचा देती है, वायु का अत्यधिक वेगवान् रूप तूफान बनकर वृक्ष-लतादि और अन्य विनाश करता है। पृथ्वी के रुष्ट होने पर धरतीकम्प की भीषणता उपस्थित होकर मानव सहित समग्र प्राणी-समूह और वनस्पति-वृक्षादि भूगर्भ में समा जाते हैं और जन-धन की अपार हानि होती है। बिहार, कच्छ, क्वेटा और हाल के ईरान के भूचाल इसके प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। इन सब प्राकृतिक आघात-प्रत्याघातों से सुरक्षित रखने के लिये परम प्रभु का आश्रय लेना आवश्यक है। परम पिता परमात्मा के सम्बन्ध में योग, वेदान्त, भक्ति द्वारा नितान्त निष्कपट भाव से अभ्यास कर सम्पूर्ण सत्-चित्-आनन्द स्वरूप का ज्ञान प्राप्त कर लेना अत्यावश्यक है।

(२) योगविद्या के सम्बन्ध में कोई सन्देह हो तो निम्नलिखित पुस्तकों

का अध्ययन अवश्य कर देखें :—पातंजल योगदर्शन (साधनपाद, समाधि-पाद, विभूतिपाद और कैवल्यपाद) घेरण्ड-संहिता, शिव-संहिता, उमेश योगदर्शन (प्रथम खण्ड) आदि। इनके अध्ययन से योग-सम्बन्धी सन्दिग्ध विचार दूर हो जायेंगे और योग के प्रति अमिट श्रद्धा का आविर्भाव होगा।

(३) आधि-व्याधि-उपाधि का कारण मन है। संयोगवश पहले मन में सूक्ष्म विचार का प्रादुर्भाव होता है तदुपरान्त यही सूक्ष्म विचार दृढ़ विचार में रूपान्तरित होकर कार्य (स्थूल) रूप धारणा कर लेता है। यदि यह विचार ऊँचे और अनुकूल होते हैं तो आधि-व्याधि-उपाधि के स्थान पर धन-सम्पत्ति, सुयश, सत्ता, शक्ति-सामर्थ्य का अखण्ड प्रवाह, आयु-वृद्धि, आध्यात्मिक जीवन के प्रति प्रेम और उसमें पारंगति-प्राप्ति जीवन की सभी परमाकांक्षाओं की पूर्ति होती है। जीवन उर्ध्वगामी बनता है। किन्तु यदि मन में प्रतिकूल विचारों का प्रवेश होता है तो अनेक प्रकार की आधि-व्याधियाँ और उपाधियाँ बढ़कर जीवन नरक तुल्य बन जाता है, इसलिये सर्वप्रथम मानसिक विचारों को अत्यन्त गम्भीरता के साथ सुनियन्त्रित बनाना होगा, क्योंकि विचार ही मानव जीवन को बनाते बिगाड़ते हैं, सुकृति या दुष्कृति की ओर ले जाते हैं। इसलिये विचारों पर सावधानी से शासन करना होगा। यदि मन और तज्जन्य विचार पवित्र, श्रद्धापूर्ण हैं, मन परिश्रम से घबराता नहीं, बल्कि उत्साह के साथ लग जाता है, प्रसंगोपात अन्य लोगों के साथ मिल-जुलकर रहने और परिस्थितियों के अनुकूल अपने आपको फिट कर लेने की क्षमता रखता है, यदि शुभकार्य में कष्टों का अनुभव हो तो भी सहिष्णुता पूर्वक अभीष्ट-सिद्धि पर्यन्त दृढ़तापूर्वक कार्य-तत्पर रहा जाये तो आधि-व्याधि-उपाधियाँ स्वतः तिरोभूत हो जायेंगी और जीवन निखर उठेगा यही जीवन की कसौटी है।

(४) हिन्दी भाषा की रक्षा करना प्रत्येक भारतीय का परम कर्तव्य है। भारत में जन्म लेकर भी जिसने हिन्दी भाषा का ज्ञान प्राप्त नहीं, जिसके हृदय में हिन्दी के प्रति ममत्व का भाव नहीं, उसे हिन्द (भारत) का सपूत

कहलाने का अधिकार नहीं। किसी भी भारतवासी की मातृभाषा कोई भी क्यों न हो, किन्तु जब तक उसने हिन्दी के प्रति अपना परम हार्दिक आदर भाव प्रकट करते हुए उसकी दिव्यज्ञान-धारा में अवगाहन नहीं किया, तब तक वह अपनी मातृभाषा के महत्व को भी हृदयंगम नहीं कर सकता। एक प्रान्त में जाकर अपनी मातृभाषा के माध्यम से वहाँ के स्थानीय निवासी को अपने हृद्गत भाव-विचार नहीं समझा सकता-वहाँ का जीवन व्यवहार नहीं संभाल सकता, अतः वहाँ के स्थानीय निवासियों के आत्मिक प्रेम का सम्पादन करने में समर्थ न होगा। सब ओर से दूर ही रहेंगे। प्रत्येक भारतवासी हिन्दू, सिख, मुसलमान, क्रिश्चियन, अंग्रेज, अमेरिकन, रूसी, यहूदी, पारसी, जापानी, जर्मन, (आदि) हिन्दी का पारंगत पण्डित भले न हो, परन्तु जीवन-व्यवहार का संचालन करने के लिए आवश्यक हिन्दी-ज्ञान अवश्य प्राप्त करना चाहिये। हिन्दी भाषा अत्यन्त सरल और सुगम है। यह सभी प्रान्तीय भाषाओं के अत्यन्त निकट है। संस्कृत भारतव्यापी भाषा है और हिन्दी संस्कृत की पुत्री है, इस में संस्कृत के सरल और नित्य व्यवहार के शब्दों की प्रचुरता है, इस लिए यह भी प्रान्तों के अधिवासियों के लिए सरलता से ग्राह्य है। अतः प्रत्येक भारतीय को हिन्दी का अभीष्ट ज्ञान अर्जित कर उसका प्रचार प्रसार भी करना चाहिये। हिन्दी भारत की राष्ट्रीय एकता की प्रतीक है।

(५) देववाणी (संस्कृत) का ज्ञान होना भी अत्यावश्यक है। देवनागरी लिपि, और संस्कृत मिश्रित विशुद्ध हिन्दी भाषा में शब्दों के आकर्षण, कर्ण प्रिय शब्द रचना, भावपूर्वक उच्चारण, हृदयंगम भाव, व्यंजना, सत्प्रेममयी दिव्य वाणी का उद्गार, चैतन्यमय शब्दों का आन्दोलन प्रेमाधिक्य से परिपूर्ण, सुनने योग्य, सुमधुर शब्द सौष्ठव, बार बार सुनने की तीव्र इच्छा आदि अनेक महत्वपूर्ण गुण हिन्दी और संस्कृत भाषा में विद्यमान हैं हिन्दी प्रसाद गुण-सम्पन्न भाषा है, फलतः मानव स्वभावतः इसकी ओर आकर्षित होता है।

(६) जो लोग हिन्दी भाषा को अनादर की दृष्टि से देखते हैं, वे भारत राष्ट्र की सर्वांगीण उन्नति, उसको एकता और संगठन के साधन, पारस्परिक आत्मीयता और बन्धुभावका प्रसार बढ़ाने व्यवहारिक तथा सामाजिक समृद्धि और समुन्नति आदि के महान् आयोजनों में बाधक सिद्ध होंगे। अतएव हे परम बुद्धिमान भारत वासियो ! भारत माता के सुपुत्रो ! हिन्दी भाषा के सम्बन्ध में अपने संशयात्मक मनोभाव को मिटा दो और ऐसी भावना भर दो कि समग्र भारत के घर-घर के लोग हिन्दी-भाषा का प्रेमपूर्वक अध्ययन-अध्यापन करें और ऐसी स्थिति उत्पन्न करें, जिससे हिन्दी भारत की राष्ट्र भाषा तो बन ही जाय, अखिल विश्व-स्तर पर अंग्रेजी की प्रतिद्वन्द्विता करने के लिए कमर कसकर अग्रसर हो।

(७) स्वयं से भिन्न व्यक्तियों को सदा दोषपूर्ण दृष्टि से देखते रहने, उसके प्रत्येक आचरण में दोष खोजते रहने और निन्दामूलक वाणी का उच्चारण करने में जो व्यक्तितत्पर है, उसका जीवन पवित्र नहीं रह सकता। समाज से; व्यक्ति से हम जैसे भी संस्कार, विचार, वाणी और आचरण ग्रहण करते रहेंगे, तदनुसार हमारा जीवन गठन होता जायेगा। समत्व-भावना-आत्मभावना सर्वोपरि है। जहां समत्व और आत्मीयता का बोध है, वहां दोष-दर्शन का प्रश्न ही नहीं और है भी तो वह मानो वह अपनी ही दोषपूर्ण आलोचना कर रहा है। जहां प्रत्येक मानव को दोषों से दूर रहने का आदेश है और प्रत्येक व्यक्ति सतत प्रयास कर रहा है, उसका सम्बन्ध समाज जीवन के साथ सदैव सुसंगत रहेगा। और उसके सम्बन्ध सर्वत्र सुलभ रहेंगे। पवित्र जीवन से ही यह सम्भव है।

(८) जब तक वृत्तियां अन्तःकरण में नहीं उठतीं, तब तक भय-चिन्ता, सुख-दुःख का अनुभव नहीं हो सकता। इसी लिये समझना चाहिये कि जब वृत्ति उठती है, तब प्रवृत्ति चलने लगती है और प्रवृत्ति चालू हो गई तब समझना चाहिये कि, सुख-दुःख, लाभालाभ-जो त्रिगुणाश्रित हैं-का प्रारम्भ हो जाता है, यही सांसारिक जीवन का स्वरूप है।

(९ दिन-रात के चौबीस घण्टों में कुछ ही क्षणों के लिए क्यों न हो— हंसना आवश्यक है। हंसने से मुखाकृति सन्तोषपूर्ण जीवन की झलक उत्फुल्ल करती है। दिन-रात में कभी न कभी ऐसी विनोदपूर्ण घटना या वार्तालाप की प्रणाली मानव को हंसाने या प्रसन्न करने के लिये प्रकट होती है। मानव की मनोदवाणी में इतना सामर्थ्य होना चाहिये कि अन्तःकरण से उच्च हास्य की धारा फूट पड़े और अंग-प्रत्यंग में बिजली दौड़ जाये। कभी अन्तःकरण में स्वयं ऐसे विचार प्रकट होते हैं, जिन पर मनुष्य ऋबस हंस पड़ता है। अस्तु, हंसना मनुष्य के लिये बहुत ही लाभदायक है। हंसने से शारीरिक अवयवों का विकास होता है, मन की चिन्ता और इन्द्रियों की शिथिलता दूर होती है।

(१०) भगवान का दर्शन केवल मन्दिर स्थापित मूर्ति में ही होता है, यह समझना उचित नहीं। भगवान् सर्वव्यापी हैं। अखिल विश्व उनके चैतन्य से सजीव और सजग है—‘यत्र-तत्र मनोयाति तत्र-तत्र ब्रह्म दर्शनम्’-जहां-जहां मन पहुंचता है, वहीं ब्रह्म-भगवान् सामने उपस्थित हैं, उन्हीं के दर्शन हर समय, हर ओर होते हैं। जब तक सर्वत्र ब्रह्म दर्शन की अनुभूति नहीं होती तब तक मूर्ति को आधार बनाये रखना अनुचित नहीं। हृदय-पटल पर स्मरण करने के लिये मूर्ति का आधार उचित है। क्योंकि ब्रह्म का रूप निराकार होने पर भी साकार रूप में उसका दर्शन सम्भव है। सारा संसार ही साकार-मूर्तिमान् तथा निराकार-अदृश्य में व्याप्त है। पंचमहाभूत, पंच-तन्मात्रा, अहंकार, महत्तत्त्व प्रथा प्रकृति तत्त्वों से परे परमात्मा है।

(११) जगत् के जंजालरूपी महासुख-दुःख से परे पहुंचने के लिये आत्मज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है। यह आत्मज्ञान प्राप्त करने के अनेक अभ्यास मार्गों में एक सरल अभ्यासमार्ग अष्टांग योग है।

(१२) निद्रा और समाधि में बहुत बड़ा अन्तर है। निद्रा में तमोगुण की परिब्याप्ति रहती है। तमोगुण प्रधान स्थिति ब्रह्मदर्शन के लाभ से वंचित रहती है। सविकल्प समाधि की अवस्था में आत्मज्ञान (सत्-आनन्द) का

अनुभव होता है और निर्विकल्प समाधि में साधक निजानन्द स्वरूप प्राप्त कर लेता है। निर्विकल्प समाधि में ध्येय तथा दृश्य का भान रहता है—ध्येय तथा ध्यान का ज्ञान रहता है। निर्विकल्प समाधि की अवस्था कर लेने पर साधक केवल समाधि द्रष्टा बनकर अपने स्वरूप में अवस्थान करता है। निर्विकल्प तत्त्व, शुद्ध अहंकार तथा सात्त्विक गुण काम करते हैं। निर्विकल्प समाधि में स्वयंभू के सिवा और किसी का अस्तित्व नहीं होता।

(१३) मानव-जन्म धारण कर आहार, निद्रा, भय और मैथुन में मस्त रहने में ही मानव-कर्तव्य की पूर्ति नहीं हो जाती। यह कार्य तो पशु-पक्षी आदि असंख्य प्राणी मनुष्य से अधिक स्वतन्त्र, निर्भय और मुक्त वातावरण में बिना किसी रोक-थाम के करते आ रहे हैं। इसका आशय यह है कि यदि आहार, निद्रा, भय और मैथुन तक ही जीवन की प्रवृत्ति सीमित है तो पशु-पक्षियों की योनि में जन्म लेना कहीं अधिक अच्छा था। मनुष्य का कर्तव्य यह है कि वह जन्म-मृत्यु से परे परमानन्द स्वरूप को जाने, अर्थात् आत्मदर्शन (निज रूप का दर्शन) करे।

(१४) जैसे भूला-भटका हताश पथिक अन्ततः खोज पूछ करके अपने गन्तव्य स्थान पर सरलता से सुखपूर्वक पहुंच जाता है, उसी तरह माया में परम सुख की खोज करने वाले लोग नाना प्रकार के संकटों में फंस जाते हैं और उस दशा में वे सुखरूपी ध्येय बताने वाले ब्रह्मनिष्ठ गुरु की शरण ग्रहण करते हैं। सच्चेगुरु की शरण में पहुंचकर—उनके उपदेशामृत को पानकर सदानन्द स्वरूप-दर्शन के ध्येय की पूर्ति हो जाती है।

(१५) मेघा को वेदों और उपनिषदों में बहुत बड़ा महत्व दिया गया है। मेघा का पूर्णरूप से संचय करने का काल युवावस्था है। नैष्ठिक ब्रह्मचर्य का पूर्णतया पालन करने से मेघाशक्ति का समुचित विकास होता है। यास्क मुनि निरुक्त ग्रन्थ में समझाते हैं कि 'मतौ धीयते। मति बुद्धिः। तस्यां या पुरुष शक्ति-धीयते अभिव्यंज्यते धारणा नाम सैव मेघा इत्युच्यते'

अर्थात् बुद्धि में जिस पुरुष शक्ति (ब्रह्मतेज) का धारण किया जाता है, उसी का नाम मेघा है। मेघाशक्ति के द्वारा वेदादि शास्त्रों का अर्थ और मर्म भली-भान्ति समझ लिया जाता है। प्रतिभाशक्ति, मेघाशक्ति की देन है उसी का फल है। स्मरण-शक्ति की संस्थापिका मेघा-शक्ति ही है।

(१६) भगवान् परम मंगलमय, परमानन्द स्वरूप और अणुपरमाणु में परिव्याप्त हैं। वे प्राणिमात्र के हृदय-पटल में निवास करते हुए उसकी जीवन ज्योति को संरक्षण प्रदान करते हैं। ऐसे परम पावन, परम पिता परमात्मा की खोज करने के लिये जो ८४ लाख योनियों में भटक रहे हैं, वे अतीव भाग्यहीन हैं, महान् अज्ञानी हैं, महान् दुःखी हैं।

(१७) माता के गर्भ में बालक को जीवन तत्त्व स्वतः के नाभि-कमल से उपलब्ध होता है। जिस समय जितने परिमाण में जीवन तत्त्व की आवश्यकता होती है, उस समय उतने ही परिमाण में उसे मिलता रहता है। इसका फल यह होता है कि नैसर्गिक जीवन के अनुरूप सौन्दर्यशील, कोमल, निरोगी; सरल आनन्दमय रूप में गर्भस्थ शिशु का शुद्ध सुयोजित विकास-क्रम चलता रहता है। जन्म के बाद बालक के नाभि कमल का द्वार बन्द हो जाता है और वह मुख से आहार ग्रहण करने लगता है। जैसे-जैसे बालक की आयु बढ़ती जाती है, वैसे-वैसे वह जीभ के स्वाद के वशीभूत होकर आहार को ही जीवन समझ बैठता है और प्राकृतिक जीवन का उल्लंघन करने लगता है, फलतः उसे रोग रूपी दण्ड का भाजन बनना पड़ता है और अनेक प्रकार के कष्ट भोगते हुये जीवन-थापन करना पड़ता है।

(१८) नखों-नाखूनों को दांतों से काटने की आदत बुरी है, क्योंकि ऐसा करने से नखों में भरा हुआ मैल पेट में पहुँचकर रोग उत्पन्न कर देता है। नखों को बढ़ाना उचित नहीं। बाल, नाखून, श्लेष्मा, पसीना, आंखों का मैल, कान का मैल, मलमूत्र यह सब शरीर के अन्दर से बाहर निकलने वाले विजातीय द्रव्य-रोगोत्पादक वस्तुयें हैं। इन्हें यथोचित रूप से स्वच्छ रखने से ही जीवन निरोगी और शुद्ध-बुद्ध बन सकता है।

(१९) सारी दुनिया के लोग जब तक दुर्व्यसन, मांसाहार से अपना पीछा नहीं छुड़ायेंगे तथा सदाचारी, संयमी तथा शाकाहारी नहीं बनेंगे, योगाभ्यास नहीं करेंगे, तब तक जगत् पर नाना प्रकार के रोगों की विभीषिका बनी रहेगी, युद्ध (लड़ाई) का आतंक छाया रहेगा और अशान्तिमय कोलाहल फैला रहेगा। शारीरिक, आरोग्य, मानसिक शान्ति तथा पारस्परिक आत्मीय भाव धारण करने के लिए अष्टांग योगाभ्यास के समान अन्य कोई साधन मिलना असम्भव है। यही कारण है कि आज सारे जगत् में योगाभ्यास के प्रति प्रेम बढ़ता जा रहा है।

(२०) वृक्ष, लता, सरोवर, नदी और सन्त, महात्मा, पंडितों के जीवन केवल परोपकार के लिए हैं, इसलिए इनके दर्शन को अहोभाग्य मानकर उन्हें श्रद्धा-भक्ति पूर्वक नमस्कार करना चाहिये और अत्यन्त नम्रता, स्तुति और विनयावनत वाणी के व्यवहार से उनका सम्मान करना चाहिए।

(२१) दिन में एक बार प्रातःकाल स्नान करना अनिवार्य है। समस्त दिन काम करते समय शरीर से पसीना अधिक निकलना स्वाभाविक है, फलतः शरीर गन्दा हो जाता है, इसलिये सायंकाल भी स्नान कर लिया जाये तो शरीर की सफाई के साथ थकावट दूर हो जाती है तथा मानसिक प्रसन्नता और स्फूर्ति बढ़ जाती है। स्नान के बाद सन्ध्या-वन्दन, पूजा-पाठ, भजन, जप, कीर्तन, धारणा, ध्यान आदि जो भी अनुकूल हो और जैसा भी समय हो, तदनुसार अनिवार्य रूप से करना चाहिये। अधिक ठण्डी के समय साधारण उष्ण जल से और शेष दिनों में शीतल जल से स्नान करना लाभकर है बाल्य-वृद्धावस्था अशक्ति अथवा अन्य किसी कारण वश शीतल जल अनुकूल न हो तो गरम जल से स्नान करें। स्फूर्ति, शक्ति तथा आरोग्य के लिये शीतल जल लाभ प्रद है। जैसे तेल मालिश के समय तैल से शारीरिक अंगों का मर्दन किया जाता है उसी तरह स्नान के समय भी जल से शिर तथा समग्र शरीर का मर्दन करना चाहिये।

(२२) 'जैसा बोले, वैसा चाले' अर्थात् विचार, वाणी और व्यवहार की एकता की कहावत केवल कहने भर को न रखकर व्यवहार में लाने से कल्याण होता है।